अगस्त, १९३२

वर्ष १०, खण्ड २
संख्या ४, पूर्ण संख्या ११८

सम्पादक :—
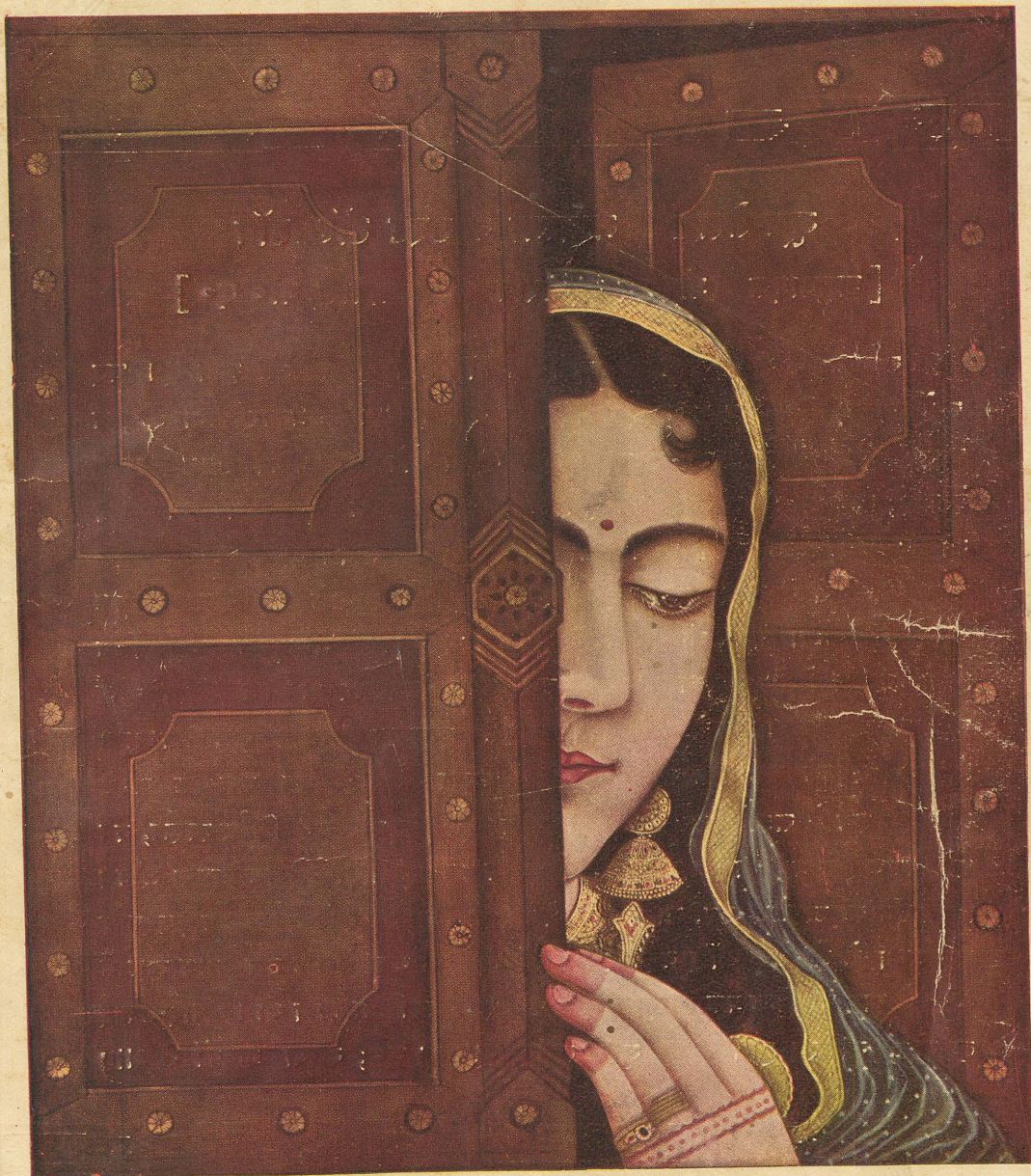
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव
श्री० सत्यभक्त

वार्षिक चन्दा ६।)
छः माही चन्दा ३।)
विदेश का चन्दा ८।)
इस अङ्क का मूल्य ।।=)

विषय सूची

चित्र-सूची

संयोगिता-हरण

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड २ | अगस्त, १६३२ | सं० ४, पू० सं० ११८

मालिनी

[प्रो० रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

सजाए हैं मैंने ये हार।

उषा सम रञ्जित रुचिर प्रसून,
शरद बादल-सी कलियाँ श्वेत।
व्योम-से पल्लव कोमल श्याम,
सभी हारों में हैं समवेत।

ओस-जल में मुख धोकर मौन,
विहङ्गों का सुन कलरव गान।
कली, अलि-अवली से या प्रात,
स्वार्थ-स्वागत का मीठा मान।

प्रात की पीकर अनिल अपार,
लता की हरी-हरी सी गोद।
फूल कर भूल रहे हैं फूल,
हार में गूँथे हैं सविनोद।

और पल्लव-पल्लव हैं बाल,
सुकोमल हैं, मृदु हैं सुकुमार।
पवन ने उन्हें सरल शिशु जान,
झुलाया है कितनी ही बार।

लताओं का यह यौवन-भार,
अरी, ले आई आज उतार।
कौन है, लेगा इसको मोल,
करेगा इसमें कौन विहार ?
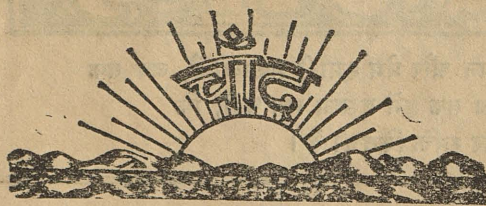
अगस्त, १९३२

भारत के धर्मजीवी

जब से संसार में मानवीय सभ्यता का प्रसार हुआ है, तब से प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज में, किसी न किसी रूप में, धर्मजीवी लोगों का अस्तित्व रहा है। प्रकृति के रहस्यों को न समझ सकने के कारण मनुष्य के हृदय में आरम्भ ही से अनेक तरह की शङ्काएँ, अन्ध-विश्वास और आध्यात्मिक भावनाएँ उत्पन्न होती रही हैं और ये धर्मजीवी लोग किसी भी प्रकार उनका समाधान अथवा पूर्ति करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते आए हैं। पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि तमाम मज़हबों में इस तरह के धर्मगुरु और पुरोहित सदा से पाए जाते हैं। रोम का राज्य तो सैकड़ों वर्षों तक ईसाई धर्मगुरुओं के अधिकार में ही रहा है। मुसलमानों के अनेक बादशाह भी फ़क़ीरों और औलियाओं के पक्के मुरीद हुए हैं। यूनान, मिश्र आदि पुराने देशों में पुरोहितों का अत्यधिक प्राबल्य रहा है, यह पुरातत्व-वेत्ताओं की खोज से सिद्ध हो चुका है। पर जब हम भारतीय इतिहास और हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों के पृष्ठ लौटते हैं, तो जान पड़ता है कि इनमें से किसी भी देश में धर्मजीवी लोगों का प्रभाव इतनी हद तक नहीं पहुँचा था, जितना कि भारतवर्ष में पहुँच चुका है। यहाँ पर धर्मजीवी लोगों के याचना करने पर लोगों ने अपना राज-पाट, स्त्री-पुत्र और देह तक अर्पण कर दिया है। एक-एक यज्ञ में पुरोहितों को लाखों गाएँ और करोड़ों स्वर्ण-मुद्राएँ दान दी गई हैं। धर्मजीवियों के फेर में पड़ कर हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य त्याग दिया और स्त्री-पुत्र को बेच कर स्वयं चाण्डाल का दास बना। इसी कारण मोरध्वज को अपने पुत्र की हत्या करनी पड़ी और बलि को शरीर तक नपवा देना पड़ा। इस प्रकार के उदाहरण और उपाख्यान पुराणों और काव्यों में भरे पड़े हैं, और यदि उनका दशमांश भी सत्य माना जाय तो यही कहना पड़ेगा कि इस देश के वास्तविक स्वामी और कर्ता-धर्ता सदा से धर्मजीवी ही रहे हैं और उन्होंने अन्य समस्त वर्ण और पेशे वालों को छल-बल द्वारा अपने बन्धन में रक्खा है।

सम्भवतः लोगों की उसी प्राचीन धारणा और श्रद्धा का फल है कि वर्तमान समय में भी इस देश में

धर्मजीवियों की जैसी बहुतायत और प्रबलता है, वैसी संसार के दूसरे किसी देश में नहीं पाई जाती। आप यहाँ के किसी छोटे से छोटे गाँव में पहुँच जाइए, वहाँ भी आपको ऐसी एकाध मूर्ति के दर्शन अवश्य हो जाएँगे। और कुछ न होगा तो आप देखेंगे कि गाँव के कुएँ या धर्मशाला के पास ऐसे किसी जीव ने आसन जमा रक्खा है और उसके पास सुबह-शाम धर्म-जिज्ञासु भक्तों की एक छोटी-मोटी मण्डली इकट्ठी हो जाती है। प्रत्येक साधारण दर्जे के गाँव में एकाध मन्दिर भी ज़रूर पाया जाता है और दो-चार व्यक्ति उसके ही सहारे अपना पेट पाल लेते हैं। इसके सिवा जितने भिखमङ्गे घर-घर फिरते नज़र आते हैं, उनमें से अधिकांश अपने को ब्राह्मण ही कहते हैं, और इस नाते से भिक्षा माँगना अपना हक़ बतलाते हैं। उनमें से कितने ही अपने को पहुँचा हुआ साधू-महात्मा समझते हैं और जो भिक्षा नहीं देता उसे गाली-गलौज या श्राप तक देने को उद्यत हो जाते हैं। बहुत से साधू अकेले घूमने के बजाय मण्डली बना कर देश का चक्कर लगाते रहते हैं। वे प्रत्येक शहर तथा गाँव में उस समय तक ठहरते हैं, जब तक वहाँ के निवासी उनकी भली-भाँति आवभगत करते रहते हैं। जब वे लोगों की श्रद्धा में कमी होते देखते हैं अथवा उनसे अधिक प्रभावशाली दूसरी मण्डली वहाँ आसन आ जमाती है तो वे किसी नए ठिकाने को रवाना हो जाते हैं। ये लोग प्रायः अपने साथ एक चलता-फिरता ठाकुर-मन्दिर रखते हैं, जिसकी पूजा सुबह-शाम बड़े समारोह से की जाती है। धर्मप्राण लोग ख़्याल करते हैं कि अगर इनको कुछ न दिया जायगा तो ठाकुर जी का भोग कैसे लगेगा, और इस प्रकार उनको कुछ न कुछ मिल ही जाता है। इसके बाद उन मठधारी साधुओं और महन्तों का नम्बर आता है, जिनके पास किसी राजा, ज़मींदार या सेठ की दी हुई या साधारण जनता के चढ़ावे से ख़रीदी हुई ज़मीन-जायदाद होती है और उसके द्वारा वे सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करते हैं। इन्हीं लोगों में बड़े-बड़े मन्दिरों या तीर्थ-स्थानों के वे महन्त अथवा अधिकारी भी सम्मिलित हैं, जिनको श्रद्धालुओं तथा भक्तों द्वारा लाखों रुपए सालाना की आमदनी होती है और जिनका ठाट-बाट तथा ऐश्वर्य किसी बड़े अमीर या रईस से कम नहीं होता। तीर्थों के अगणित पण्डों की गणना भी धर्मजीवियों में ही है। इन लोगों को बिना हाथ-पैर हिलाए केवल गङ्गामाई अथवा पितरों के नाम पर करोड़ों की रक़म प्रति वर्ष मिलती रहती है, जिसका उपयोग ये केवल गुलछर्रे उड़ाने और पारस्परिक कलह में करते हैं।

ऊपर धर्मजीवी लोगों की जिन विभिन्न श्रेणियों का ज़िक्र किया गया है, उनमें प्रधानता मठाधीशों, अखाड़ों के महन्तों, विभिन्न सम्प्रदायों के गुरुओं, बड़े-बड़े देव-मन्दिरों के अधिष्ठाताओं और तीर्थों के पण्डों की ही है, और इन्हीं के सम्बन्ध में विशेष रूप से हमको इस लेख में विचार करना है; क्योंकि इनका समाज पर असाधारण अधिकार होता है, अनगिनती लोग उनको आदर-सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, उनके पास करोड़ों की सम्पत्ति है और इन तमाम बातों के कारण वे जो कुछ कहते या करते हैं, उसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों के एक बड़े भाग पर से उन लोगों का प्रभाव हट गया है और बहुत से लोग उनका विरोध भी करने लग गए हैं, पर ऐसे लोगों की संख्या कठिनता से एक प्रति सैकड़ा से अधिक होगी। शेष लोग, जिनमें से अधिकांश देहातों के रहने वाले हैं, अभी तक उसी अन्धकार में पड़े हुए हैं और उनको पूजनीय तथा श्रद्धेय समझते हैं। साथ ही शहरों के अनेकों बड़े-बड़े व्यवसायी तथा उच्च सरकारी पदों पर प्रतिष्ठित लोग भी उनके अनुयायी बने हुए हैं। इतना ही नहीं, जो लोग इन बातों में श्रद्धा-विश्वास नहीं रखते वे भी समय पड़ने पर लोकलज्जा के भय से अन्य लोगों का अनुकरण करते हैं।

वर्तमान समय के धर्मजीवियों की आलोचना करने से पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि हमारा विरोध वास्तविक त्यागी, तपस्वी, ईश्वर-प्रेमी और भगवद्भजन में अनुरक्त साधुओं से नहीं है। सम्भव है, हमारे और उनके धार्मिक विश्वास में कुछ अन्तर हो और उनके जप-तप को हम विशेष महत्त्वपूर्ण न समझते हों, पर तो भी जो लोग सांसारिक सुखों को त्याग कर, लोकैषणा की भावना पर विजय प्राप्त करके, शारीरिक कष्ट सहते हुए आध्यात्मिक उन्नति की चेष्टा

में लगे हैं, वे आदर की दृष्टि से देखे जाने योग्य हैं। हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में साधुओं का जैसा चरित्र बतलाया गया है और उनके लिए जो नियम लिखे हैं, अगर आजकल के साधू उनका पालन करते होते तो किसी को उनके समाज पर आक्षेप करने का अवसर ही नहीं मिलता, और वे समाज के एक हानिकारक तथा भार-स्वरूप अङ्ग होने के बजाय लाभदायक और उपयोगी भाग सिद्ध होते। उदाहरणार्थ गरुड़-पुराण में साधुओं के जो लक्षण दिए गए हैं, उनको देखिए—

"जो सम्मान से सन्तुष्ट और अपमान से क्रुद्ध नहीं होते और यदि कभी क्रुद्ध होते हैं, तो परुष वाक्य मुँह से नहीं निकालते, वे ही साधु हैं। साधु सदा आत्म-सुख तथा भोगेच्छा से विरत होते हैं और वे सब प्राणियों के सुख के लिए चेष्टा करते रहते हैं। वे पराए दुःख से कातर होते हैं, और तो क्या, दूसरे के दुःख को देख कर अपना सारा सुख भूल जाते हैं। वृक्ष जैसे स्वयं निदारुण ताप को सहता हुआ भी दूसरे को निदारुण ताप से बचाता है, साधु भी वैसे ही आप कष्ट सह कर दूसरे का उपकार किया करते हैं।"

महानिर्वाण तन्त्र में लिखा है—"जो लोग देवायतन में वास करते हैं और देव-कल्प, दृढ़व्रत, सत्य-धर्म-परायण तथा सत्यवादी हैं, उन्हीं को साधु कहते हैं।"

यदि साधुओं के ऊपर लिखे लक्षणों की विवेचना की जाय, तो मालूम होता है कि आजकल के साधू नामधारी इस श्रेणी में कदापि नहीं आ सकते। यदि इस श्रेणी में कोई आ सकता है तो राजनीतिक और सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले कुछ ऐसे व्यक्ति ही आ सकते हैं, जो अपना सर्वस्व त्याग कर तन-मन-धन से जनता की सेवा कर रहे हैं।

यह तो हुई साधुओं के लक्षणों की बात। अब हम विष्णु-पुराण में वर्णित साधुओं के लिए आवश्यकीय नियमों का उल्लेख करेंगे। उनसे यह भी मालूम होगा कि किस तरह का व्यक्ति साधू हो सकता है और उसे कैसे त्याग और कष्ट-सहन की आवश्यकता है। आजकल जो लोग अधेले के गेरू से कपड़ा रङ्ग कर साधू बन जाते हैं अथवा किसी महन्त या गुसाईं आदि के चेले बन कर पूजनीय और वन्दनीय बन बैठते हैं वे तो उसके अनुसार नितान्त उपहासास्पद जान पड़ते हैं। विष्णु-पुराण के तीसरे खण्ड के नवम अध्याय में भिक्षुओं और संन्यासियों के कर्मों का वर्णन करते हुए लिखा है :—

"भिक्षु व्यक्ति को धर्म, अर्थ और काम-रूप त्रिवर्ग साधन समुदाय तथा यागादि के अनुष्ठान का परित्याग करना चाहिए। इनको शत्रु-मित्र और छोटे-बड़े सब प्राणियों का मित्र बन जाना चाहिए। वाक्य, मन या कर्म द्वारा जरायुज, अण्डज प्रभृति किसी जीव का कदापि अनिष्टाचरण न करें। सदा योगरत रहें और सबका सङ्ग छोड़ दें। इन्हें गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात तक रहना चाहिए। इससे अधिक काल तक रहना उचित नहीं। इसके सिवा वे ऐसे स्थान में रहें, जहाँ से न प्रीति ही उपजे और न द्वेष। जिस समय गृहस्थ के पाकादि की अग्नि बुझ जाय और सबका आहार समाप्त हो जाय उसी समय भिक्षु ब्राह्मणों के घर भिक्षा माँगने को उपस्थित होवें।"

कहाँ तो साधुओं और संन्यासियों का यह आदर्श और कहाँ आजकल के पेटू, स्वार्थी और लम्पट धर्म-जीवी लोग! इन नियमों के अनुसार साधु-संन्यासियों को गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात तक रहना चाहिए। पर आजकल के साधू एक ही स्थान में मठ-मन्दिर बना कर और ज़मीन-जायदाद इकट्ठी करके ऐसी गहरी जड़ जमा लेते हैं, मानो भयङ्कर तूफ़ान में भी वे टस से मस न होंगे। इसी प्रकार उपर्युक्त विवरण में सब लोगों के खा-पी चुकने के बाद साधुओं को गृहस्थों के यहाँ भिक्षार्थ जाने का विधान है, पर आजकल साधू लोग सबसे पहले भोग लगाना अपना अधिकार समझते हैं और कितने ही तो लोगों के खाते हुए ही छाती पर जा खड़े होते हैं।

उपर्युक्त शास्त्रीय उद्धरणों से साधुओं का जैसा स्वरूप प्रकट होता है, उसकी तुलना जब हम आजकल के महात्मा-महन्त और गुरु नामधारियों से करते हैं तो ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखलाई देता है। शास्त्रों के अनुसार साधू का सर्वोपरि लक्षण त्याग और परोपकार है। इसके विपरीत आजकल के साधू धन-संग्रह और स्वार्थ-साधन को ही अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझे बैठे हैं। यह इस ज़माने की ख़ूबी है कि मेहनत करने वाले गृहस्थ लोग तो भूखों मर रहे हैं

और आलस्य में समय गँवाने वाले साधू लखपती-करोड़पती बने हुए हैं। आजकल साधू कहलाने वाले ज़मींदारी करते हैं, खेती कराते हैं, क़र्ज़ देते हैं, किराए के लिए मकान बनवाते हैं, व्यापार करते हैं। हमारे एक परिचित सज्जन को कुछ रुपए की ज़रूरत थी, पर क़र्ज़ मिलने का कोई मार्ग सामने न था। उनसे एक दूसरे व्यक्ति ने कहा कि वे अमुक अखाड़े के महन्त के पास चलें, वह पचास हज़ार तक क़र्ज़ दे सकता है। पूछने पर मालूम हुआ कि उक्त महन्त ने कितने ही व्यवसाइयों, ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों को इसी तरह लाखों रुपए क़र्ज़ में दे रक्खा है। नागा लोगों के प्रसिद्ध निरञ्जनी अखाड़े की सम्पत्ति का मूल्य एक अरब रुपए के लगभग बतलाया जाता है और उसके कोष में करोड़ों रुपए नक़द रहता है। इसी तरह मथुरा, गोवर्द्धन और नाथद्वारे के गुसाइयों और अयोध्या के महन्तों के पास अपार सम्पत्ति बतलाई जाती है। एक बार हम अयोध्या के हनुमानगढ़ी मन्दिर में गए। वहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि मन्दिर की सालाना आमदनी ढाई-तीन लाख के क़रीब है और ख़र्च इससे बहुत कम है। जो रुपया बचता है, वह मन्दिर के नीचे बने विशाल तहख़ाने में रख दिया जाता है और कभी निकाला नहीं जाता। इस प्रकार अब तक वहाँ कितने ही करोड़ रुपए इकट्ठे हो चुके हैं। मध्य भारत के एक मन्दिर के बारे में, जिसमें महाराज छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित है, पढ़ा था कि उसके अधिकांश अनुयायी जौहरी का काम करते हैं और एक-दो वर्ष पश्चात् जब वे उसकी यात्रा को आते हैं, तो एक रत्न मूर्ति को भेंट चढ़ाते हैं। वे रत्न भण्डार में इकट्ठे होते रहते हैं और उनका मूल्य अब करोड़ों तक पहुँच चुका है। इसी तरह काशी का विश्वनाथ-मन्दिर, पुरी का जगन्नाथ-मन्दिर, नासिक का कालाराम मन्दिर आदि जितने बड़े-बड़े मन्दिर हैं, सब में प्रति वर्ष लाखों रुपए भेंट-स्वरूप चढ़ता है और वह तमाम महन्तों या पुजारियों को मिलता है। ऐसा अभागा मन्दिर या महन्त तो शायद ही कोई होगा, जिसके पास लाख-पचास हज़ार या कम से कम दस-पाँच हज़ार की सम्पत्ति न हो। साधू लोग हाथी-घोड़े रखते हैं, उनके यहाँ रक्षा के लिए बन्दूक़धारी रक्षक नियत रहते हैं, वे लोग सोने-चाँदी के बर्तनों में खाते हैं, ज़री और कमख़्वाब के कपड़े पहनते हैं, लाखों रुपए के मूल्य के रत्न-जड़ित आभूषण धारण करते हैं, और दुनिया की समस्त सुख-सामग्रियाँ उन्होंने अधिक से अधिक अपने पास संग्रह कर ली है।

यह तो हुआ उनके त्याग का वर्णन। जब उनकी परोपकार-वृत्ति पर नज़र डालते हैं तो मालूम होता है कि उनके समान स्वार्थी शायद ही कोई हो। देश में वर्षों से राजनीतिक आन्दोलन हो रहा है, और प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति ने उसमें यथासाध्य आर्थिक सहायता दी है, पर इन मालदार साधुओं ने शायद ही एक भी पैसा उसमें दिया हो। इसी प्रकार और भी कितने ही सार्वजनिक कार्य देश में होते रहते हैं और उनके लिए ग़रीब-अमीर गृहस्थ लोग चन्दा देते हैं, पर ये साधू लोग कभी इन फन्दों में नहीं फँसते। शायद ये लोग स्वयं दान लेते हैं और माँगते हैं, इससे इनमें दान देने की प्रवृत्ति नहीं रहती, अथवा ये समझते हैं कि सबसे अधिक पुण्य का काम तो हम लोगों को दान देना माना जाता है, अब हम किसको दान दें। कुछ साधू-महन्त सदावर्त, पाठशाला, औषधालय आदि में कुछ ख़र्च करते हैं, पर ये ही चीज़ें उनकी कमाई के ज़रिए हैं और इनको दिखला कर ही वे लोगों से रक़म वसूल करते हैं।

साधुओं का तीसरा बड़ा गुण सदाचार माना जाता है। इसकी जैसी मिट्टी पलीद आजकल के धर्म-जीवियों ने की है, उसका कोई ठिकाना ही नहीं। भारत का शायद ही कोई ऐसा धर्मस्थान मन्दिर या मठ होगा, जिसके अधिष्ठाताओं पर चरित्र-भ्रष्टता का इलज़ाम न लगाया जाता हो। जो धर्मगुरु या मन्दिरों के महन्त जनता के पूज्य माने जाते हैं और जिनके चरणों की रज प्राप्त करने के लिए लोग हज़ारों रुपए ख़र्च कर डालते हैं, उनके भी चरित्र और कर्मों का जब भेद खुलता है, तो दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। ये साधू या महन्त लोग नित्य बढ़िया से बढ़िया और क़ीमती भोजन करते हैं; सजे हुए सुखकर मकानों और कोठियों में रहते हैं; मख़मली गद्दे-तकियों पर सोते हैं; पचास-पचास और सौ-सौ रुपए तोले तक के इत्र लगाते हैं; पान, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, भाँग, शराब आदि समस्त नशीली और उत्तेजक चीज़ों का सेवन

करते हैं। कितने ही तरह-तरह की ताक़त की दवाइयाँ कस्तूरी, केसर, सोने के वर्क़, मोती का चूना और भस्में आदि खाते हैं। ऐसी दशा में अगर उनका चित्त चलायमान होता है और वे चेले-चेलियों अथवा वेश्याओं को कृतार्थ कर देते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। इन सब सामग्रियों का उपभोग करते हुए भी जो निर्विकार और निर्लेप रह सके उसे जीवन्मुक्त के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता। अथवा सर्वथा नपुंसक व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में निश्चल रह सकता है। पर ये साधू और महन्त न तो विदेह पदवी को पहुँच चुके हैं और न वे हिजड़े बन गए हैं, तब वे इस तमाम विलास-सामग्री और उत्तेजक पदार्थों का उपभोग करते हुए कामदेव के वाणों से व्यथित न हों, यह कैसे सम्भव है ?

इन साधू नामधारियों की काम-लीलाओं का यदि विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाय, तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है। कितने ही मन्दिर और तीर्थस्थान तो इस सम्बन्ध में ऐसे बदनाम हो चुके हैं कि लोग खुल्लमखुल्ला उनको दुराचार के अड्डों के नाम से पुकारते हैं। बम्बई प्रान्त के एक बड़े भारी तीर्थ में, जिसकी जनता में बड़ी महिमा है, नित्य सैकड़ों औरतें दुराचार के लिए पहुँचती हैं। उनमें से अनेकों को तो महन्त जी और उनके चेला तृप्त करते हैं और शेष मन्दिर के प्रधान-प्रधान भक्तों की सेवा में भेज दी जाती हैं। साथ ही वहाँ पर इस बात का भी बड़ा सुभीता है कि चाहे जो आदमी किसी ग़ैर-स्त्री को लेकर चला आवे और दो-चार दिन रह कर अपनी वासना की पूर्ति कर ले। हरिद्वार और ऋषीकेश जैसे परम पवित्र तीर्थों की भी यही दशा है। वहाँ के अधिकांश साधू खीर और मालपुए—जिनको वे अपने 'कोडवर्ड' में काली रोटी धौली दाल के नाम से पुकारते हैं—उड़ाते हैं और उनसे उत्पन्न हुई मस्ती गङ्गा-स्नान को आने वाली पञ्जाबी स्त्रियों पर उतारा करते हैं। प्रयाग, काशी, गया, पुरी आदि समस्त तीर्थों के मन्दिरों और धर्म-स्थानों के सम्बन्ध में इसी तरह की शिकायतें आमतौर से सुनने में आती हैं। दक्षिण के मन्दिरों की दशा तो और भी पतित है। वहाँ खुल्लम-खुल्ला प्रत्येक मन्दिर में देवदासियों का एक दल रक्खा जाता है, जो ठाकुर जी के आगे नाचने-गाने के सिवाय मन्दिर में रहने वाले पुजारियों की कामवासना की पूर्ति भी करती रहती हैं! ये देवदासियाँ बहुत छोटी उम्र में ही मन्दिरों में भेंट चढ़ा दी जाती हैं और उनका समस्त जीवन वहीं कटता है। कितनी ही बार कोई कामुक पुजारी किसी अल्प-वयस्क लड़की को ही पकड़ लेता है, जिससे वह मर तक जाती है। मथुरा और वृन्दावन तो कृष्ण जी की रङ्गस्थली माने जाते हैं और वहाँ पर तमाम स्त्रियाँ गोपिकाएँ मान ली जाती हैं, जिनके साथ रास-रङ्ग करना कृष्ण-भक्तों का 'कर्तव्य' है। वहाँ के गोकुलिये तथा गुसाइयों के मन्दिर इस तरह की काली करतूतों के लिए प्रसिद्ध हैं। इस सम्बन्ध में कितनी ही पुस्तकें छप चुकी हैं और मुक़दमे भी चले हैं, पर अभी उनकी स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ा है। इन गुसाइयों के भक्तों में, जो प्रायः बम्बई के भाटिए होते हैं, यह नियम प्रचलित हो गया है कि वे प्रत्येक नववधू को गुसाईं जी की सेवा में उपस्थित करते हैं और वह कहती है 'तन-मन-धन गुसाईं जी को समर्पण।' कोई-कोई शिक्षिता स्त्री ऐसा कहने से इन-कार करती है, तो उसके सास-ससुर या अन्य बड़े-बूढ़े उसे ऐसा कहने को लाचार करते हैं। यह 'समर्पण' केवल ज़बानी नहीं होता, वरन् कार्य-रूप में होता है और इस अवसर पर गुसाईं जी अछूती कुमारी कन्या के साथ ही साथ सैकड़ों हज़ारों रुपए की रक़म पा जाते हैं। पर कितनी ही बार जबकि शादी-विवाहों का ज़ोर होता है और गुसाईं जी को बार-बार यह 'ड्यूटी' पूरी करनी पड़ती है, तो बेचारों को लेने के देने पड़ जाते हैं। मथुरा के एक बड़े प्रसिद्ध गुसाईं ने एक बार ऐसे ही अवसर पर पहले से तैयार रहने के लिए कोई दवा खा ली। दवा बड़ी तीव्र थी और ठीक समय पर किसी कारणवश गुसाईं जी को शिकार हाथ न लगा। फल यह हुआ कि उनका गुप्ताङ्ग कई जगह से फट गया और जब डॉक्टरों ने उस पर तीन पट्टियाँ लगाईं तो वे फिर किसी लायक़ हो सके। इसी प्रकार एक और गुसाईं का हाल सुना था, जो इसी तरह के 'धर्म-कार्य' में बड़ा कमज़ोर हो गया था और उसका जीवन सङ्कट में था। पर भक्त लोग बराबर आते थे और प्राचीन नियम की रक्षा तथा रुपए के लालच से उस ग़रीब को यह काम

फिर करना पड़ता था। वह प्राणों के मोह से बार-बार इनकार करता था, पर भक्त लोग यह समझ कर कि गुसाइँ जी भेंट की रक़म के कम होने के कारण इनकार कर रहे हैं, बराबर उस रक़म को बढ़ाते जाते थे। अधिक रक़म देख कर मन्दिर के अन्य अधिकारी भी गुसाइँ जी को दबाते थे और उसे झख मार कर राज़ी होना पड़ता था। अन्त में बहुत ही थोड़ी उम्र में वह चल बसा।

इस तरह की काम-लीला सिर्फ़ बड़े-बड़े महन्त और गुसाइँ ही नहीं करते, वरन् उनके मन्दिर के प्रायः सभी लोग इसी रङ्ग में रँगे होते हैं। वे भी प्रायः महन्त जी का 'प्रसाद' पाया करते हैं। और बहुत से स्थानों में तो भक्तिनों और चेलियों की इतनी भरमार रहती है कि वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति इच्छानुसार उपभोग कर सकता है। छोटे मन्दिरों की भी प्रायः यही दशा होती है। अभी पत्रों में आसाम के एक मन्दिर का हाल छपा था, जिसके पुजारी के लड़के ने एक छः-सात वर्ष की मारवाड़ी बालिका के साथ बलात्कार करने की चेष्टा की। इसके फल से लड़की को कष्ट हुआ और उसे सुज़ाक़ हो गया। उस नरपिशाच पर मुक़दमा चलाया गया, और उसे दो साल की क़ैद और ३ सौ रु० जुर्माने की सज़ा दी गई। कलकत्ते के गोविन्द-भवन का नाम तो इस तरह की लीलाओं के लिए देश भर में प्रसिद्ध हो गया है और लोग उसका उदाहरण देने लगे हैं। इधर-उधर घूमने वाले साधू भी प्रायः दुराचारी होते हैं और मौक़ा पड़ने पर किसी भी स्त्री को ख़राब कर डालते हैं। ये लोग सन्तानहीन स्त्रियों को प्रायः बहका लेते हैं और उनका सतीत्व नष्ट कर देते हैं।

साधुओं के और भी अनेक गुण बतलाए गए हैं, पर जो कुछ ऊपर वर्णन किया गया है, उसे देखते हुए उनका ज़िक्र करना ही व्यर्थ है। जो सत्यवादिता और शान्ति-प्रियता आदि उनके प्रधान भूषण माने जाते थे, उनका अब उनमें लेश भी नहीं है। बड़े-बड़े महन्त लोग तो प्रायः ज़मींदारी और लेन-देन के मुक़दमों में लगे रहते हैं और उनमें सफलता प्राप्त करने के लिए रिश्वत देना, झूठी गवाही दिलाना, झूठा इलज़ाम लगाना आदि तमाम काम करते हैं। उन लोगों के यहाँ ज़मींदारों की तरह मुख़्तार, कारिन्दे आदि कर्मचारी रहते हैं और किसानों पर उसी तरह के ज़ुल्म किए जाते हैं जैसे और सब ज़मींदार करते हैं। आपस की लड़ाई भी इन लोगों में कम नहीं होती। प्राचीन समय में कुम्भ के अवसर पर पहले स्नान करने के लिए ये लोग इतना लड़ते थे कि सैकड़ों ख़ून हो जाते थे। शायद उन्हीं दिनों अखाड़ों की सृष्टि हुई थी और साधु लोग हाथी-घोड़े और हथियारों का उपयोग करने लगे थे। अङ्गरेज़ी राज्य के क़ायम हो जाने पर भी बहुत दिनों तक ये झगड़े चलते रहे। अब कुछ वर्षों से प्रत्येक अखाड़े का नम्बर नियत कर दिया गया है और स्नान के लिए नियम बना दिए हैं। फिर भी साधू लोग आपस में सर फोड़ने न लग जायँ, इसके लिए पुलिस और सरकारी अफ़सरों का बड़ा सख़्त इन्तज़ाम रहता है।

ये धर्मजीवी लोग समाज और देश के हित की दृष्टि से बड़े हानिकारक हैं। इनके कारण आर्थिक हानि तो है ही, उसके साथ ही ये समाज में चरित्र सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न करते हैं। ये लोगों में आलस्य का भाव उत्पन्न करते हैं, जिससे कितने ही लोग काम-धन्धा करना छोड़ कर भीख से पेट भरना ही उत्तम समझ लेते हैं। इनके कारण नशाख़ोरी की आदत फैलती है। शहरों और देहातों में प्रायः साधुओं की धूनी गँजेड़ियों और सुलफचियों का अड्डा होती है। वहीं पर नए लोगों को भी इस दुर्व्यसन में फँसाया जाता है। आज से नहीं, सैकड़ों वर्षों से ये देश की इसी तरह से हानि करते आए हैं। कबीर साहब ने, जो अब से क़रीब चार सौ वर्ष पूर्व हुए हैं, इन साधुओं के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे मालूम होता है कि उस समय भी इनकी रीति-नीति प्रायः अब के समान ही थी। कबीर के 'रैमिनि' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है :—

"हमने ऐसा योगी कभी कहीं पर आज तक नहीं देखा। ये लोग अपने धर्म का पालन तो करते नहीं, केवल इधर-उधर वृथा चक्कर लगाया करते हैं। कहने को तो ये लोग शिव-भक्त और प्रधान गुरु हैं, पर हठ-भूमि इनके योग का स्थान है और माया-भाण्ड इनका देवता है। क्या कभी दत्तात्रेय ने लोगों के घरों को नष्ट किया था? क्या शुकदेव ने सशस्त्र सैन्य एकत्र की थी? क्या नारद मुनि ने कभी बन्दूक़ चलाई थी? क्या

व्यासदेव ने कभी रणसिङ्गा बजाया था? जो धनुर्धारी हैं वे किस प्रकार अतिथि हो सकते हैं? जिनके पास लोभ है, वे किस प्रकार साधू कहला सकते हैं? कैसी लज्जा की बात है! ये लोग स्वर्णालङ्कार धारण करते हैं, घोड़े-ऊँट आदि रखते हैं, अनेक गाँवों के मालिक बने बैठे हैं और धनी कहलाते हैं। पास में यदि दावात रहेगी तो स्याही से वस्त्र अवश्य काला होगा।"

स्वामी दयानन्द ने भी इनके विषय में ऐसी ही सम्मति 'सत्यार्थ-प्रकाश' में कई स्थानों पर प्रकट की है और इन लोगों को देश तथा समाज के लिए निरर्थक बतलाया है। एक जगह ब्रह्मचारी और संन्यासियों का ज़िक्र करते हुए उन्होंने लिखा है :—

"कितने ही साधू नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और झूठमूठ जटा बढ़ा कर सिद्धाई करते हैं और जप-पुरश्चरणादि में फँसे रहते हैं। विद्या पढ़ने का नाम नहीं लेते कि जिस हेतु से ब्रह्मचारी नाम होता है, उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं। वैसे ही संन्यासी विद्याहीन दण्ड-कमण्डल ले भिक्षा माँगते करते फिरते हैं। वे वेद-मार्ग की कुछ भी उन्नति नहीं करते छोटी अवस्था में संन्यास लेकर घूमा करते हैं और विद्याभ्यास को छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी इधर-उधर, जल, स्थल, पाषाणादि मूर्तियों का दर्शन-पूजन करते-फिरते, विद्या जान कर भी मौन हो रहते, एकान्त देश में यथेष्ट खा-पीकर सोते पड़े रहते हैं और ईर्षा-द्वेष में फँस कर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते हैं। वे कषाय वस्त्र और दण्ड ग्रहण मात्र से अपने को कृतकृत्य समझते और सर्वोत्कृष्ट जान कर उत्तम काम नहीं करते हैं।"

शोक का विषय है कि जिन साधु-महन्तों आदि का चरित्र इस तरह भ्रष्ट हो गया है और जो नैतिक दृष्टि से साधारण व्यक्ति की अपेक्षा भी पतित हो चुके हैं, उन्हीं को हिन्दू लोग अपना गुरु मानते हैं, उनसे मन्त्र-दीक्षा लेते हैं, उनके पास अपनी स्त्रियों और कन्याओं को भी निस्सङ्कोच भाव से धर्मोपदेश श्रवण करने को भेज देते हैं। पर वे लोग आँखें खोल कर यह नहीं देखते कि उन गुरुओं का चरित्र कैसा हीन और ज़घन्य है और वे आदर-सम्मान तो दूर, पास बैठाने योग्य भी नहीं रहे हैं। जिस समाज के गुरु इस तरह के गर्हित काम करने वाले हों, उसका अधःपतन क्यों नहीं होगा? गुरु की चर्चा करते हुए 'वेदान्तसार' नामक ग्रन्थ के लेखक ने बतलाया है :—

"सच्चा गुरु वह व्यक्ति है जो स्वभाव से ही समस्त सत्कर्मों को करता हो; जिसने ज्ञान की तलवार से पाप-रूपी वृक्ष की सब शाखाओं और जड़ों को काट डाला हो और विवेक के प्रकाश द्वारा उस घोर तिमिर को नष्ट कर दिया हो, जिसमें पाप को आश्रय मिलता है; जो आत्म-सम्मान और स्वतन्त्रता की रक्षा करता हुआ सांसारिक व्यवहार करता हो; जो अपने तमाम शिष्यों के लिए पुत्र-भाव रखता हो; जो अपने बर्ताव में मित्र और शत्रु के बीच किसी प्रकार का भेदभाव न रखता हो और दोनों के प्रति समान रूप से कृपा-भाव प्रदर्शित करता हो; जो सोने और चाँदी की तरफ़ उसी भाँति उदासीनता से देखता हो; जिस प्रकार कि लोहे के टुकड़ों और ठीकरों को देखा जाता है और सोने-चाँदी का वही मूल्य समझता हो जो इन वस्तुओं का समझा जाता है; और जिसको सबसे अधिक चिन्ता उस अज्ञानान्धकार को दूर करने की हो जिसमें मनुष्य जाति डूबी हुई है।"

आजकल के गुरु इस पवित्र कर्तव्य को किस तरह पूरा करते हैं, इसके सम्बन्ध में एक निष्पक्ष विदेशी और दो भारतीय विद्वानों की सम्मति देखिए :—

"पर इस उत्तम श्रेणी के गुरु निश्चय ही बहुत कम देखने में आते हैं। गुरुओं का प्रभाव भी अधिक नहीं होता, क्योंकि वे अपने शिष्यों के पास साल में एक बार चक्कर लगाते हुए पहुँचते हैं। सब बातों पर विचार करने से यही जान पड़ता है कि भारतवर्ष में 'सच्चे गुरु' का प्राप्त कर सकना बड़ा कठिन है। अधिकांश गुरु का पेशा करने वाले ब्राह्मण, जो बालकों को मन्त्र-दीक्षा और धार्मिक विषयों में सम्मति देते हैं, उनके कल्याण का बहुत कम ख़याल रखते हैं। इसके विपरीत अपने शिष्यों की अज्ञानता से लाभ उठा कर वे अपना उल्लू सीधा करते हैं और चरित्र की निगाह से भी वे कुछ श्रेष्ठ नहीं होते। श्री० गोविन्ददास ने लिखा है—"पौराणिक उपदेशक, अनगिनती सम्प्रदायों के साधू तथा वैरागी इत्यादि प्रायः बड़े नीच प्रकृति के और

उन्नति-विरोधी व्यक्ति होते हैं। वे जन-समूह की भावनाओं और अन्धविश्वासों के अनुकूल बातें करके लोगों को ठगा करते हैं।" एक दूसरे हिन्दू लेखक का मत है — "गुरु और पुजारी दोनों अज्ञान और अहङ्कार में एक-दूसरे से चढ़ा-ऊपरी करते रहते हैं। ये दोनों ही विषय-लोलुप, सिद्धान्त-शून्य होते हैं और ऐसा कोई दुर्गुण नहीं, जो उनमें न पाया जाता हो।"*

पुजारियों के सम्बन्ध में उपरोक्त लेखक का कथन इससे भी अधिक कटु है। वह लिखता है :—

"सारांश यही है कि ब्राह्मण पुजारी भारतवर्ष में बहुत ही बदनाम हैं। मुझे स्मरण नहीं कि इन लोगों के सम्बन्ध में स्वयं उनको छोड़कर मैंने और किसी के मुँह से एक भी भली बात सुनी हो। बनारस में उनका ज़िक्र बड़े बुरे शब्दों में किया जाता है। उस शहर के भारतीय सज्जनों ने मुझसे कहा था कि कोई-कोई मन्दिर तो पूरे वेश्यालय हैं। ये पुजारी बेईमान और भ्रष्टचरित्र ही नहीं होते, वरन् प्रायः वे हिन्दू स्त्रियों के साथ, जो उनमें पूरा विश्वास रखती हैं, छल-कपट का व्यवहार और विश्वासघात करते हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय धर्मजीवियों की शक्ति और प्रभाव साधारण नहीं है और उनका सङ्गठन भी काफ़ी मज़बूत है। अनेक मन्दिरों और जायदादों पर उनका अधिकार सैकड़ों वर्षों से चला आया है और कितनी ही जायदादों को उन्होंने हाल में ख़रीदा है। हिन्दू-समाज पर उनका जो असीम प्रभाव है, उसमें कमी पड़ने पर भी अभी वह इतना अधिक है कि यदि उसे हटाने की कोई विशेष चेष्टा न की जाय तो वह पचासों वर्षों में पूरी तरह नष्ट नहीं हो सकता। ऐसी दशा में प्रश्न होता है कि आख़िर यह समस्या किस प्रकार हल की जाय ?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि इन लोगों के सुधार की एकमात्र ज़िम्मेदारी हिन्दू नवयुवकों और नवयुवतियों पर है। पुराने विचारों के और बड़े-बूढ़े लोग तो उनको मस्तक झुकाते-झुकाते इतना दब गए हैं कि उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस ही नहीं कर सकते। वे उनको 'धर्म की गाय' समझते हैं और उनको किसी भी हालत में दुःख पहुँचाना घोर पाप मानते हैं। यहाँ तक कि जब ये लोग स्पष्ट जान जाते हैं कि अमुक साधू दुराचारी, धूर्त अथवा बदमाश है तो भी वे उसके विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहते। कितने ही अवसरों पर तो ये लोग चोरी-बदमाशी करते हुए पकड़े जाने वाले व्यक्तियों का पक्ष इसी कारण ग्रहण कर लेते हैं कि वे गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए अथवा साधू के वेश में होते हैं। ऐसे दास-मनोवृत्ति वालों से इस सम्बन्ध में किसी तरह की आशा करना निरर्थक है।

पर जिन लोगों के हृदय में देश और समाज के कल्याण की भावना जाग्रत है और जो समझते हैं कि धर्म के नाम पर इस प्रकार ठगी और अनाचार को चलने देना सर्वसाधारण के हित की दृष्टि से घोर हानिकारक है, उनका कर्तव्य है कि जिस प्रकार वे समाज की जड़ को खोखला करने वाली अन्य कुरीतियों और रूढ़ियों के अन्त करने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार इन धर्मजीवियों की समस्या को हल करने के लिए भी उद्योग करें। यद्यपि भारतवासियों की स्वभावगत प्राचीन-प्रियता और परिवर्तनशीलता के अभाव को देखते हुए यह आशा करना कठिन है कि यह संस्था शीघ्र ही जड़-मूल से उठ जायगी ; पर उद्योग करने से इसका सुधार हो सकना असम्भव नहीं है। यदि इस दल का सुधार हो जाय और यह देश की आवश्यकताओं का ध्यान रख कर काम करना आरम्भ करे, तो निश्चय ही यह समाज का एक लाभदायक और महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन सकता है, जैसा कि शायद यह किसी समय था। ये लोग एक दृष्टि से स्वयंसेवक-दल के समान हैं और यदि चेष्टा करें तो इस कार्य को वर्तमान सेवा-समितियों से कहीं अच्छी तरह कर सकते हैं। स्वयंसेवकों को फिर भी घर का बहुत सा बन्धन होता है और कितनों ही को आर्थिक चिन्ताएँ भी रहती हैं, पर ये फक्कड़ लोग इन सब झंझटों से मुक्त होते हैं। उनको न घर-बार की चिन्ता होती है, न जोरू-बच्चों की फ़िक्र। उनके खाने-पीने का प्रबन्ध अब भी समाज ने कर रक्खा है। फिर जब वे समाज को हानि पहुँचाने के बजाय उसके सच्चे सेवक बन जायँगे, तब तो यह प्रश्न बिलकुल ही न रहेगा। इतना ही नहीं, ये लोग स्वराज्य-प्राप्त भारत की सेना का कार्य भी कर सकते हैं ; और

* 'India and its Faiths'—by James Bissett Pratt, Ph. D.

जिस सेना-विभाग के लिए इस समय भारतवर्ष को अपनी आय का आधा अंश ख़र्च कर देना पड़ता है, वह इनकी सहायता से नाममात्र के ख़र्च में चल सकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि के विषय में ये जनता की बहुत-कुछ सेवा कर सकते हैं। इनके पास जो जायदादें हैं या इनको भेंट-पूजा आदि से जो लाखों रुपए की आमदनी होती है, उसका उपयोग यदि ये इन कार्यों में करें और स्वयम् उनके सञ्चालन में योग दें तो सर्वसाधारण का बहुत-कुछ उपकार हो सकता है।

पर इन लोगों की स्वार्थमय प्रवृत्ति और हठधर्मी को देख कर इस प्रकार का शुभ परिवर्तन शीघ्र ही हो सकने की आशा नहीं होती। ये लोग तीर्थों और धर्म-स्थानों के साथ लगी हुई जायदादों तथा भेंट-पूजा आदि से मिलने वाले धन को अपनी बपौती समझते हैं और उनका ख़याल है कि वे उसका उपयोग चाहे जिस प्रकार कर सकते हैं। हिन्दू नवयुवकों का कर्तव्य है कि वे इन लोगों के इस ख़याल को दूर कर दें। कुछ समय पूर्व सिक्खों के गुरुद्वारों की भी ठीक हिन्दुओं के मन्दिरों और मठों की सी दशा थी। उनके महन्त उनकी सम्पत्ति को निजी जायदाद मानते थे और उसका मन-माना उपयोग करते थे। अकालियों ने इस दशा को बदलने का बीड़ा उठाया और यद्यपि उनको जलते हुए तेल में अपनी देह और प्राणों को उत्सर्ग तक करना तथा लाठियों से सर फुड़वाना पड़ा, पर कुछ ही समय में बीसियों गुरुद्वारों का प्रबन्ध उन्होंने अपने हाथों में ले लिया, और शेष के इन्तज़ाम में भी बहुत-कुछ सुधार कर दिया। इसी तरह का काम हिन्दू नवयुवक भी कर सकते हैं, अगर वे इसके लिए कमर कस लें। आरम्भ में कष्टों का सामना करना अनिवार्य है, पर जहाँ उनको दस-बीस स्थानों में सफलता मिली, शेष लोग स्वयं ही परिस्थिति के सामने सर झुका देंगे। इसके लिए सबसे पहला कार्य जनमत को तैयार करना है। जब जनता इनमें फैली हुई ख़राबियों और इनसे होने वाली हानि को समझ जायगी, तथा इनका पक्ष-समर्थन करना बन्द कर देगी तो इनकी स्थिति अपने आप कमज़ोर हो जायगी। सच तो यह है कि इनके अस्तित्व और बुराइयों की ज़िम्मेवारी पूर्णतया हिन्दू-समाज पर ही है। वे लोग इनको खिला-पिला कर मस्त बनाते हैं, पर कभी आँख खोल कर यह नहीं देखते कि आख़िर ये क्या करते हैं और किस प्रकार अपना जीवन गुज़ारते हैं? यदि सर्वसाधारण इनके कार्यों और चरित्र पर ध्यान रखने लगें, तो इनका सुधार अनायास हो जाय।

परिवर्तन

[श्री० बलभद्रप्रसाद जी गुप्त, विशारद, "रसिक"]

सूख गए पाटल-प्रसून हा! उग आई है घास यहाँ।
कोकिल गए, काग पर सुख से करते हैं अब वास यहाँ॥
भ्रमर गए सब भाग, मयूरों ने भी त्यागा नाता है।
जाने क्यों मुझ हतभागिन से रूठा भाग्य-विधाता है??

बन्द कपाटें खोल झाड़-झङ्खाड़ यहाँ तुम पाओगे।
निज मञ्जुल मोती की लड़ियाँ व्यर्थ यहाँ बिखराओगे॥
पथिक! न पहले सा पाओगे पावन प्रेमासव-प्याला।
क्योंकि नहीं है प्रस्तुत मेरा मोहन मोहन-छवि-वाला॥

आशा भी आकुल होकर बन गई निराशा की चेरी।
इस सूनी कुटिया की पर क्यों पथिक! लगाते तुम फेरी??
कैसे कहें हमारा मोहन हाय! गया है त्याग हमें?
कालकूट सा, विष सा लगता अब है जग-अनुराग हमें॥

स्वागत कर न सकूँगी मन दुख से सन्तप्त हमारा है।
सुख पावे वह कैसे जिससे रूठा उसका प्यारा है??
क्यों तुम चुप हो गए अरे मत निष्ठुर हो कुछ तो बोलो?
है मेरा अनुरोध मान लो व्यर्थ न यह साँकल खोलो॥
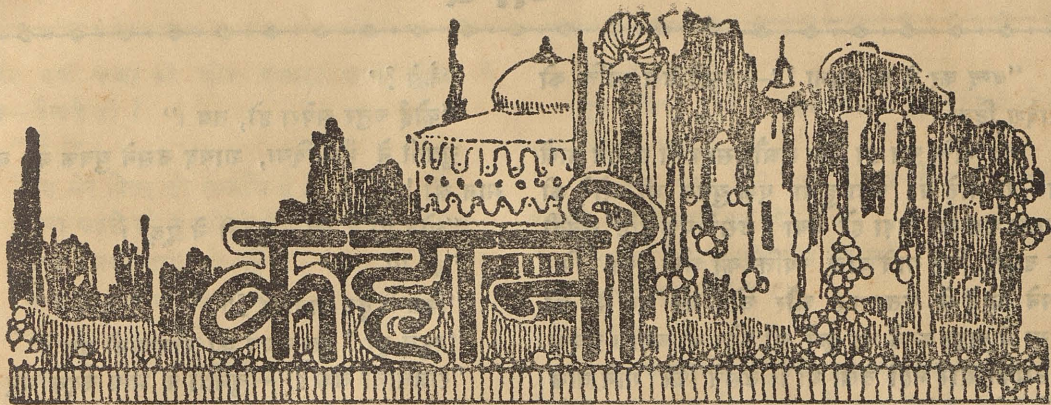
बदला

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

प्रतापगढ़ के ज़िले में एक छोटी सी ज़मींदारी थी। ज़मींदारी छोटी सी होने पर भी वहाँ का ताल्लुक़ेदार बहुत शक्तिशाली समझा जाता था। उसका कारण यह नहीं था कि वह प्रजा-वत्सल था, अथवा उसके पास कोई वास्तविक शक्ति थी। कारण यह था कि वह बड़ा अत्याचारी, नृशंस तथा प्रजापीड़क था। उसके गुण नहीं, उसका आतङ्क उसे शक्तिशाली बनाए हुए था। इस आतङ्क में उसे ज़िले के अधिकारियों का सहयोग भी प्राप्त था। इसी कारण उसकी तूती भी ख़ूब बोलती थी। उसकी प्रजा चाहे उससे घृणा करती थी, परन्तु फिर भी उसके जन्म-दिन के उत्सव में किसी का यह साहस न होता था कि अपने को अनुपस्थित कर सके। इधर-उधर उसके प्रति विरोध के भाव प्रदर्शित किए जाते थे, परन्तु किसी का यह साहस न होता था कि खुल्लम-खुल्ला उसका विरोध कर सके। इस प्रकार कई वर्ष तक अत्याचार का जीवन व्यतीत करके एक दिन वह इस संसार से कूच कर गया।

राजा साहब इस संसार से कूच कर गए, यह सुन कर प्रजा को कुछ सन्तोष हुआ। सोचा, शायद कुमार इतने अत्याचारी न हों। कुमार वीरसिंह राजकुमार-कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, स्वभाव से ही उनमें कुछ प्रजा-वत्सलता थी। बाल्यकाल से ही प्रजा ने उनमें वे गुण देखे, जिनके कारण एक राजा अपनी प्रजा को परम सुखी तथा सन्तुष्ट बना सकता था। राजा की मृत्यु का समाचार पाकर जब राजकुमार घर आए, तो लोगों ने हर्षध्वनि तथा जयजयकार से उनका स्वागत किया। वे यह भूल गए थे कि अभी राज्य द्वारा मृत राजा के लिए शोक मनाया जा रहा था।

२

मोग़लसराय से लखनऊ जाने वाली रेल की लाइन उस समय ओ० आर० आर० कहलाती थी। उसी के किनारे एक छोटा-सा स्टेशन राजा साहब की ज़मींदारी में था। उस स्टेशन से कुछ दूर हट कर एक छोटा-सा ग्राम था, जिसे महाराजपुर कहते हैं। ग्राम के बाहर एक छोटा परन्तु भली-भाँति लगाया हुआ एक बाग़ था। उस बाग़ के बीच में एक मकान बना हुआ था। बाग़ को सींचने के लिए दो व्यक्ति कुँए से बैलों द्वारा पानी निकाल रहे थे। एक व्यक्ति ने ज़रा ज़ोर से गाना शुरू किया—

'राजकुमरवा चढ़े सिंहासन, परजा हरष मनाई हो !'

वह व्यक्ति अभी गा ही रहा था कि मकान में से एक युवती निकली। उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा था।

"बन्द कर दे यह गाना !"—उसने उस व्यक्ति को आदेश दिया।

वह व्यक्ति चुप हो गया। और साथ ही सामने वाले मार्ग पर घोड़े पर चढ़ा हुआ एक युवक भी घोड़े की लगाम कस कर खड़ा हो गया। उसने एक दृष्टि युवती पर डाली, फिर गाने वाले व्यक्ति की ओर देखा। फिर अपने घोड़े से उतर कर और घोड़े को एक पेड़ की छाया में खड़ा करके वह कुएँ की ओर को बढ़ा। युवती ने उसकी ओर नहीं देखा था। उसने फिर गाने वाले व्यक्ति को सम्बोधन करके कहा तुम्हें याद नहीं है, मैंने कहा था कि यहाँ कोई राजा या राजघराने के किसी व्यक्ति का नाम न ले।

"लेकिन रानी, राजकुमार का अब तिलक होने वाला है। वह राजा हो जायँगे।"

"इससे क्या हुआ? सर्प के बच्चे बड़े होकर सर्प ही होते हैं।"

"शायद सब नहीं!"—पीछे से युवक ने कहा, जो अब युवती के बिलकुल पास आ चुका था!

युवती चौंक पड़ी।

उसे यह आशा भी नहीं थी कि कोई वहाँ आ जाएगा। उसने अपनी साड़ी शीघ्रता से ठीक की और बोली—क्षमा करें!

"क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए!"

"किस बात की?"

"इस बाग़ में बिना आज्ञा चले आने के लिए!"

"परन्तु यहाँ सबको आने की आज्ञा है। वहाँ सामने उस कोने पर धर्मशाला है और उसके पास ही प्याऊ है। यहाँ सब कोई आते-जाते हैं।"

"बड़ी अच्छी बात है। परन्तु यह साँप के बच्चों की × × ×।"

"उनसे आप क्या लीजिएगा, वे अपनी बातें हैं।"

"परन्तु मैंने कुछ सुन ली थीं, इसीलिए मैंने कहा था कि शायद सब नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है?"—युवती ने पूछा।

"यदि सर्प के बच्चों को विष-रहित कर दिया जाय?"

"यह भी हो सकता है?"

"क्यों नहीं?"

"कैसे?"

"कोई चतुर सपेरा हो, तब।"

युवती ने हँस दिया, शायद उसने युवक की बात मान ली!

"घोड़े पर हैं?"—युवती ने पूछा।

"हाँ!"

"कितनी दूर जाना है?"

"बहुत दूर! इस राज्य की राजधानी तक।"

"राजधानी तक?"—युवती के भाव बदल गए।

"हाँ, राजधानी तक! देखता हूँ, राजा और राजकुमार के साथ राजधानी के नाम से भी तुम्हें घृणा है!"

"क्या आपका सम्बन्ध राजघराने से है?"

"बिलकुल नहीं। मैं तो एक विदेशी हूँ। राजदरबार देखने के लिए ही वहाँ जा रहा हूँ। क्या तुम राजतिलक में नहीं चलोगी?"

"इन बातों को पूछ कर आप क्या करेंगे! चलिए कुछ देर बैठ कर पानी पी लीजिए।"

"बहुत अच्छा, धन्यवाद!"

दोनों चुपचाप मकान के बरामदे की ओर चल दिए।

३

पानी पी लेने के बाद युवक चारपाई पर बैठ कर बोला—तो तुम कुमार के राज्याभिषेक में नहीं जाओगी?

"नहीं"—युवती ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

"क्यों?"

"बहुत बड़ा कारण है।"

"बताओगी नहीं?"

"अपना दुःख है, दूसरों को बताने से लाभ क्या?"

"शायद दूसरा उस दुःख में भागी बन जाय?"

युवती हँस पड़ी।

युवक ने भी हँस दिया।

"तो सुनोगे ही?"—युवती ने पूछा।

"यदि कोई आपत्ति न हो, तो।"

युवती का मुख गम्भीर हो गया। वह उठी और युवक को भी उठने का इशारा किया। युवक उठा और उसके पीछे हो लिया। उसने एक चबूतरे के पास

जाकर एक पत्थर की ओर इशारा करके युवक से पूछा—देखते हो?

"हाँ!"

"यह मेरे पिता की समाधि है।"

इतना कहते ही युवती के नेत्रों में आँसू आ गए।

"क्या उनकी मृत्यु हो गई?"

"वे मार डाले गए थे!"

"मार डाले गए थे?"

युवती ने शिर 'हाँ' में हिला दिया।

"क्या राजा × × ×?"

"हाँ, राजा द्वारा। निर्दयता से, पशुता से मेरे निरपराध पिता का वध कर दिया गया था। कारण यही था कि मेरे पिता ने कुमार के अठारहवें जन्म-दिन के उत्सव का कर नहीं दिया था और उसका विरोध किया था। यदि कुछ था, तो यही उनका अपराध था। यही समाधि है, जो नित्यप्रति मेरे सामने उस भीषण कृत्य का चित्र खींच देती है, मेरी घृणा, मेरी बदले की भावना को जाग्रत कर देती है!"

"बदला लोगी?"

"अवश्य। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

"किससे?"

"नए राजा से।"

"किस प्रकार?"

"उसकी हत्या करके। रक्त के बदले रक्त।"

"परन्तु नए राजा का इसमें क्या दोष है?"

"पिता के धन में, पिता की भूमि में, पिता के अधिकारों में यदि राजकुमार का अधिकार है तो पिता के दोषों में, पिता के अपराधों में, पिता के पापों में भी उसका भाग क्यों न हो? पिता के कृत्य का बदला पुत्र से ही लेना होगा।"

युवक कुछ देर तक युवती के मुख की ओर देखता रहा। फिर बोला—क्या तुमने कभी कुमार को देखा है?

"नहीं।"

"तो फिर कैसे बदला लोगी?"

"जब बदला लूँगी तब उसका उपाय भी कर लूँगी।"

"मेरे साथ क्यों नहीं चलतीं? दरबार के समय कुमार को देख लेना।"

"अभी नहीं।"

युवक विदा हुआ। चलते समय युवती उसे घोड़े तक पहुँचाने आई।

"न जाने क्यों, मैंने अपने हृदय के सारे उद्गार आपके सामने प्रगट कर दिए हैं।"

"शायद मैं कुछ सहायता कर सकूँ!"

"कभी फिर मिलेंगे?"

"अवश्य!"

युवक चला गया। युवती कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही, और फिर आप ही आप प्रसन्न होती हुई घर की ओर चल दी।

४

कुछ दिनों के बाद युवती के पास कुँवर साहब का एक सन्देश आया। कुँवर, जो अब राजा कहलाने लगे थे, युवती के साथ विवाह करना चाहते थे। युवती ने वह पत्र, जिसमें उक्त सन्देश लिखा था, एक ओर फाड़ कर फेंक दिया और उस पत्र के लाने वाले को बाग़ से बाहर निकलवा दिया। उस घटना पर युवती बार-बार अपना क्रोध प्रगट कर रही थी। कुछ व्यक्तियों ने उसे समझाया भी कि वह पागल हो गई है, जो राजा के सन्देश को इस प्रकार ठुकरा रही है। परन्तु उसने किसी की बात न सुनी। उस दिन उसे समाचार मिला कि पास के ग्राम में राजा के अधिकारियों ने एक किसान को लगान न दे सकने पर पीटा है और पुलिस द्वारा गिरफ़्तार करा लिया है। युवती पृथ्वी पर पैर पटक कर कहने लगी—यह अत्याचारी राजा है, जो मेरे साथ विवाह करना चाहता है। कितनी धृष्टता है!

वह यही विचार कर रही थी कि उसका परिचित युवक आ गया। युवती की आकृति को देख कर वह बोला—क्यों, आज यह क्या बात है?

"वही राजा!"

"राजा ने क्या कर दिया!"

"क्या कर दिया? कर तो नहीं दिया, करना चाहता था।"

"क्या?"

"विवाह!"

"विवाह, तुमसे?"

"हाँ, देखो न इस धृष्टता को !"

"धृष्टता इसमें कैसी, प्रेम है !"

"प्रेम ?" युवती हँस कर बोली —"एक अत्याचारी के हृदय में प्रेम ?"

"शायद तुम नहीं समझती हो। तुम्हारे विचार में राजा जितना अत्याचार करता है, शायद वास्तव में उतना वह न करता हो !"

"तुम्हें क्या पता ?"

"मैंने राजा को देखा है।"

"हाँ ?"

"हाँ, और मैं समझता हूँ कि राजा अत्याचारी नहीं है। वह अपनी प्रजा को समझना चाहता है, उसके साथ न्याय, प्रेम तथा दया का व्यवहार करना चाहता है !"

"ओह सच ? और इसी प्रकार का व्यवहार करने के लिए मेरे साथ विवाह करना चाहता है।"

"तुम क्या समझती हो ?"

"वह इस प्रकार बदला लेना चाहता है।"

"बदला नहीं, वह तुम्हें वास्तव में प्यार करता है। तुम्हारी पूजा करता है।"

"बिना देखे ?"

"शायद इस कारण कि तुमने दरबार में न जाने का साहस दिखाया था ! यदि तुम उसे एक बार देख पाओ, उसके हृदय को समझ पाओ !"

"तो उससे अपने पिता का और अपने अपमान का बदला ले लूँ।"

"वह इतना बुरा नहीं है।"

"तुम क्या समझ सकते हो। उनसे पूछो, जो उसके लिए तबाह हो रहे हैं। उनसे पूछो, जो निरपराध कोड़ों से पीटे जाकर जेल में भेजे जा रहे हैं और जिनके घर वाले दाने-दाने को तरस रहे हैं।"

"मुझे दिखाओगी वह सब कुछ ?"

"हाँ !"

युवती के साथ युवक ने सब कुछ देखा। वह सिहर उठा।

"मैं नहीं समझता था कि राजा के अधिकारी इस प्रकार के अत्याचार कर सकते हैं।"—वह बोला।

"यह कहो, राजा कर सकता है।"

"शायद राजा का इसमें दोष नहीं है। उसे इन सब बातों का पता भी न हो। उसे अभी तक कोई इस प्रकार के दृश्य दिखाने वाला ही न मिला हो।"

"तुम ऐसा समझते हो ?"

"मैं तो यही समझता हूँ। मैं किसी प्रकार राजा के पास ये सब बातें पहुँचाऊँगा।"

"तुम पहुँचा सकते हो ?"

"हाँ !"

"तो तुम्हें राजा के महल में जाने की आज्ञा भी होगी ?"

"हाँ।"

"और तुम यह भी जानते होगे कि राजा कहाँ सोता है।"

"सब कुछ !"

युवती चुप हो गई !

"क्यों पूछ रही थीं ये सब प्रश्न ?"—युवक ने पूछा।

"यों ही।"

"यों ही नहीं, कोई कारण है।"

"कभी समय आने पर फिर बताऊँगी।"

५

वे अब घनिष्ट मित्र बन गए थे। युवक बहुधा बाग़ में आकर युवती से मिला करता था। इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गए। एक दिन दोनों बाग़ के उस किनारे पर बैठे थे, जहाँ एक तालाब बना हुआ था। सन्ध्या का समय था। दोनों पश्चिम में डूबते हुए सूर्य की छाया तालाब में देख रहे थे। ध्यान-मग्न युवती की ओर देख कर युवक बोला—सूर्य उदय होता है, फिर अस्त भी हो जाता है। और दूसरे दिन प्रातःकाल फिर उदय होता है। परन्तु तुम्हारा जीवन एक-सा चला जा रहा है। क्या इसमें उदय-अस्त के लिए कोई स्थान नहीं है ?"

"क्यों नहीं ? परन्तु × × ×"

"परन्तु ?"

"ओ, कुछ नहीं।"

"कुछ है, बहुत कुछ है ; उसे छिपाओ मत !"

"मत पूछो !"

"जानती हो कि मैं तुम्हें × × ×?"

"जानती हूँ !"

"फिर 'हाँ' कहोगी ?"

"कहती, परन्तु × × ×।"

"ओह, इस 'परन्तु' को हमारे बीच में न आने दो !"

"मेरी एक प्रतिज्ञा है।"

"क्या ?"

"जब तक राजा से बदला न ले लूँगी, तब तक विवाह न करूँगी।"

"यह तो कुछ भी नहीं !"—कह कर युवक उछल पड़ा।

युवती उसकी ओर देखने लगी।

"तुम राजा की मृत्यु चाहती हो ?"—युवक ने पूछा।

"हाँ।"

"और जो उसमें तुम्हें सहायता देकर सफल बनावे, उसीके साथ तुम विवाह कर लोगी ?"

"हाँ।"

"मैं तैयार हूँ !"

"क्या ?"

"हाँ, मैं तैयार हूँ। मैं राजा की हत्या करूँगा ?"

"तुम × × × तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"यह कोई नई बात नहीं है। बहुत दिनों से मेरा भी यही विचार हो रहा था कि राजा की हत्या होनी चाहिए। जो कुछ अत्याचार प्रजा पर हो रहा है, वह राजा के नाम पर। जब तक राजा है, तब तक वह चलेगा। जिस दिन राजा नहीं रहेगा, जिस दिन प्रजा के हाथ में सारी शक्ति आ जायगी, जिस दिन राज्य के कर्मचारी प्रजा के दास होंगे, उस दिन प्रजा के सारे कष्ट मिट जायँगे।"

"तो तुम मेरा साथ देने के लिए तैयार हो ?"—युवती ने प्रसन्न होकर पूछा।

"अन्त समय तक।"

"क्या सहायता दे सकते हो ?"

"जो कुछ कहो। राजा की हत्या मैं करूँ, यह तुम्हें पसन्द होगा ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"यह मैं स्वयं करूँगी। बदला मेरा है, मैं ही उसे लूँगी।"

"फिर मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"तुमने एक बार कहा था कि तुम्हारा प्रवेश महलों में है !"

"हाँ।"

"मुझे कल रात को राजा के शयन-भवन में पहुँचा सकते हो ?"

"बिना किसी रुकावट के।"

"कोई और न जानने पावे !"

"कोई नहीं !"

युवती ने हाथ बढ़ाया, युवक ने अपना हाथ उस पर मारा।

"उसके बाद ?"—युवक ने अभिलाषा भरी दृष्टि से युवती की ओर देख कर पूछा।

"उसके बाद मैं तुम्हारी हो जाऊँगी !"

६

युवती राजमहल के पास पहुँची। युवक ने उसे भीतर जाने का मार्ग पहले ही बता दिया था। वह उधर चली; एक द्वार मिला, दूसरा द्वार मिला। इस प्रकार कई द्वार मिले, परन्तु उसे किसी ने रोका नहीं। कोई रोकने वाला ही उसे दिखाई न दिया। वह भीतर पहुँच गई, जहाँ राजा शयन करते थे। वह वहाँ निरापद पहुँच गई, इसका श्रेय वह उस युवक को ही दे रही थी। न जाने उसने क्या किया था कि वह इतनी सरलता से और इतना शीघ्र राजा के पलँग के पास पहुँच गई।

कमरे में अँधेरा था। चारों ओर निस्तब्धता थी, राजा के श्वास लेने में भी अधिक शब्द नहीं हो रहा था। वह पलँग को धीरे से टटोलते हुए राजा के शिर की ओर चली। एक हाथ में उसने अपना छुरा ले लिया। इतने ही में कमरे में एक साथ प्रकाश हो गया। युवती का हाथ काँपने लगा। राजा उठे। उठ कर खड़े हो गए। उनका मुख युवती की ओर हुआ। युवती के मुख से एक चीख़ निकल गई।

"तुम !?"—उसने सँभल कर युवक से पूछा।

"मैं राजा हूँ।"

"तुम राजा ? मैं विश्वास नहीं कर सकती।"

"अब तो करना ही पड़ेगा।"

"ओफ़, यह सब क्या हो गया!"—युवती ने निराशा से कहा।

"सब ठीक है। अपना छुरा सँभालो। यह तुम्हारा अपराधी खड़ा है। बदला ले लो!"

युवती ने कुछ देर तक युवक की ओर देखा, फिर छुरे की ओर देखा, फिर छुरा उठा कर हाथ में ले लिया।

"देख क्या रही हो? करो अपना काम!"—युवक ने कहा। युवती ने फिर युवक के नेत्रों की ओर देखा और छुरा एक ओर फेंक कर वह रोने लगी।

"क्यों रो रही हो?"

"मुझसे बदला न लिया गया। मैं तुम्हें नहीं मार सकती।"

"प्रेम?"

युवती ने स्वीकृति में शिर हिला दिया।

"तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी, घबराओ मत!"

"कैसे?"

"राजा को मैंने मार डाला है और वह भी तुम्हारे साथ रहने से जो प्रभाव पड़ा था उसके कारण!"

"राजा को तुम कैसे मार सकते थे?"

"यह पढ़ो!"—कह कर युवक ने एक काग़ज़ युवती की ओर कर दिया।

युवती ने उसे पढ़ा—

"मैं राज्य करने के लिए नहीं बनाया गया। राज्य चलाने के लिए जो अत्याचार आदि आवश्यक हैं, वे मुझसे नहीं हो सकते। मैं सारे राज्य को किसानों में विभाजित करके अपनी पत्नी के साथ किसी शान्त स्थान पर साधारण जीवन व्यतीत करने जा रहा हूँ।"

युवती की आकृति खिल गई। वह अपने प्रेमी के निकट आ गई और उसके वक्षःस्थल पर अपना शिर रख कर बोली—ओह, मेरे हृदय के राजा!

"अब राजा शब्द का प्रयोग मत करो, प्रिये, मैं इससे घृणा करने लगा हूँ।"—युवक ने कहा!

"अच्छा, मेरे हृदय के प्रेज़िडेण्ट!"—युवती ने हँस कर कहा। युवक भी इस पर ख़ूब हँसा। उनकी हँसी ऐसी थी कि उनके चले जाने पर भी वहाँ का वायु-मण्डल उससे चिरकाल तक गूँजता रहा!

मनुहार

[श्री० मोहनलाल जी महतो "वियोगी"]

वह था कौन मुझे बतलाना?
हे विस्मृति! तू फिर से मेरी स्मृति की ज्योति जगाना।

यौवन की मधु-दोपहरी में
प्यार-सुरा का प्याला—
है सपने सा याद मुझे इन होठों तक ले जाना।

चूम-चूम कम्पित अधरों से
मेरे नत-नयनों को,
सुला दिया था हाय! किसी ने बस इतना ही जाना।

रजनी-गन्धा के सुमनों को
विदा दिया ऊषा ने,
दिन ने देख लिया छिप कर उनका छनभर मुस्काना।

सूनेपन ने मुझे जगाया
सब कुछ खो जाने पर,
उसे अभाव रूप में ही पाया; कुछ-कुछ पहचाना।

कौन सुखद कसकन-सा
वह था, कोई मुझे बता दे,
सिखलाया न स्वयम् ही सीखा जिसने नेह निभाना।
वह था कौन मुझे बतलाना?

शीघ्रता कीजिए ! केवल थोड़ी सी प्रतियाँ शेष हैं !!
बाल-रोग-विज्ञानम्
इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पाठकों के सुपरिचित, 'विष-विज्ञान', 'उपयोगी चिकित्सा', 'स्त्री-रोग-विज्ञानम्' आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता, स्वर्ण-पदक-प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, अतएव पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। आज भारतीय स्त्रियों में शिशु-पालन सम्बन्धी समुचित ज्ञान न होने के कारण सैकड़ों, हज़ारों और लाखों नहीं, किन्तु करोड़ों बच्चे प्रति वर्ष अकाल मृत्यु के कलेवर हो रहे हैं। इसमें बालक-बालिका सम्बन्धी प्रत्येक रोग, उनका उपचार तथा ऐसी सहज घरेलू दवाइयाँ बतलाई गई हैं, जो बहुत कम ख़र्च में प्राप्त हो सकती हैं। इसे एक बार पढ़ लेने से प्रत्येक माता को उसके समस्त कर्त्तव्य का ज्ञान सहज ही में हो सकता है और वे शिशु-सम्बन्धी प्रत्येक रोग को समझ कर उसका उपचार स्वयं कर सकती हैं। मूल्य केवल २॥) रु० !
मालिका
यह वह मालिका नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे ; इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है।
इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य तथा वासना का नृत्य, मनुष्य के नाना प्रकार के पाप, उसकी घृणा, क्रोध, द्वेष आदि भावनाओं का सजीव चित्रण। आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने किस सुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। कहानियों की घटनाएँ इतनी स्वाभाविक हैं कि एक बार पढ़ते ही आप उसमें अपने परिचितों को ढूँढ़ने लगेंगे। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल, मधुर तथा मुहावरेदार है।
सजिल्द, तिरङ्गे प्रोटेक्टिङ्ग कवर से सुशोभित ; मूल्य लागत-मात्र केवल ४) ;
देवदास
यह बहुत ही सुन्दर और महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। वर्तमान वैवाहिक कुरीतियों के कारण क्या-क्या अनर्थ होते हैं ; लड़के-लड़कियों का जीवन किस प्रकार नष्ट होता है ; विविध परिस्थितियों में पड़ने पर मनुष्य के हृदय में किस तरह नाना प्रकार के भाव उदय होते हैं और वह उद्भ्रान्त-सा हो जाता है—इसका जीता-जागता चित्र इस पुस्तक में खींचा गया है। छपाई-सफ़ाई अत्यन्त सुन्दर ; भाषा सरल एवं मुहावरेदार है। मूल्य केवल लागत-मात्र २); स्थायी ग्राहकों से १॥) नवीन संस्करण हाल ही में प्रकाशित हुआ है।
चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

यह वही क्रान्तिकारी उपन्यास है, जिसकी सालों से पाठक प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसी सुन्दर पुस्तक की प्रस्तावना लिख कर प्रेमचन्द जी ने इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। श्री० प्रेमचन्द जी अपनी प्रस्तावना में लिखते हैं :—

"उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरञ्जकता है। इस लिहाज से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए, न कम न ज्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्त्ताभाग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही कथा रोचक और ग्राह्य होगी। 'मानिक-मन्दिर' में इस बात का काफी लिहाज रक्खा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है, उसकी भाषा भी इतनी भावपूर्ण है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में, मेरे विचार में, सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वाङ्ग सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्ति। पुरुषों में ओङ्कार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के भक्त कैसे चञ्चल, अस्थिर-चित्त और कितने मधुर-भाषी होते हैं, ओङ्कार इसका जीता-जागता, उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चन्दा से प्रेम है; जिस वक़ जिसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओङ्कार ही पुस्तक की जान है। कथा में कई सीन बहुत मर्म-स्पर्शी हुए हैं। सोना के मिट्टी हो जाने का और ओङ्कार के सोना के कमरे में आने का वर्णन बड़े ही सनसनी पैदा करने वाले हैं, इत्यादि।" सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।) रु०; नवीन संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है !!

चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

[लेखिका—कुमारी शकुन्तला देवी गुप्ता, बी० ए०, 'हिन्दी-प्रभाकर']

हमें यह सूचित करते प्रसन्नता होती है कि जिस पुस्तक की महिलाओं को वर्षों से प्रतीक्षा थी, वह इस समय प्रेस में है। हम पाठिकाओं को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि शिल्प-सम्बन्धी ऐसी ब्योरेवार, सरल एवं उपयोगी पुस्तक आज तक उन्हें प्राप्त न हुई होगी।

पुस्तक की प्रवीण लेखिका का नाम ही पुस्तक के सुन्दर एवं उपयोगी होने की गारण्टी है। इस पुस्तक को देवी जी ने २ वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद तैयार कर पाया है। इसमें आपको बच्चों तथा बड़ों के स्वेटर, गुलूबन्द, मोज़े, बटुए, तरह-तरह की नई लेसें तथा एक से एक क्रोशिए के कामों के नमूने तथा उनके बनाने की विधियाँ सरल भाषा में मिलेंगी।

४० पाउण्ड के आर्ट-पेपर पर 'चाँद' साईज़ के लगभग १०० पृष्ठों के अतिरिक्त पाठकों को पुस्तक में पचासों ऐसे चित्र और उनके बनाने की सरल विधियाँ मिलेंगी, जिनकी पाठिकाओं ने कभी कल्पना भी न की होगी। कपड़े काटने की विस्तृत एवं सचित्र विधि भी पुस्तक में दी गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु०, 'चाँद' की पाठिकाओं से २) रुपए (यदि वे ग्राहक नम्बर लिखेंगी, अन्यथा नहीं)

आज ही अपनी कॉपी मँगा लीजिए !

☞ पुस्तक के अन्त में संस्था के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री० एच० बागची महोदय ने बिलकुल नए डिज़ाइन के टेबिल-क्लॉथ, गिलाफ़, पेटीकोट, ब्लाऊज़ तथा नई-नई लेसों के क़रीब ५० नमूने भी दिए हैं।

चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

ह्यूंगसांग की यात्रा की कुछ मनोरञ्जक बातें

[श्री० अन्तर्वेदी]

मि० बोलटिङ्ग नाम के एक अङ्गरेज़ लेखक ने, कुछ दिन हुए, एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उसने संसार के चार बड़े यात्रियों की यात्राओं की मनोरञ्जक बातें लिपिबद्ध की हैं। इन यात्रियों के नाम हैं, (१) ह्यूङ्गसाङ्ग, (२) स्यूलफ़, (३) इब्नबतूता और (४) दारतीमा किन लो बोना। इनमें ह्यूङ्गसाङ्ग की यात्रा का सम्बन्ध भारतवर्ष से है और उसकी कुछ बातें भी बड़ी ही मनोरञ्जक हैं। लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ के सात अध्यायों में ह्यूङ्गसाङ्ग की यात्रा का विशद वर्णन किया है और सब से अधिक महत्व भी इसी को प्रदान किया है।

यह चीनी यात्री सन् ६२९ से लेकर ६४५ तक अपने देश से बाहर रहा था। इसके कई महीने तो चीन से भारत तक आने में लगे थे और अवशिष्ट सारा समय उसने भारत के विभिन्न स्थानों की सैर करने में बिताया था। पामीर के रास्ते से, काशगर और ख़तन होता हुआ वह चीन को लौटा था, उसने चीनी भाषा में स्वयं अपनी यात्रा का हाल लिखा है। उसमें उसने तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवस्था का विशद वर्णन किया है। ह्यूङ्गसाङ्ग ने यह लम्बी यात्रा बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से की थी और यहाँ से बुद्ध की कई मूर्तियाँ और बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें अपने साथ ले गया था।

ह्यूङ्गसाङ्ग पैंसठ वर्ष की उमर तक जीता रहा और बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसकी अनुवाद की हुई ७५ पुस्तकें मौजूद हैं।

ह्यूङ्गसाङ्ग का जन्म सन् ६०३ ईस्वी में हुआ था। यह एक चीनी पुरोहित का लड़का था। बाल्यावस्था से ही यह बड़ा होनहार और मेधावी था और बहुत छोटी उमर में ही इसके दिल में धार्मिक जिज्ञासा पैदा हो गई थी। बीस वर्ष की अवस्था में इसने अपने देश के बौद्ध मठों और मन्दिरों का परिदर्शन आरम्भ किया और वहाँ के अधिकारियों से बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क किया। यद्यपि उस समय चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ रहा था, परन्तु धर्म के वास्तविक तत्वों को समझने वालों की संख्या बहुत थोड़ी थी और बहुत थोड़े से धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद भी चीनी भाषा में हो पाया था। इसलिए कोई भी धर्माधिकारी ह्यूङ्गसाङ्ग की शङ्काओं का समाधान नहीं कर सका। बल्कि उत्तरोत्तर कुछ ऐसी उलझनें पैदा हो गईं, जिनका सुलझना कठिन था। फलतः ह्यूङ्गसाङ्ग ने भारतवर्ष में कुछ दिन रह कर बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का इरादा किया। इसके सिवा अपने पूर्ववर्ती यात्रियों के लिखे हुए मनोरञ्जक यात्रा-विवरणों का भी उसके मन पर काफ़ी प्रभाव पड़ा।

उस समय क्यू सूवा चीन का सम्राट था। ह्यूङ्गसाङ्ग तथा उसके और कई साथियों ने उसके दरबार में उपस्थित होकर भारत की यात्रा करने के लिए आज्ञा और सहायता माँगी, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। कारण यह था कि इससे पहले सम्राट को कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं, जिससे देश की अभ्यन्तरीन अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो रही थी। साथ ही जन-संख्या भी कम हो रही थी और ऐसे लोग जो धर्म-चर्चा आदि के उद्देश्य से आजीवन अविवाहित रहना चाहते थे, गार्हस्थ्य जीवन बिताने के लिए बाध्य किए जाते थे। अस्तु, ह्यूङ्गसाङ्ग के अन्य साथी तो राजाज्ञा के कारण हताश होकर बैठ गए, परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपना विचार नहीं बदला। उस समय उसकी उम्र कुल चौबीस वर्ष की थी। हृदय में जवानी की उमङ्गें लहरा रही थीं। उसने राजाज्ञा की परवाह न करके अपने बल-बूते पर भारत की यात्रा करने का इरादा किया और एक दिन तैयारी करके चल पड़ा।

तोसन चीनी ह्यूङ्गसाङ्ग का सहयात्री था। उसने लिखा है कि उस समय चीन से भारत की ओर आने के लिए तीन रास्ते थे। एक रास्ता वह था, जिससे ह्यूङ्गसाङ्ग आया था, दूसरा, जिससे लौटा था और तीसरा रास्ता लाबनार के झील के किनारे से था, जो तिब्बत होकर नैपाल के पास निकलता था। ह्यूङ्गसाङ्ग किसी ऐसे पथ से यात्रा करना चाहता था, जो अपेक्षाकृत निरापद हो और जिससे लोग अक्सर आते-जाते हों। इसलिए वह लाङ्गजू की ओर चला, जो उन दिनों चीन के लानसू प्रान्त की राजधानी था। यहाँ तिब्बत तथा दूसरे सुदूरवर्त्ती देशों के व्यापारी एकत्र होते थे। ह्यूङ्गसाङ्ग ने उनसे मिल कर उनके साथ चलने की इच्छा प्रगट की और अपनी यात्रा का उद्देश्य भी उन्हें बताया। ह्यूङ्गसाङ्ग का साहस देख कर तथा उसकी भारत-यात्रा का उद्देश्य सुन कर व्यापारियों ने उस पर बड़ी श्रद्धा प्रगट की और अपने पास से पैसे ख़र्च करके उसके लिए यात्रा का सामान एकत्र कर दिया। परन्तु बाधाओं ने इतने पर भी उसका पिण्ड नहीं छोड़ा। लानसू प्रान्त का हाकिम एक ज़बरदस्त आदमी था, देश की राजनीतिक परिस्थिति के कारण उसने घोषणा कर रक्खी थी कि कोई आदमी प्रान्त से बाहर न जाय। ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी भारत-यात्रा का महान उद्देश्य उसे बताया और प्रार्थना की कि उसे जाने दिया जाय, परन्तु उसने एक न सुनी। इसलिए मजबूर होकर ह्यूङ्गसाङ्ग ने चोरी से निकल जाने का प्रबन्ध किया और अपने दो चेलों के साथ रातों-रात शहर से निकल गया। वह रात को चलता और दिन निकलते ही किसी निर्जन स्थान में छिप जाता, इस तरह सौ मील की यात्रा पूरी करने पर उसका घोड़ा मर गया। और बेचारे के सामने एक नई समस्या उपस्थित हो गई। सामने एक क्षिप्रगामिनी नदी थी, जिसके तीव्र प्रवाह में कोई नाव भी नहीं ठहर सकती थी। उस पार लानसू प्रान्त का विशाल क़िला सिर उठाए खड़ा था। इस क़िले के चारों ओर गहरी खाई थी। खाई के उस पार आने-जाने वालों पर कड़ी नज़र रक्खी जाती थी। इस स्थान के कुछ आगे एक विशाल मरुस्थल है, जहाँ हरियाली का नाम भी नहीं। इसके आगे का देश तुर्कों के अधिकार में था, जो पश्चिमी देशों की कहानियों में 'औगर' के नाम से विख्यात हैं। उन दिनों ये बड़े उत्पाती और डाकू समझे जाते थे।

रास्ते की इन मुसीबतों का ख़्याल करके ह्यूङ्गसाङ्ग कुछ हताश-सा हो गया। अगर एक ही कोई अड़चन होती तो कोई बात न थी, परन्तु यहाँ तो एक के पश्चात् एक अड़चनों का ताँता सा लगा हुआ दिखाई देता था। आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। वह महीनों तक वहीं ठहरा रहा। इतने में एक दिन प्रान्त के प्रधान शासक का आज्ञापत्र भी उसे मिला। उसने उसे शीघ्र उपस्थित होने की ताकीद की थी और लिख दिया था कि बिना हमारी आज्ञा के एक क़दम भी आगे न बढ़ना। ह्यूङ्गसाङ्ग यह आज्ञा सुन कर झुँझला उठा। वह रास्ते में आगे आने वाली विकट परिस्थितियों के सम्बन्ध में विचार कर रहा था, उनके प्रतिकार का उपाय सोच रहा था, परन्तु उसने यात्रा स्थगित करने की बात स्वप्न में नहीं सोची थी। प्रान्त के हाकिम की आज्ञा ने उसे उत्तेजित कर दिया। उसने स्थानीय अधिकारी से मुलाक़ात की और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं अपना इरादा नहीं बदल सकता। वह अधिकारी उसका साहस और तेज देख कर दङ्ग रह गया। परन्तु वह राजाज्ञा का पालन करने को बाध्य था, इसलिए उसने इशारों में ह्यूङ्गसाङ्ग को बता दिया कि अगर जाना है, तो शीघ्र चल दो; देर करने पर जाना कठिन हो जायगा। ह्यूङ्गसाङ्ग ने भी अब अधिक ठहरना उचित न समझा। उसने तुरन्त ही एक दूसरा घोड़ा ख़रीदा और यात्रा की तैयारी कर दी। परन्तु उसका एक चेला बीमार पड़ गया और दूसरा कमज़ोर था। ह्यूङ्गसाङ्ग ने दोनों को वापस लौट जाने की अनुमति दे दी और अकेला ही आगे बढ़ने को तैयार हो गया। परन्तु कहावत है कि विपत्ति अकेले नहीं आती। जब वह चलने को तैयार हुआ तो पथ-प्रदर्शक ही ग़ायब! ख़ैर, उसने इसकी भी परवा न की। सामान लाद कर घोड़े पर सवार हो गया। आगे चल कर संयोगवश एक जङ्गली आदमी से भेंट हो गई। बातचीत से मालूम हुआ कि वह इस प्रान्त के रास्तों का जानकार है। ह्यूङ्गसाङ्ग ने उसे अपने साथ चलने के लिए राज़ी कर लिया। उस जङ्गली आदमी ने उसे एक ऐसे व्यापारी से भेंट करा दी, जो औगरों के देश में कई बार जा चुका था और उधर के

रास्तों का अच्छा जानकार था। यह व्यापारी एक बूढ़ा आदमी था। उसने रास्ते की कठिनाइयों का वर्णन करके ह्यूङ्गसाङ्ग को बताया कि यह काम कठिन है। पश्चिमी रास्ते बड़े विकट और दुर्गम हैं। कहीं बालू के मैदान, कहीं चौड़ी नदियाँ, कहीं ऊँचे पर्वत और कहीं घने जङ्गल हैं। यात्रियों के बड़े-बड़े गरोह भी रास्ता भूल जाते हैं, फिर तुम तो बिलकुल अकेले ही यात्रा करने को निकल पड़े हो। इसलिए तुम्हारा भला इसी में है कि इस विचार को छोड़ दो। घर लौट जाओ। क्यों वृथा अपनी ज़िन्दगी बर्बाद करोगे? मैं वृद्ध हूँ। युवक, मेरी बात मानो। आगे बढ़ने का इरादा छोड़ दो। ह्यूङ्गसाङ्ग ने बूढ़े को उत्तर दिया कि मैं जिस महान उद्देश्य को लेकर घर से चला हूँ, उसके सामने जीवन कोई चीज़ नहीं है। या तो मैं अपनी यात्रा सफल करके लौटूँगा या मर मिटूँगा। वृद्ध व्यापारी उसकी दृढ़ता और साहस देख कर प्रसन्न हो गया। उसने कहा, अच्छा, तुम अपना घोड़ा मुझे दे दो और मेरा ले लो। क्योंकि मेरा घोड़ा कई बार इस रास्ते से आ-जा चुका है। रास्ते की कठिनाइयों से परिचित है। ह्यूङ्गसाङ्ग ने उसकी बात मान ली। उसने घोड़े को देखा तो उसे एक पुरानी बात याद आ गई। एक बार एक ज्योतिषी ने उसे बताया था कि तुम्हें एक लाल रङ्ग का घोड़ा मिलेगा, जिस पर चढ़ कर तुम बड़ी लम्बी यात्रा करोगे। अस्तु—

वृद्ध से आवश्यक उपदेश प्राप्त करके ह्यूङ्गसाङ्ग और उसका पथ-प्रदर्शक अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर आगे बढ़े। थोड़ी देर चलने के बाद ही वे बलङ्गर नदी के किनारे पर आ पहुँचे। यह वही चिप्रगामिनी नदी थी, जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। इसे नाँघना बड़ा ही कठिन काम था। साथी ने एक तरकीब सोची। वह चल कर एक ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ नदी का पाट बहुत कम था। इसके बाद वह पास के जङ्गल में घुस गया और अपने तेज़ कुल्हाड़े से वृक्ष की कई बड़ी-बड़ी डालें काट लाया और उनके द्वारा एक पुल तैयार कर लिया। उसी पर से छलाँग मार कर दोनों अपने घोड़ों समेत पार उतर गए। यह काम बड़े साहस का था और इसमें ख़तरा भी था। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग का जङ्गली साथी ऐसे कामों में बड़ा चतुर था। उसने कई बार इसी ढङ्ग से कई गहरे पहाड़ी नाले पार किए थे। कहते हैं, आजकल भी चीनी लोग ऐसे अस्थायी पुलों द्वारा नदियाँ पार कर लिया करते हैं।

नदी पार करके दोनों आगे बढ़े। सूर्यास्त का समय था। दिन भर की यात्रा और पुल आदि बनाने में मेहनत भी काफ़ी पड़ी थी। दोनों थक गए थे। इसलिए एक साफ़-सुथरा स्थान देख कर डेरा डाल दिया। कुछ खा-पीकर दोनों ने चटाइयाँ बिछा लीं। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को अपने दुस्साहसी और जङ्गली साथी पर विश्वास कम था। इसलिए उसने अपनी चटाई उससे अलग बिछाई और सतर्क भाव से विश्राम करने लगा। जब कुछ रात बीती और अन्धकार अच्छी तरह छा गया तो ह्यूङ्गसाङ्ग को किसी के पाँवों की आहट सुनाई पड़ी। वह अभी जगा ही था। चौंक कर उठ बैठा और अन्धकार में आँखें फाड़ कर देखने लगा। यह आहट उसी जङ्गली के पैरों की थी। वह हाथ में नङ्गी तलवार लेकर ह्यूङ्गसाङ्ग की ओर बढ़ा आ रहा था। ह्यूङ्गसाङ्ग सतर्क तो था ही, उच्च स्वर से ईश्वर की प्रार्थना करने लगा। यह देख कर वह छाया-मूर्त्ति जो इसकी ओर बढ़ रही थी, वापस लौट गई। सम्भवतः ह्यूङ्गसाङ्ग का साथी उसे भयभीत करके लौटाना चाहता था। अस्तु—

दूसरे दिन प्रातःकाल ही दोनों ने उठ कर यात्रा आरम्भ कर दी। अब उन्हें आगे एक भयानक जङ्गल पार करना था और उसी क़िले के पास से होकर जाना था, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ पानी का अत्यन्त अभाव था। मगर भाग्य से इन्हें थोड़ा सा पानी मिल गया। दोनों ने कुछ खाकर पानी पी लिया। क़िले का रास्ता उन्हें रात को पार करना था; क्योंकि अगर कहीं क़िले वालों ने देख लिया तो जान का ख़तरा था। ह्यूङ्गसाङ्ग के साथी ने उसे फिर वापस लौट जाने की सलाह दी। परन्तु वह किसी तरह अपने इरादे को छोड़ने को तैयार न था। फिर दोनों आगे बढ़े। रास्ता बड़ा ही दुर्गम था। वन में हिंसक जन्तुओं का भय था। जङ्गली ने अपनी कमान पर रोदा चढ़ा लिया और अपना तीक्ष्ण धार तीरों का तरकश भी ठीक कर लिया। इसके बाद उसने ह्यूङ्गसाङ्ग को आगे बढ़ने को कहा। परन्तु रात वाली घटना से ह्यूङ्गसाङ्ग सावधान हो गया

था। उसने आगे चलने से साफ़ इन्कार कर दिया। उसका विश्वास अपने साथी पर से उठ गया था। अन्त में साथी ने भी साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं अब आगे जाना नहीं चाहता। तुम अगर अकेले ही जाना चाहते हो तो जा सकते हो। ह्यूङ्गसाङ्ग ने उसका स्तीफ़ा मन्ज़ूर कर लिया और प्रचुर धन्यवाद तथा घोड़े के साथ उसे विदा कर दिया।

ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी दृढ़ता और साहस के भरोसे गोबी के भीषण रेगिस्तान में क़दम बढ़ाया। वह रास्ता भी नहीं पहचानता था। यह रेगिस्तान संसार के बड़े मैदानों में है। कोसों तक कहीं पौधे या घास का नाम भी नहीं। कुछ आगे बढ़ने पर उसे हथियारबन्द सिपाहियों का एक दल दिखाई पड़ा, जो उसी की ओर आ रहा था। परन्तु कुछ देर बाद ही वह न जाने कहाँ ग़ायब हो गया। बेचारा ह्यूङ्गसाङ्ग यह अद्भुत लीला देख कर हैरान रह गया। बहुत सोचने पर भी उसकी समझ में नहीं आया कि आख़िर यह क्या बला है। ख़ैर, ईश्वर का नाम लेकर वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। और अभी सौ क़दम भी आगे न बढ़ा होगा कि फिर वही दल दिखाई पड़ा। यात्री फिर भयभीत होकर खड़ा हो गया और सोचने लगा। इतने में आवाज़ आई कि 'डरने की कोई बात नहीं!' वह फिर साहस करके आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर उसे मालूम हो गया कि आगे क़िले वालों की चौकी है और यह सिपाहियों का एक दल है, जो बड़ी सतर्कता से क़िले की ओर आने-जाने वालों की देख-रेख किया करता है। यह दल ह्यूङ्गसाङ्ग की गति-विधि का लक्ष्य करने के लिए बालू के एक टीले के पास छिप गया था। कुछ आगे बढ़ने पर उसे क़िले के बुर्ज साफ़ दिखाई पड़ने लगे, परन्तु सन्ध्या हो गई थी। इसलिए उसने बालू के एक टीले के पास डेरा डाल दिया और अपनी चमड़े की थैली लेकर पानी की तलाश में चला। उसे यह बात मालूम थी कि क़िले के पास साफ़ पानी की एक झील है, परन्तु कोई अजनबी आदमी वहाँ तक नहीं जा सकता। वह बड़ी सावधानी से छिपता हुआ झील के किनारे तक पहुँचा और पानी भरने लगा। इतने में एक तीर सनसनाता हुआ उसके पास से निकल गया। उसने अपनी थैली भर ली और उसे लेकर झील से बाहर निकलना ही चाहता था, कि इतने में फिर एक दूसरा तीर उसे छूकर निकल गया। उसने पानी की थैली ज़मीन पर रख दी और जिस ओर से तीर आए थे, उस ओर लक्ष्य करके चिल्ला उठा—'भाई, मैं पर्यटक हूँ और सम्राट् की आज्ञा लेकर आया हूँ। मुझे मत मारो।' यह सुन कर कई सन्तरी दौड़े हुए उसके पास आए और उसे पकड़ कर अपने अफ़सर के पास ले चले। अफ़सर एक सहृदय और समझदार आदमी था। ह्यूङ्गसाङ्ग का परिचय पाकर तथा उसकी यात्रा का उद्देश्य समझ कर, उसने उसकी बड़ी ख़ातिर की। परन्तु उसे समझाया कि आगे बढ़ना भय से ख़ाली नहीं है। तुम अकेले हो। किसी आपद-विपद में फँस कर मर जाओगे, इसलिए बेहतर है कि वापस लौट जाओ। परन्तु जब उसने देखा कि यह अपने निश्चय से किसी तरह नहीं टल सकता, तो उसने आगे के क़िलेदार के नाम एक सन्देश भी दिया। परन्तु यह सन्देश ज़बानी था। इसलिए ह्यूङ्गसाङ्ग को उस पर अधिक भरोसा न हुआ। इसलिए दूसरे दिन जब वह दूसरे क़िले के पास पहुँचा तो कल की तरह छिप कर ही रहने का विचार किया। पानी का प्रश्न यहाँ भी पूर्ववत् ही था। जलाशय ठीक क़िले के नीचे बना हुआ था। ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी थैली उठाई और कल की तरह छिपता हुआ जलाशय के निकट पहुँचा। परन्तु क़िले के रक्षकों की नज़र से अपने को किसी तरह भी न बचा सका। ज्योंही वह पानी भरने की इच्छा से जलाशय में उतरा, त्योंही तीरों की भरमार आरम्भ हुई और वह चिल्लाता हुआ बाहर निकला। इसके बाद सिपाहियों ने उसे पकड़ कर क़िले के अध्यक्ष के पास पहुँचाया। क़िले के अध्यक्ष ने सारा हाल सुना तो ह्यूङ्गसाङ्ग के साहस की प्रशंसा की और आराम से ठहरने आदि का प्रबन्ध करा दिया। परन्तु साथ ही उसने यह हिदायत भी कर दी कि अगले क़िले के रक्षक बड़े उद्दण्ड और गँवार हैं, वे उसे कदापि जीवित न छोड़ेंगे। ये बातें बता कर क़िले के अफ़सर ने उसे एक और ही रास्ते से जाने की राय दी और मीठे पानी की झील का भी पता बता दिया।

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। आगे एक लक़ोदक़ मैदान के सिवा और कुछ दिखाई न देता था। पेड़-पौधे तो

क्या, घास का एक तिनका भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था। परन्तु कुछ आगे बढ़ते ही उसे एक नई विपद का सामना करना पड़ा। उसकी पानी की थैली गिर गई और सारा पानी बह गया। इसके सिवा वह रास्ता भी भूल गया। इसलिए बड़ी देर तक उस जनहीन मरुभूमि में इधर से उधर चक्कर काटता रहा। यहाँ तक कि अन्त में घबरा कर एक स्थान पर बैठ गया और सोचने लगा कि वापस लौट जाना चाहिए। क्योंकि जब आरम्भ में ही आपदाओं का यह हाल है तो आगे चल कर क्या होगा, कौन जाने? परन्तु थोड़ी देर के बाद ही उसने फिर साहस से काम लिया और ईश्वर पर भरोसा करके आगे बढ़ा। रात हो गई थी, इसके सिवा रास्ता भूल जाने के कारण उसे दिन भर परेशानी भी उठानी पड़ी थी। इसलिए वह और उसका घोड़ा दोनों ही बहुत थक गए थे। अगत्या लाचार होकर उसे वहीं ठहर जाना पड़ा। थैली में पानी का एक बूँद भी नहीं बचा था। प्यास के मारे कण्ठ सूख रहा था। थकावट के कारण शरीर में दर्द भी हो रहा था। उसने आँखें बन्द करके सो जाने की चेष्टा की, परन्तु ऐसी परेशानी की हालत में नींद कहाँ से आती। घोड़ा भी थक कर ज़मीन पर बैठ गया था। भूख और प्यास के मारे उसकी भी बुरी दशा थी। परन्तु जब कुछ रात बीती तो ठण्ढी हवा के झोंकों ने कुल क्लान्ति दूर कर दी। घोड़ा जो अब तक मुमुर्षु अवस्था में पड़ा था, हिनहिनाकर खड़ा हो गया। मानो उसने अपने मालिक को सलाह दी कि यहाँ पड़े रहना ठीक नहीं, आगे बढ़ना चाहिए। बस, कुछ रात रहते ही ह्यूङ्गसाङ्ग ने चलना आरम्भ कर दिया और सवेरा होते-होते जलाशय के पास पहुँच गया। यह स्थान बड़ा ही रमणीक और हरा-भरा था। यात्री ने वहाँ चौबीस घण्टे ठहर कर अच्छी तरह आराम कर लिया। तीसरे दिन वह इस मरुभूमि को पार कर एक हरे-भरे मैदान में जा पहुँचा। यहाँ से हामी नगर निकट ही था। वह जल्दी-जल्दी चल कर वहाँ पहुँचा। लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ बौद्धों का एक मठ भी है और तीन भिक्षुक यहाँ रहते हैं। मठ में उसे ख़ूब आराम मिला। यहाँ कई दिन ठहर कर उसने आगे के रास्ते के सम्बन्ध में थोड़ी सी जानकारी भी प्राप्त कर ली। इस नगर के शासक ने जब उसके आने की ख़बर सुनी, तो बड़े आदर से उसे अपने पास बुला भेजा और ठहरने के लिए अपने महल के पास ही प्रबन्ध कर दिया। थोड़ी देर के बाद स्वयं रानी उससे मिलने आई। यह शासक बहुत दिनों से एक ऐसे विद्वान धर्मोपदेशक की खोज में था, जो उसके यहाँ रह कर उसकी प्रजा में धर्म का प्रचार करे। उसने धन आदि का प्रलोभन देकर ह्यूङ्गसाङ्ग को रोकना चाहा, परन्तु वह राज़ी न हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि राजा नाराज़ हो गया। इसलिए ह्यूङ्गसाङ्ग ने चुपचाप वहाँ से कूच कर जाने का इरादा किया। परन्तु राजा को इस बात का भी पता लग गया और उसने अपने सिपाहियों को उसकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर दिया। यह झगड़ा कई दिनों तक चलता रहा। राजा कभी तो उसे डराता-धमकाता और कभी उसकी ख़ुशामद भी करता था। एक दिन उसने ह्यूङ्गसाङ्ग को अपने साथ खाना खाने के लिए निमन्त्रित किया और स्वयं अपने हाथ से उसे खिलाया। परन्तु जब इतने पर ह्यूङ्गसाङ्ग रहने को राज़ी न हुआ तो उसने उसे क़ैद करने की धमकी दी। इधर ह्यूङ्गसाङ्ग भी उससे पल्ला छुड़ाने की तदबीर सोचता रहा और अन्त में भूख-हड़ताल आरम्भ कर दी। चार दिन तक अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। इस बात की ख़बर राजमाता को लगी, तो उसने अपने पुत्र को बुला कर समझाया और ह्यूङ्गसाङ्ग को तुरन्त छोड़ देने का आग्रह करने लगी। अन्त में बड़े तर्क-वितर्क के बाद तय हुआ कि ह्यूङ्गसाङ्ग एक महीने तक यहाँ रह कर धर्मोपदेश करे और फिर जहाँ चाहे चला जाए। उपायान्तर न देख कर ह्यूङ्गसाङ्ग ने यह शर्त स्वीकार कर ली और एक महीने तक उसके राज्य में रह कर धर्मोपदेशक का कार्य करता रहा।

अन्त में राजा ने बड़े आदर के साथ ह्यूङ्गसाङ्ग को विदा किया। बहुत से सोने-चाँदी के सिक्के, रेशमी कपड़े, गरम कपड़े और यात्रा में काम आने वाली अन्यान्य चीज़ें दीं। आगे के राजाओं के नाम पत्र भी लिखवा दिए, ताकि रास्ते में ह्यूङ्गसाङ्ग को किसी प्रकार की तकलीफ़ न हो। इसके बाद अपने दरबारियों तथा रानी के साथ उसे पहुँचाने के लिए मीलों तक गया।

यहाँ से आगे ह्यूङ्गसाङ्ग को एक दुर्गम पहाड़ी रास्ते से चलना था। रास्ते के दक्षिण ओर टारम नाम की नदी पड़ती थी, जो लाबनार नाम की झील में गिरती है। यह झील साँभर की तरह नमक की झील है। यहाँ उन दिनों बड़े दुर्धर्ष डाकू रहा करते थे। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को उनका कोई भय न था, क्योंकि राजा ने उसकी रक्षा के लिए फ़ौजी सिपाहियों का एक जत्था उसके साथ कर दिया था। परन्तु इतने पर भी ह्यूङ्गसाङ्ग को डाकुओं के सरदार को कुछ नज़र-नियाज़ देकर उससे सुलह करनी पड़ी।

यहाँ से आगे चल कर वह कारा या काशार नामक शहर में पहुँचा। यहाँ के शासनकर्त्ता ने भी उनकी बड़ी ख़ातिर की। यात्रियों के घोड़े पहाड़ी-पथ में चलने के कारण बहुत थक गए थे। इसलिए ह्यूङ्गसाङ्ग ने चाहा कि उसके साथी सिपाहियों के थके घोड़े यहीं रह जायँ और उनके बदले दूसरे घोड़े मिल जायँ। परन्तु शासक ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार न की। बात यह थी कि हाल में ही उसे एक लड़ाई लड़नी पड़ी थी, इसलिए उसके घोड़े भी थके-माँदे थे।

ह्यूङ्गसाङ्ग ने इस राज्य के राजा का एक लम्बा-चौड़ा विवरण अपनी पुस्तक में दिया है। वह कई दिनों तक राजा का अतिथि रहा और जब अच्छी तरह सुस्ता चुका तो फिर आगे बढ़ने की तैयारी की।

कई दिनों के बाद वह एक और राज्य में पहुँचा। यहाँ के राजा को उसके आने की ख़बर पहले ही मिल चुकी थी। उसने बड़ी तैयारी के साथ ह्यूङ्गसाङ्ग का स्वागत किया और दो मास तक अपने पास रक्खा। उस समय उस प्रदेश में बड़े ज़ोरों से बर्फ़ पड़ रही थी, इसलिए आगे बढ़ना मुश्किल था। दो महीने के बाद जब बर्फ़ का ज़ोर कम हुआ और रास्ता चलने के योग्य हो गया तो राजा ने विपुल समारोह सहित ह्यूङ्गसाङ्ग को विदा किया। आगे का रास्ता बड़ा ही भीषण था। तुर्की डाकू दिन-दहाड़े यात्रियों को लूट लिया करते थे। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को डाकुओं का कोई डर नहीं था। क्योंकि उसके साथ काफ़ी रक्षक थे और उनके हथियार भी तीक्ष्ण थे। कुछ आगे बढ़ने पर एक विजन वन में उसे लुटेरों का एक दल मिला, जिसने उसके आने के कुछ देर पहले ही एक बड़े व्यापारी-दल को लूटा था और लूट का माल बाँटने में व्यस्त थे। भाग-बटवारे के कारण उनमें आपस में ही कुछ झगड़ा चल पड़ा था, इसलिए उन्होंने इन यात्रियों की ओर ध्यान नहीं दिया। यात्री-दल घने वनों, ऊँचे पर्वतों और बरफ़ के टीलों को अतिक्रम करता हुआ आगे बढ़ने लगा। इन जनमानवहीन भीषण स्थानों में उसे कई रातें बितानी पड़ीं। इस प्रकार ह्यूङ्गसाङ्ग ने सैकड़ों मीलों का रास्ता तय किया। यह यात्रा बड़ी ही विकट थी। रास्ते में कई बार भीषण तूफ़ानों का सामना करना पड़ा। कई दिनों तक कोई ऐसी सूखी जगह नहीं मिली, जहाँ ठहर कर आराम करने या कुछ खाने-पकाने का प्रबन्ध करते। कई साथी रास्ते की तकलीफ़ से बीमार पड़ गए और कई मर गए। यही हाल उनके घोड़ों का भी था। दिन-रात कड़ाके की सर्दी का मुक़ाबला और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई-उतराई के कारण सारा दल बेदम हो गया।

कई सप्ताह के बाद ह्यूङ्गसाङ्ग का दल एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ पठानों का राज्य था। इनके सरदार को जब ह्यूङ्गसाङ्ग की यात्रा का उद्देश्य मालूम हुआ तो उसने उसे बड़े आदर से अपने यहाँ टिकाया। इनके आराम से ठहरने के लिए ख़ीमे डाल दिए गए। सन्ध्या को अतिथि-सत्कार की तैयारी बड़े धूमधाम से हुई। ह्यूङ्गसाङ्ग के बैठने के लिए सरदार के तख़्त के पास ही एक लोहे की चौकी रक्खी गई। सरदार के साथ जब सब दरबारी और ह्यूङ्गसाङ्ग आदि अपने स्थानों पर बैठ गए तो शराब लाई गई और प्याले पर प्याले लुढ़कने लगे। इसके बाद नृत्य-गीत आरम्भ हुआ। यद्यपि ह्यूङ्गसाङ्ग की समझ में ये गाने नहीं आते थे, परन्तु उनमें लालित्य था। वे चीनी कानों को भी बुरे नहीं मालूम होते थे। खाने के लिए उबाले हुए मांस के टुकड़े लाए गए। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग चूँकि बौद्ध था, इसलिए उसके भोजन का प्रबन्ध अलग किया गया था और वह बिल्कुल निरामिष था। उसके लिए रोटी, चावल, मलाई, दूध खाँड़, शहद और अङ्गूर आदि रक्खे गए। भोजनोपरान्त पठान सरदार ने ह्यूङ्गसाङ्ग को अपने पास बुलाया और बड़ी देर तक दुभाषिए की मार्फ़त उससे बातचीत करता रहा। अन्त में उसने ह्यूङ्गसाङ्ग को समझाया कि वह हिन्दुस्तान न जाए; क्योंकि वहाँ

के आदमी बड़े असभ्य और क्रूर होते हैं। वह देश बड़ा गरम है। वहाँ दिन-रात गरम लू चला करती है। उस देश के अधिवासी काले-कलूटे होते हैं और नङ्गे रहते हैं। लज्जा तो उनमें नाम को भी नहीं होती।

ह्यूङ्गसाङ्ग ने बड़े ध्यान से उसकी बातें सुनीं और उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए बताया कि मैं वहाँ भगवान बुद्ध की प्रेरणा से जा रहा हूँ। मेरा उद्देश्य पवित्र है। इसलिए विश्वास है कि वहाँ मुझे किसी प्रकार की तकलीफ़ न होगी।

अस्तु, कई दिनों के विश्राम के बाद ह्यूङ्गसाङ्ग ने विदा ली। सरदार स्वयं उसे कुछ दूर तक पहुँचा गया। पठान-सरदार से विदा होकर यात्री-दल आगे बढ़ा और कई दिनों की यात्रा के बाद समरक़न्द पहुँचा। यह एक समृद्धिशाली नगर था। आसपास की प्राकृतिक शोभा भी दर्शनीय थी। यहाँ का शासक एक उग्र प्रकृति का मनुष्य था और तलवार के बल पर अपने पड़ोसी देशों पर शासन किया करता था। उसने ह्यूङ्गसाङ्ग के आने की ख़बर सुनी तो ज़रा भी उत्साह न दिखाया, बल्कि नाक-भौं सिकोड़ कर कुछ घृणा के भाव प्रगट किए। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को किसी की घृणा और आदर की कोई चिन्ता न थी। उसने यहाँ कुछ दिन ठहर कर विश्राम किया। यहाँ बौद्ध-धर्म विलुप्त हो चुका था। बौद्ध मन्दिर ख़ाली पड़े हुए थे। उसने एक ख़ाली मन्दिर में डेरा डाल दिया। परन्तु यहाँ के अधिवासियों ने जलते हुए लोहे फेंक कर उन्हें वहाँ से भगा दिया। परन्तु इस बात की ख़बर जब वहाँ के शासक को लगी तो उसने अपराधियों को कठोर दण्ड प्रदान किया। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग ने उन्हें क्षमा कर देने की प्रार्थना की। उसकी इस प्रार्थना का शासक के मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने अपराधियों को छोड़ दिया और ह्यूङ्गसाङ्ग के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रगट की और आज्ञा दे दी कि जब तक इच्छा हो, यहाँ रह सकते हो। साथ ही उसने ह्यूङ्गसाङ्ग के अनुरोध करने पर शहर के सभी बौद्ध मन्दिरों को फिर से खोलवा दिया और पुजारियों को पूजा-पाठ करने की भी आज्ञा दे दी।

कई दिनों तक समरक़न्द में रह कर यात्री-दल ने आगे की ओर प्रस्थान किया। कुछ आगे बढ़ने पर उसे एक घाटी मिली, जिसके दोनों ओर ऊँचे पहाड़ थे। रास्ता बड़ा ही तङ्ग था और अन्धकारपूर्ण था। बड़ी कठिनता से घाटी को पार करके वह आक्सस के पास पहुँचा। यहाँ उसे पठानों के कई छोटे-छोटे राज्य मिले। इनमें एक पठान राज्य पूर्वोक्त पठान-सरदार के दामाद का था। परन्तु वह बहुत बीमार था। ह्यूङ्ग-साङ्ग वहाँ कई रोज़ तक ठहरा रहा। इसके बाद जब उसने आगे की यात्रा आरम्भ की तो संयोगवश एक व्यक्ति से भेंट हो गई, जो बहुत दिनों तक हिन्दुस्तान में रह चुका था। यह बौद्ध-धर्म का अनुयायी और बौद्धधर्म के ग्रन्थों का जानकार भी था। दोनों साथ ही भारत की ओर चले और कुछ दिनों के बाद वह बलख़ पहुँचे। यहाँ बौद्ध-धर्म का ख़ूब प्रसार था। बहुत से बौद्ध-मठ और यादगारें थीं। मठों में हज़ारों बौद्ध संन्यासी रहते थे। इस स्थान के आसपास के शासकों तथा राजाओं को ह्यूङ्गसाङ्ग के आने की ख़बर पहले ही मिल चुकी थी और वे बड़ी उत्सुकता से उसकी राह देख रहे थे। परन्तु शीघ्र हिन्दुस्तान पहुँचने की इच्छा से उसने इन राजाओं का आतिथ्य नहीं स्वीकार किया। वह भयानक जङ्गलों, और निर्जन घाटियों को पार करता हुआ बड़े कष्ट से आगे बढ़ने लगा। रास्ते में उसे कई बार भीषण जन्तुओं का सामना करना पड़ा। कई दिनों के बाद, वह नाना प्रकार की विपत्तियों को अतिक्रम करता हुआ हिन्दूकुश पर्वत के पास एक नगर में पहुँचा। इस नगर का नाम बामियान था और उन दिनों वह बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र-स्थल समझा जाता था। यहाँ कई दिनों तक ठहर कर काबुल होता हुआ वह ख़ैबर घाटी के रास्ते से भारत पहुँचा।

मेवाड़ का शासन

[श्री० जमनालाल जी मेहता, बी० ए०]

चित्तौड़ और मेवाड़ भारतवर्ष के ही इतिहास में नहीं; किन्तु संसार के इतिहास में चिरस्मरणीय हैं। आठवीं शताब्दी में चित्तौड़ वर्तमान राजवंश के हाथ लगा था। तब से निरन्तर बप्पा रावल के वंशज इस पर राज्य कर रहे हैं। इतना प्राचीन राजकुल इस समय संसार में कोई दूसरा नहीं है। इस अर्से में चित्तौड़ पर अनेक विपत्तियाँ आईं, आततायियों ने तीन बार इस पर आक्रमण किए। निराश, किन्तु गौरव-धन महिलाओं ने जौहर रच कर आर्य-महिलोचित स्वाभिमान का परिचय दिया। कुछ समय के लिए चित्तौड़ मुसलमानों के हाथ में भी आ गया। उन्होंने इसका नाम ख़िज़राबाद रक्खा, परन्तु ये सब क्षणिक तूफ़ान थे। स्थिति बदली और चित्तौड़ पर पुनः सीसोदियों का अधिकार हो गया। मेवाड़ के राजकुल में जैसे योग्य, वीर, प्रजा-प्रिय, स्वाभिमानी और विद्वान शासक हुए हैं, वैसे इस संसार के किसी भी राजकुल में नहीं हुए। मेवाड़ के राजकुल ने देश और धर्म की रक्षा के लिए जितना रक्त बहाया है, उतना किसी राजपूत-कुल ने नहीं बहाया। आठवीं शताब्दी में अरब लोगों ने सिन्ध प्रान्त को जीत लिया था और अपने राज्य को पूरब की ओर बढ़ाना चाहते थे। उस समय बप्पा रावल और उनके वंशजों ने विजय-विस्तार को रोका था। सन् १५२६ में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को परास्त करके जब बाबर राजपूताने की ओर बढ़ना चाहता था, तो महाराणा संग्रामसिंह ने कनवाह के मैदान में उससे एक भीषण रण रचा था। देश का दुर्भाग्य था कि कुछ विश्वासघातकों और देशद्रोहियों के कारण उस अप्रतिम सूरमा को विजय-लाभ नहीं हुआ, परन्तु महाराणा साँगा की शक्ति से बाबर इतना भयभीत हो गया था कि राजपूताने पर राज्य जमाने का फिर उसने प्रयत्न नहीं किया? महाराणा कुम्भ का जीवन बहमनी वंश के मुसलमानों के साथ निरन्तर युद्ध करने में बीता और कई बार उनको अपूर्व विजय-लाभ हुआ। चित्तौड़ का कीर्ति-स्तम्भ उनके विजय और वीरत्व का अमर स्मारक है। महाराणा प्रताप के नाम को कौन नहीं जानता? जिस समय अकबर की विजय-बाढ़ में बड़े-बड़े शक्तिशाली नरेश डूब चुके थे, तब प्रताप ने ही हिन्दू-गौरव की रक्षा की थी। कहाँ भारत-सम्राट अकबर की शक्ति और कहाँ महाराणा प्रताप की एक परिमित सेना। प्रताप को अपनी राजधानी छोड़नी पड़ी, अपने मान की रक्षा के लिए जङ्गलों में इधर-उधर भटकना पड़ा, कई बार जङ्गली फल खाकर अपने दिन बिताने पड़े, ज़मीन पर सोना पड़ा, पत्तों पर खाना पड़ा और अपने बच्चों तथा महाराणी को साथ लेकर छाजों पर, पहाड़ियों पर, जङ्गलों में, नदियों में और नालों में घूमना पड़ा। उनके साथी थे चेतक घोड़ा, उनका परिमित परिवार, कुछ दो-चार सरदार और भील जाति। इन दारुण कष्टों के सामने शायद नेपोलियन और जनरल हेनिबाल का भी सर झुक जाता, परन्तु महाराणा प्रताप अपने स्वाभिमान-पथ से किञ्चिन्मात्र भी विचलित न हुए। वे अकबर को तुर्क ही कहते रहे। आज मेवाड़ का बच्चा-बच्चा प्रताप का गुण-गान करता है। शायद ही कोई मेवाड़ी ऐसा हो, जिसको महाराणा प्रताप के दो-चार प्रशंसात्मक पद्य कण्ठस्थ न हों। कितने ही भील पुरानी कथाओं का स्मरण करके आँसू बहाते हैं और कितने ही चेतक के चबूतरे पर माथा टिका कर रोते हैं।

चित्तौड़ का दुर्धर्ष दुर्ग, उदयपुर के भव्य राजभवन, राजसमुद्र और जयसमुद्र जैसे विस्तृत तालाब आदि से पता लगता है कि युद्धों में निरन्तर व्यस्त रहने पर भी मेवाड़ के शासक राज-प्रबन्ध की ओर काफ़ी ध्यान दे सकते थे। आश्चर्य की बात यह है कि रात-दिन लड़ाइयाँ लड़ते हुए भी मेवाड़ के कई शासक साहित्य और कला के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर सकते थे।

महाराणा कुम्भ स्वयं बड़े विद्वान थे। काशी की विद्वन्मण्डली में उनका बड़ा आदर था। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भ) ने संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। शालिहोत्र शास्त्र, गृह-निर्माण विद्या, नृत्यकला, काव्य, नाटक आदि विषयों पर उनके रचे हुए ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है और कई ग्रन्थ प्राप्त भी हो चुके हैं। कविवर जगन्नाथ के गीत-गोविन्द काव्य पर महाराणा कुम्भकर्ण ने जो टीका लिखी है, उसका विद्वत् संसार में अच्छा मान है।

जिस राजवंश ने देश और धर्म की रक्षा के लिए इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न किए हों, जिसने अपनी जाति की मर्यादा रखने के लिए स्वयं दारुण कष्ट उठाए हों, जिसकी कुल-ललनाओं ने क्षत्रिय जाति की गौरव-रक्षा के लिए हँस-हँस कर अपने प्राण धधकती हुई अग्नि-ज्वालाओं के भेंट किए हों, जिसने इस प्रकार कष्ट पाते हुए भी कला और साहित्य की उपेक्षा न की हो, वह 'हिन्दुआँ सूरज' कहलाने का अधिकारी है। अभागी हिन्दू-जाति भी अपने राजकुल का इससे अधिक और क्या आदर कर सकती थी कि उसको अपना सूर्य माने।

मेवाड़ के राजवंश के लिए और भारतवर्ष के लिए कितने सौभाग्य की बात होती, यदि आज भी हिन्दू लोग प्रेम और उल्लास के साथ महाराणा मेवाड़ को 'हिन्दुआँ सूरज' कहते होते। महाराणा प्रताप का प्रण था कि जब तक उनको चित्तौड़ पुनः प्राप्त न हो जायगा, तब तक ज़मीन पर सोएँगे, पत्तों पर खाएँगे और हज़ामत नहीं बनवाएँगे। स्वर्गीय महाराणा फ़तेहसिंह के समय तक इस प्रण का नाममात्र पालन किया गया, परन्तु कहाँ थी वह स्वातन्त्र्याभिलाषा, कुल-मर्यादा की चिन्ता और अपना मस्तक ऊँचा रखने की आकांक्षा? किसी न किसी अंश में महाराणा फ़तेहसिंह जी ने तो इस आन को फिर भी निभाया, परन्तु उनके देहावसान के दिन से ही मेवाड़ फिर वह मेवाड़ नहीं रहा, जिसका नाम उच्चारण करने से हिन्दुओं को गर्व होता था, स्वातन्त्र्य-प्रेमियों का रक्त जोश करने लगता था और आत्म-बलिदान की अनेक पुण्य स्मृतियों से शरीर में रोमाञ्च होता था। दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान मेवाड़ न मध्यकालीन मेवाड़ है और वर्तमान प्रकाश से प्रकाशित मेवाड़।

वर्तमान महाराणा वर्षों से अपङ्ग हैं। आपके पैरों पर लक़वे का ज़ोर है। पीड़ा को शान्त रखने के वास्ते आप प्रायः मालिश करवाया करते हैं। आपने दो विवाह किए हैं, परन्तु दोनों महारानियों से अभी तक कोई सन्तान नहीं है। सुनते हैं कि स्वर्गीय महाराणा साहब ने आपके द्वितीय विवाह का बड़ा विरोध किया था, परन्तु सन्तान-प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा के कारण आपने अपने पिता की आज्ञा की भी अवहेलना की। यह प्रभु की लीला है कि दूसरी रानी से भी अभी सन्तान उत्पन्न नहीं हुई। शरीर से प्रायः लाचार होते हुए भी महाराणा साहब राज-काज थोड़ा-बहुत नित्य देखते हैं। नियमानुकूल नित्य प्रातःकाल ७ बजे से पूर्व 'अपौढ़ी' हो जाती है अर्थात जग जाते हैं। ८ बजे के लगभग गढ़ में लोग सलाम करने के लिए जाते हैं। इनमें सोलह, बत्तीस उच्च कर्मचारी, पुरोहित, व्यास और हुज़ूरे होते हैं। उदयपुर रियासत में सोलह प्रमुख जागीरदार हैं, जिनको दीवानी, फ़ौजदारी के फ़र्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट के अख़्तियार हैं और सबको ताज़ीम है। अन्य रियासतों में तो ताज़ीमी सरदारों को देख कर महाराजा लोग अपने आसन से उठा करते हैं, परन्तु उदयपुर के महाराणा नहीं उठते। महाराणा साहब ताज़ीमी सरदारों को केवल हाथ उठा कर अभिवादन कर लेते हैं। इन सोलह प्रमुख सरदारों को केवल सोलह के नाम से पुकारा जाता है। इनसे दूसरे दर्जे के जागीरदारों की संख्या बत्तीस है। राज में इनका सोलह के समान सम्मान और रुतबा नहीं है, परन्तु फिर भी लोगों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। उदयपुर राज्य में जागीरदारों से बड़ी कड़ी नौकरी ली जाती है और उनके रहन-सहन तथा वेष-भूषा पर सरकार का कठोर नियन्त्रण रहता है। हुज़ूरे लोगों का काम प्रातः-काल महाराणा को केवल सलाम करने का है। इन लोगों के अभिवादन का महाराणा कुछ उत्तर नहीं देते। एक-एक करके सलाम करते हुए ये लोग महाराणा के सामने होकर निकल जाते हैं और केवल इसी बात की जागीरी पाते हैं। हुज़ूरे लोगों के अभिवादन की विधि बड़ी उपहासजनक है। महाराणा के सामने ये लोग इतने झुकते हैं कि कमर के पास समकोण बन जाता है। तदनन्तर दोनों हाथों को दो-तीन बार

उठाते और गिराते हैं। प्रातःकाल आठ बजे के लगभग राजमहल के दरवाज़े पर अनेक मोटरें और बग्घियाँ खड़ी हुई दिखाई देने लगती हैं। दरबार में जाने वालों की सबकी एक पोशाक होती है, परन्तु है यह बड़ी अजीब। चूड़ीदार पाजामा, उस पर लम्बा अँगरखा, विशेष प्रकार से बँधी हुई पगड़ी—यह सब कुछ ठीक है, परन्तु अँगरखे के ऊपर एक बड़ा कोट भी पहना जाता है, इस कोट का कॉलर खुला हुआ रहता है, परन्तु टाई कोई नहीं बाँधता, उसके बजाय एक रूमाल होता है, जिसको गले में डाल कर उसके दोनों सिरे नीचे की तरफ़ कोट में छिपा लिए जाते हैं। सरदार, माफ़ीदार, राजकर्मचारी, साहूकार, हुज़ूरे, पुरोहित और व्यास आदि सबकी पोशाक एक ही प्रकार की होती है।

सलाम के काम से निवृत्त हो महाराणा स्नान आदि करके एक नौका में बैठ कर पिछोला तालाब के जग-मन्दिर में पधार जाते हैं। प्रातःकाल का भोजन वहीं होता है और वहीं विश्राम। जग-मन्दिर में ही आमोद-प्रमोद तथा विनोद के सब सामान जुटे रहते हैं। पिछोला एक विस्तृत तालाब है, जो शहर के बीच में स्थित है। इसके दोनों ओर शहर बसा हुआ है। इसमें ख़ूब गहरा पानी है,परन्तु बरसात के दिनों में इसका पानी एक विशेष सीमा से आगे नहीं बढ़ पाता। अवाञ्छनीय पानी एक मार्ग में से निकल कर बह जाता है। इस तालाब के बीच-बीच में महाराणा के छोटे-छोटे महल बने हुए हैं, जिनमें ग़दर के ज़माने में अङ्गरेज़ी महिलाओं और बच्चों को शरण दी गई थी। इस समय यहीं महाराणा साहब दिन का अधिकांश भाग काटते हैं। शाम के ४॥ बजे के लगभग नौका में बैठ कर एक अहलकार, एक सोने की छड़ीवाला चोबदार और एक चपरासी के साथ तालाब के तट पर, जहाँ एक पीपल का वृक्ष उगा हुआ है, आते हैं। महाराणा साहब से अपील करने वाले तथा अपनी अपीलों का नतीजा सुनने वाले कितने ही लोग वहाँ खड़े रहते हैं। पिछले दिन की अर्ज़ियों पर जो कुछ भी हुक्म होते हैं, वे क्लॉर्क सुना देता है और उस दिन की अर्ज़ियाँ ले लेता है। यह हर्ष की बात है कि महाराणा साहब के सामने पेश होने वाली अर्ज़ियों पर किसी भी प्रकार के टिकट लगाने की ज़रूरत नहीं है। क्या ही अच्छा हो कि छोटी अदालतों से भी कोर्ट-फ़ी बिल्कुल उठा दी जावे। इन अर्ज़ियों को पढ़ने में, क़ानूनी बातों को समझाने में और हुकम-अहकाम का स्वरूप निश्चित करने के लिए महाराणा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी मेहता तेजसिंह जी तत्पर रहते हैं। मेहता जी उदयपुर राज्य के एक पुराने और प्रतिष्ठित कुल के सज्जन हैं। आपके दो-तीन भाई बड़े-बड़े पदों पर हैं और ख़ुद भी उच्च शिक्षित हैं। लेकिन खेद की बात है कि लोगों का आप पर विश्वास नहीं है। घण्टा डेढ़ घण्टा इस प्रकार काम करने के बाद महाराणा साहब फिर घूमने पधार जाते हैं और प्रबन्ध विषयक कुछ काम नहीं करते। इतने विस्तृत राज्य का स्वामी केवल घण्टा-डेढ़ घण्टा प्रार्थियों की परोक्षता में विनय सुने और राज्य के अन्य विभागों को कुछ न देखे तथा उस तक प्रजा की दुख-दर्द की असली पुकार न पहुँच सके और कोई उससे रूबरू बात तक न कर सके, यह शोभा की बात नहीं है। एकतन्त्र सत्ता में अनेक बुराइयाँ होते हुए यही तो सबसे बड़ी सुन्दरता है कि वहाँ का साधारण से साधारण व्यक्ति भी बिल्कुल आसानी के साथ और एक पैसा ख़र्च किए बिना ही अपनी पुकार अपने स्वामी तक पहुँचा सकता है और अपने कष्ट के तत्काल निवारण की आशा कर सकता है। वीभत्स निरङ्कुशवाद में से राजा और प्रजा के सुगम-सम्पर्क की यह सुन्दरता और मधुरता यदि निकाल दी गई, तो फिर उसमें रहता ही क्या है।

सर शुकदेव प्रसाद जी उदयपुर के मुसाहिब आला हैं। वास्तव में ये ही उदयपुर के सब कुछ हैं। महाराणा साहब इनका ख़ूब विश्वास करते हैं और इनका बड़ा सम्मान करते हैं। आज से नहीं, वर्षों से अर्थात् जिस समय स्वर्गीय महाराणा फ़तेहसिंह जीवित थे, तब से ही सर शुकदेवप्रसाद वर्तमान महाराणा साहब के मित्र हैं। बहुत समय पहले सर शुकदेवप्रसाद उदयपुर के दीवान थे, परन्तु महाराणा फ़तेहसिंह जी ने इनको कुछ अर्से तक ही दीवान रख कर विदा कर दिया था। उसके बाद ये जोधपुर के दीवान रहे। कर्नल सर प्रताप में और इनमें जब कुछ खटपट हुई तो इन्हीं की विजय हुई। बात यह है कि सर शुकदेव प्रसाद भारत-सरकार के बड़े लाड़ले हैं। जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा साहब ने इन्हें एक ख़ासी जागीर भी बख़्शी थी, परन्तु वर्तमान महाराजा साहब

जोधपुर ने इनको राजसिंहासन पर विराजने के कुछ ही अर्से बाद विदा कर दिया। यह महाराजा साहब का सौजन्य था कि अपने पूज्य पिता की दी हुई जागीर को उन्होंने नहीं छीना। सुना जाता है कि महाराजा साहब जोधपुर सर शुकदेवप्रसाद से मिलते भी नहीं हैं। जिस समय सर शुकदेवप्रसाद जोधपुर में थे तो भारत-सरकार महाराणा उदयपुर के अधिकारों को सङ्कुचित कर महाराजकुमार को वास्तविक शासक बनाना चाहती थी। उस समय सर शुकदेवप्रसाद ने महाराणा को यह सलाह दी थी कि सरकार हिन्द की सलाह को टालना नहीं चाहिए। लोगों का ऐसा अनुमान है कि वर्तमान महाराणा साहब और सर शुकदेवप्रसाद में उन्हीं दिनों से घनिष्ट मित्रता है। इस समय मुसाहिब आला के सिपुर्द कोई ख़ास काम नहीं है। न वे यथानियम किसी दफ़्तर में बैठते हैं, न कचहरी करते हैं, परन्तु वैसे ही सम्पूर्ण उदयपुर रियासत के शासन का सञ्चालन आप ही के हाथों से होता है। महकमा ख़ास, महद राज-सभा और अन्य महकमे, सब जगह सर शुकदेवप्रसाद का आधिपत्य है। वृद्धावस्था के कारण आपसे अधिक हिला-चला नहीं जाता, परन्तु फिर भी तकते हैं सब आपके ही मुँह की तरफ़।

मुसाहिब आला के नीचे ख़ास महकमा है, जिसमें कोटा राज्य की भाँति दो दीवान हैं। एक बाबू प्रभासचन्द्र मुकर्जी और दूसरे सर शुकदेवप्रसाद के बैरिस्टर पुत्र पण्डित धर्मनारायण जी। अन्य रियासतों में महकमा ख़ास सर्वोच्च महकमा माना जाता है, लेकिन उदयपुर में महकमा ख़ास के ऊपर मुसाहिब आला हैं और महाराणा साहब के पास भी अपीलें होती हैं। महद राज-सभा उदयपुर की हाईकोर्ट है। इसमें ग्यारह जज या मेम्बर हैं, जिनमें कुछ मेहता लोग और कुछ बाहर के आए हुए बाबू लोग हैं। वैसे तो महद राज-सभा का फ़ैसला अन्तिम होना चाहिए, लेकिन कभी-कभी महकमा ख़ास या सर शुकदेवप्रसाद उसको बदल देते हैं। उदयपुर के दण्ड-विधान में सबसे अधिक उल्लेखनीय और प्रशंसनीय बात यह है कि वहाँ प्राणदण्ड किसी भी अपराधी को नहीं दिया जाता। राजद्रोह और षड्यन्त्र का तो अभी तक वहाँ किसी पर मुक़दमा चला ही नहीं और हम आशा करते हैं कि संसार की स्थिति को देख कर वहाँ के शासक अपनी शासन-विधि में ऐसे आवश्यक परिवर्तन कर देंगे, जिससे वहाँ कभी ऐसे अपराध होने का मौक़ा ही न आवे और न मुक़दमा चले। हत्या के अपराध के लिए भी प्राणदण्ड नहीं दिया जाता।

प्रबन्ध के लिए सम्पूर्ण उदयपुर राज्य १२ परगनों में बँटा हुआ है। प्रत्येक परगने पर एक अफ़सर होता है, जिसको हाकिम कहते हैं। उसके नीचे एक असिस्टेण्ट होता है और एक नायब। मालगुज़ारी वसूल करना नायब का काम है और ज़मीन सम्बन्धी तथा दूसरे मुक़दमों का सुनना हाकिम का काम है। परगनों के हाकिमों के काम की जाँच-पड़ताल जितनी होनी चाहिए उतनी नहीं होती। ऐसी अवस्था में यदि कई प्रकार के अनाचार और अन्याय होते हों तो कोई अचम्भे की बात नहीं है। यदि उच्चाधिकारी लोग यथासमय दौरा करें और स्वयं महाराणा साहब प्रत्येक परगने को साल में एक बार भी देख सकें, तो न्याय और प्रबन्ध की अनेक गड़बड़ें शान्त हो जावें।

उदयपुर में एक इन्टरमीडियट कॉलेज है और देहातों में कुछ हिन्दी के स्कूल भी हैं। परन्तु ये संस्थाएँ पर्याप्त नहीं हैं। शिक्षा निःशुल्क अवश्य है, परन्तु यह तो हिन्दू-राज्य में होना ही चाहिए। शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर बाहर के आए हुए हैं, और उदयपुर के ही निवासी डॉक्टर मोहनलाल मेहता, जिन्होंने लन्दन यूनिवर्सिटी में ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त की है, माल व रेवेन्यू विभाग में जकड़ रक्खे गए हैं। पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि महामहोपाध्याय रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर ओझा, जो राजपूताना के इतिहास के और प्राचीन लिपिशास्त्र के माने हुए विद्वान हैं, वे उदयपुर राज्य के ही निवासी हैं। क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि उक्त पण्डित जी एक विदेशी सरकार की नौकरी में अजमेर में अपने दिन काट रहे हैं। शिक्षा पर रियासत की आमदनी का पाँच प्रतिशत भी ख़र्च नहीं किया जाता, किन्तु महाराणा साहब के निजी ख़र्च में बारह प्रतिशत से भी अधिक ख़र्च होता है। पुरुषों में तो सौ पीछे चार-पाँच आदमी साक्षर मिलते भी हैं, परन्तु स्त्रियों की शिक्षा तो शून्य के ही बराबर है। उदयपुर ही क्या, जयपुर और कोटे के अतिरिक्त अन्य रियासतों

(शेष मैटर ३८४ पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)
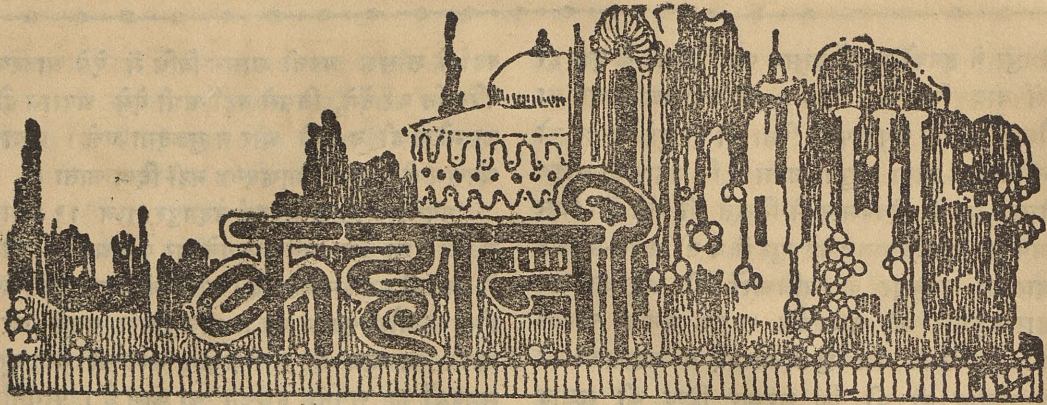
न्याय

[साहित्याचार्य पण्डित लोकनाथ जी सिलाकारी]

स दिन विश्वमोहन रूप की अधिकारिणी भारत-सम्राज्ञी नूरजहाँ शाही महल की छत पर मनोहारिणी वासन्ती वायु का आनन्द ले रही थी। चारों ओर हरे-भरे खेतों, वनों-उपवनों में केसरिया रङ्ग भर कर प्रकृति देवी ने शुभानन्द-दायिनी कोमलतर अनुभूति से मनोभावों को प्रेम की रँगरेलियों में निमग्न कर दिया था। सम्राज्ञी ने चारों ओर घूम कर और दूर-दूर तक नज़र दौड़ा कर अपनी धन-धान्यपूर्ण प्रजा को आनन्द-मग्न देखा। उस समय उसकी आँखों में गर्व और सन्तोष के गहरे भाव स्पष्ट दीख पड़े।

सुविस्तृत नील-गगन में व्योम-विहारी विहङ्गम-वृन्द का स्वच्छन्द उड़ना बड़ा आह्लाददायक था। मानवी हृदय में सुन्दरता के लिए कितना गम्भीर उत्तेजनामय कौतूहल उठता है। परन्तु बेचारे सुन्दर पुष्प सुन्दर होने के कारण ही तोड़ लिए जाते हैं। वचन-माधुर्य के सौन्दर्य के कारण ही व्योमविहारी कीर पिंजड़े में बन्द होकर प्यासा मरता है। सुन्दर हरिणों का ही सब से अधिक शिकार खेला जाता है। सौन्दर्य को कौतूहलवश मसल देना ही मानो मानवीय स्वभाव बन गया है।

लहराते हुए घुँघराले बालों वाली नवयौवना बाँदियों ने मानो विहङ्गों की स्वाधीनता से ईर्ष्यान्वित होकर उन्हें मारने की ठानी। एक ने अर्ज़ की—"मल्कये-आलम! हम लोग आज हुज़ूर के हाथों से इन परिन्दों का शिकार किया जाना देखना चाहती हैं। तमञ्चे में गोलियाँ भर दी गई हैं।"

एक बार ऊपर सिर उठा कर अस्ताचलगामी सूर्य को भी पूर्ण चन्द्रोदय के भ्रम में डालने वाली मनोहारिणी प्रभा छिटकाती हुई नूरजहाँ ने नीले आकाश के अञ्चल में उड़ते हुए विहङ्गों को मण्डल बाँध कर अपने-अपने घोंसलों की ओर जाते हुए देखा। फिर बाँदी की ओर मुँह फेर कर कहा 'लाओ'। उत्तर में 'लीजिए' कह कर बाँदी ने बड़े अदब से नूरजहाँ के अमल कमल-छवि-विनिन्दित हाथ में तमञ्चा दे दिया। नूरजहाँ ने कलकलवाहिनी पुण्य सलिला यमुना की ओर अमराई में जाती हुई विहगावलि को लक्ष्य कर तमञ्चे का घोड़ा दबाया। 'दन्-दन्' शब्द करती हुई दो गोलियाँ छूट पड़ीं। फिर तो बाँदियों को इच्छित अवसर मिल गया। उन्होंने भी अपने लक्ष्यभेद चातुर्य द्वारा अनेक पक्षियों को निर्जीव कर छत पर गिरा दिया। कुछ देर बाद सायङ्कालीन धुँधले प्रकाश को देख कर सम्राज्ञी छत से नीचे चली गईं।

२

वासन्ती चाँदनी रात थी। शाही रङ्गमहल उर्वशी और तिलोत्तमा जैसी सुन्दरी नर्त्तकियों के हाव-भावमय नृत्यकला और उनके कोमल सुरीले कण्ठ से निकले स्वर की झङ्कार से गूँज रहा था। तबले की ठनक, झाँझों की झनक और आभूषणों की खनक ने मधुर वीणालाप से तन्मय होकर एक अनोखा समा बाँध दिया था। रूप-गुण-गर्विता नूरजहाँ अपने अनन्य प्रेमी, भारत के विलास-प्रिय सम्राट जहाँगीर की बग़ल में एक रत्न-सिंहासन पर बैठी हुई सङ्गीत की स्वर-लहरी के आनन्द में निमग्न थी।

मदिरा के नशे में झूमते हुए सम्राट जहाँगीर ने कहा—"साक़ी, ला शराब!" अत्यन्त सुन्दरी तरुण बाँदी ने अपनी रसीली सुन्दर आँखों से एक बार सम्राट के मुख की ओर देखा, फिर रत्नजटित सुन्दर सुराही से रत्नजटित प्याले में शराब ढाल दी। सम्राट ने ज्योंही प्याला होंठों से लगाया, त्योंही घण्टे का घोष हुआ। एक क्षण में ही समस्त वायु-मण्डल शान्त हो गया। सब जैसे के तैसे, जहाँ के तहाँ चित्र-लिखित से ठहर गए। सम्राट जहाँगीर ने मदिरा का प्याला होंठों से अलग हटाते हुए अधिकारसूचक उच्च स्वर में कहा—"यह क्यों बजा? किसने बजाया?" दस्तबस्ता अर्ज़ करती हुई बाँदी ने सिर झुका कर कहा—"दीन दुनिया के मालिक, कोई फ़रियादी ग़रीब औरत इन्साफ़ माँगने आई है।" मदघूर्णित नेत्रों से सुन्दरी बाँदी की ओर देख कर सम्राट ने कहा—"जा, उसे समझा कर कह दे कि कल दरबार में हाज़िर हो।" "जो हुक्म, जहाँपनाह!"—कह कर बाँदी ज़मीन छूकर चली गई।

पुनः राग-रङ्ग होने लगा। सुन्दर स्वर-लहरी की मधुर झङ्कार से हृदयाह्लाद का ज्वार सा आ रहा था। नूरजहाँ के हाथ को अपने हाथों में लेकर सम्राट ने कहा—"नूरजहाँ!"

नूरजहाँ—"मेरे मालिक!"

"कितनी सुन्दर हो, तुम।"

"जहाँपनाह!"

"क़ुदरत ने सारी ख़ूबसूरती का सार मानो तुम्हीं में बन्द कर दिया है। कैसी उन्मादकारिणी सुन्दरता है, प्यारी! जी चाहता है कि तुम्हें ही देखा करें। मगर × × ×"

"मगर क्या जहाँपनाह!"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो जहाँपनाह?"

जहाँगीर—देखता हूँ कि कभी-कभी तुम बड़ी सन्जीदा हो जाती हो। तुम्हारे चेहरे पर सन्जीदगी और उदासी की छाप देख कर मेरा दिल दहल जाता है। तुम मानो मेरी होकर भी मुझसे बहुत दूर चली जाती हो। क्या सबब है, इसका?

नूरजहाँ—मत पूछिए मेरे मालिक! मेरी पुरानी याददाश्त जाग उठती है, उस वक़्त मानो कोई अपने ज़बर्दस्त हाथों से मेरे नरम कलेजे को मसलने लगता है।

जहाँगीर—तो क्या तुम अब भी मुझसे नफ़रत करती हो?

नूरजहाँ—मैंने आपसे कभी नफ़रत नहीं की। मैं आपसे न नफ़रत कर सकती थी और न कर सकती हूँ।

जहाँगीर—तो फिर नूर, मेरे इतने चाहने पर—सब कुछ निछावर करने पर—तुम फ़िक्रमन्द क्यों हो जाती हो? नूरजहाँ, नूरजहाँ, तुम्हारे लिए मैंने क्या नहीं किया! एक बार तुम्हीं कहो कि क्या मैंने तुम्हारे लिए अपने वालिद बादशाह मरहूम से बग़ावत नहीं की? क्या मैंने तुम्हारे लिए ही मुग़ल सल्तनत के ज़बर्दस्त पाए वज़ीरे-आज़म शेख़ अब्बुलफ़ज़ल को अपने वफ़ादार दोस्त राजा वीरसिंहदेव से बुन्देलखण्ड के घने जङ्गलों में क़त्ल नहीं कराया? और, और नूरजहाँ, क़सम ख़ुदा की, तुम्हारे लिए—सिर्फ़ तुम्हारे लिए—मैंने बादशाह होकर भी वह किया, जो मुझे हर्गिज़ न करना चाहिए था। ओफ़! उसकी कसक अभी तक कलेजे में बाक़ी है। बेचारा बेक़ुसूर शेर × × ×

नूरजहाँ—बस करो, मेरे मालिक, बस करो। उस दिल दुखाने वाली बात को ज़ुबान पर न लाना ही अच्छा है।

जहाँगीर—मगर सच तो यह है नूर! मेरी नूर!! मैं तुम्हारे बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। तुम देवी हो नूरजहाँ, तुम्हें पाकर मैं कुछ और ही बन गया हूँ। पहले मैं बाग़ी था, ख़ूनी था, पर अब शाहन्शाह हूँ। लेकिन

नूरजहाँ, यह तो बतलाओ कि तुम क्या सचमुच मुझे उसी दिल से चाहती हो, जिस दिल से मैं तुम्हें चाहता हूँ। सच-सच बता दो, तुम्हें मेरी क़सम।

सुनते ही नूरजहाँ एक बार सिहर उठी। उसने काँपते हुए हाथों से सम्राट के हाथ को पकड़ कर क्षमा-याचना का भाव दिखाते हुए सकरुण दृष्टि से उसके मुख की ओर देखा। फिर नारी-सुलभ लज्जा का सफल अभिनय करती हुई वीणा-विनिन्दित मधुर स्वर में कहा—जहाँपनाह, कौन जानता है, किसके दिल में क्या हो रहा है? मुहब्बत करने वाला अपने दिलवर को ख़ुश रखने के लिए हमेशा अपने दिल पर ज़ब्र करता है, और अपने विचारों और लालसाओं का ख़ून करके अपनी ख़ुशी को अपने दिलवर की ख़ुशी में मिला देता है। फिर कौन किससे किसकी मर्ज़ी पूछता है। मेरे मालिक, सच तो यह है कि नूरजहाँ आपकी थी, आपकी है और आपकी ही रहेगी। दिल को दिल से कौन जुदा कर सकता है? शाहे दोजहाँ, मैंने एक स्वप्न देखा था। स्वर्गीय सम्राट की आज्ञा से मेरी शादी किसी दूसरे के साथ कर दी गई थी। मैं मानो ज़बर्दस्ती उठा कर दूसरे की गोद में डाल दी गई थी। स्वर्गीय सम्राट की आज्ञा और धर्म की पाबन्दी निहायत ज़रूरी समझ कर मैंने अपने दिल पर जो जब्र किया है, उसे मैं ही जानती हूँ। एक तरफ़ दिल की मर्ज़ी थी—दिल मचल-मचल जाता था और दूसरी तरफ़ दुनिया में अमन-आमान रखने वाले क़ानूनों और मज़हब की पाबन्दी का ख़्याल था। मेरे मालिक, आपको क्या बतलाऊँ कि मेरे दिल पर कैसी बीत रही थी।

जहाँगीर—मगर नूर, तुमने तो एक अरसे तक मेरी ओर देखा तक नहीं। उस वक़्त, जब मैं अपनी मुहब्बत का इज़हार करने तुम्हारे पास पहुँचता था, तब तुम मुझे देखते ही मुँह क्यों फेर लेती थीं? तुम्हारी उस हरकत से मेरे कलेजे में कैसा दर्द होता था, नूर!

नूरजहाँ—उससे कहीं ज़्यादा दर्द मेरे मालिक, मेरे कलेजे में होता था। हृदय में प्रेम और कर्त्तव्य का जङ्ग छिड़ जाता था। मैं, मैं उस समय विचारों की उत्ताल तरङ्गों में तैरती-उतराती, न जाने किधर बह जाती थी। बड़ी तड़पन होती थी, मुझे। मेरे मालिक, उस समय मेरा ख़्याल तो फ़र्ज़ की तरफ़ था। पर यह दिल मुहब्बत की तरफ़ था। घण्टों, दिनों, महीनों, सालों यह लड़ाई होती रही। मेरी ज़िन्दगी का जहाज़ गहरे तूफ़ान में पड़ा रहता था। मगर मेरे मालिक, आख़िरकार मुहब्बत की ही जीत रही। दिल ने अक़्ल को नीचा दिखाया। उसी दिन मैंने आपको पाया था। उस दिन मैंने देखा था कि मेरे रोएँ-रोएँ में आप ही थे। उस दिन मैंने जैसे सब कुछ पा लिया। फिर दिल में और कोई तमन्ना बाक़ी न रह गई।

जहाँगीर—तब तो नूर, तुम मुझ पर ख़फ़ा न थीं।

नूरजहाँ—कभी भी नहीं मेरे मालिक, यह ग़ैर-मुमकिन है।

जहाँगीर—मगर तुम्हारे मुँह फेर कर बैठ जाने से मैं तो यह साफ़ समझता था कि तुम मुझे नहीं चाहतीं।

नूरजहाँ—क्योंकि आपकी मुहब्बत बहुत ही पुर-जोश थी। आप उतावले आशिक़ थे। आपकी मुहब्बत में बेताबी थी। इश्क़ सब्रतलब और तमन्ना बेताब होती है। अगर आपने उस वक़्त मेरे मुँह की तरफ़ ग़ौर से देखने की तकलीफ़ गवारा की होती, मेरे दिल के तूफ़ान का अन्दाज़ा लगाया होता, तो मेरे मालिक, आपको यह ख़्याल न होता। आप उसी वक़्त ताड़ लेते कि मैं आपसे मुहब्बत करती थी।

जहाँगीर—जाने दो नूरजहाँ, हम तुम्हें चाहते हैं, तुम हमें चाहो, फिर कुछ न चाहिए।

नूरजहाँ—यही तो है मेरे मालिक! यही हो रहा है।

यह कह कर नूरजहाँ जहाँगीर की ओर झुकी। जहाँगीर ने अपना हाथ उसके गले में डाल दिया। यह देख कर मजलिस उठी। नाच-रङ्ग बन्द हो गया। धीरे-धीरे सब बाँदियाँ चल दीं। जहाँगीर ने नूरजहाँ को हृदय से लगाते हुए कहा—"मेरी नूर!" उसके उत्तर में जहाँगीर के गले में मृणाल-मनोहर बाहु डाल कर विश्व-सुन्दरी नूरजहाँ ने कहा—"मेरे प्यारे!"

३

सुखई धोबी की घरवाली रात से ही छाती पीटती हुई ज़ोर-ज़ोर से रोती रही थी। उसके उच्च स्वर के विलाप के मारे पड़ोसी रात भर जागते रहे थे। कल सायङ्काल के समय गोधूलि बेला में किसी ने शाही

महल की छत पर से गोली चलाई थी। उससे घायल हो उसका पति सुखई मर गया था।

सम्राट जहाँगीर के साम्राज्य में—नूरजहाँ की सल्तनत में—न्याय धन के बदले मोल नहीं लिया जाता था। दीनातिदीन को भी न्याय सुलभ था। शाही महल से स्वर्ण की एक मोटी साँकल लटकती थी, जिसका एक छोर महल के एक बड़े घण्टे से बँधा था और दूसरा छोर महल की दीवाल पर से होता हुआ नीचे के फ़र्श को छूता था। कोई भी व्यक्ति, जिसे सम्राट से न्याय पाने के हेतु प्रार्थना करनी होती थी, किसी भी समय जाकर उस साँकल को खींच सकता था। साँकल के खिंचते ही घण्टा बज उठता था, जिससे सम्राट को विदित हो जाता था कि कोई न्याय का प्रार्थी है और वे प्रार्थी की प्रार्थना सुन कर उसका यथोचित न्याय कर देते थे। सुखई की घरवाली कल ही साँकल खींच आई थी और उसे आज दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा मिल चुकी थी। पतिहन्ता व्यक्ति को दण्ड दिलाने के आवेश में सुखई का दाहकर्म शीघ्र ही कर-करा के वह शाही दरबार में पहुँची।

सम्राट जहाँगीर के वैभवशाली विशाल दरबार में, जहाँ अनेक रक्षित राजा, महाराजा, अमीर-उमराव और शूर-सामन्त एवं गुणी-कलाविद् सुशोभित आसनों पर बैठे हुए थे, रत्नों की कान्ति से निराली छटा छहर रही थी, मीरमुन्शी रत्नजटित स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे भारत के मुग़ल-सम्राट जहाँगीर को ज़रूरी काग़ज़ात सुना कर उन पर हुक्म ले रहा था, एक चोबदार बड़ी विनम्रता से ज़मीन छूकर खड़ा हो गया। सम्राट ने उसकी ओर देख कर पूछा—"क्या है?"

चोबदार ने कहा—जहाँपनाह! एक धोबिन हाज़िर हुई है। वह दस्तबस्ता अर्ज़ करती हुई हुज़ूर की ख़िदमत में इन्साफ़ की फ़रियाद करने आई है। कहती है कि कल शाम को शाही महल की सोने की साँकल खींचने पर उसे दरबार में हाज़िर होने का हुक्म हुआ था।

जहाँपनाह—जाओ, उसे फ़ौरन हाज़िर करो।

'जो हुक्म' कह कर चोबदार चला गया। शाही तख़्त के पीछे खिड़की में नूरजहाँ बैठी थी। सम्राट राजकार्य में उसकी राय लिया करता था और जो कुछ वह राय देती थी, उसी के अनुसार सम्राट निर्णय करता था। खिड़की पर मूल्यवान मोतियों की चिक पड़ी थी। चोबदार ने तुरन्त ही धोबिन को दरबार में हाज़िर किया। धोबिन वहाँ के विशाल वैभव को देख कर क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गई। फिर सँभल कर उसने धरती छूकर हाथ जोड़े और सम्राट की दीर्घायु की कामना करके वह बोली—"अन्नदाता! कल सायङ्काल मैं जमुना जी के किनारे अपने धोबी के साथ कपड़े धो रही थी। अचानक शाही महल की छत पर से किसी ने बन्दूक़ चलाई। गोली मेरे धोबी को लगी, जिससे ग़रीब की मौत हो गई! मैं लुट गई, अन्नदाता!" यह कह कर धोबिन फूट-फूट कर रोने लगी।

धोबिन की बात सुनते ही नूरजहाँ सिहर उठी। उसका कोमल हृदय भयङ्कर अनिष्ट की आशङ्का से काँप उठा। इसी समय सम्राट ने पूछा—"मल्का, तुम्हें मालूम है, गोली किस महल से चलाई गई थी?"

कम्पित स्वर में नूरजहाँ ने उत्तर दिया—मेरे!

जहाँगीर—"तुम्हारे?" जहाँगीर के स्वर में शङ्का का भाव था।

नूरजहाँ—"हाँ जहाँपनाह, मेरे ही महल से गोली दाग़ी गई थी।" नूरजहाँ के स्वर में दृढ़ता थी।

जहाँगीर—तो फिर क्या होना चाहिए?

नूरजहाँ—ख़ूनी को उसके आमाल की सज़ा मिलनी चाहिए।

जहाँगीर—क्या सज़ा लोगी?

नूरजहाँ—मौत के बदले मौत।

जहाँगीर—बहुत कड़ी सज़ा होगी।

नूरजहाँ—जुर्म भी तो बहुत सङ्गीन है, जहाँपनाह!

जहाँगीर—जानती हो ख़ूनी कौन है?

नूरजहाँ ने दृढ़ता से उत्तर दिया—मैं।

"तुम?" कहते हुए सम्राट जहाँगीर अत्यन्त विचलित हो उठे। स्वेद की बूँदें माथे पर झलक आईं। कुछ देर तक स्तम्भित रहने के बाद उन्होंने दिल में सोचा—"इन्साफ़ तो करना ही होगा। शाही तख़्त ख़ुदा की न्यामत है। इस पर बैठ कर इन्साफ़ ही करूँगा। मैं भले ही पिस जाऊँ, पर इन्साफ़ का ख़ून न होने दूँगा।" फिर धोबिन की ओर मुड़ कर सम्राट ने कहा—"ठहरो, तुम्हारा इन्साफ़ होगा। घबराओ नहीं।"

सम्राज्ञी नूरजहाँ ने चिक के पीछे से फिर कुछ कहा। जहाँगीर उच्च-स्वर में बोले—कल शाम को जो धोबी मरा है, वह नूरजहाँ बेगम की गोली का शिकार हुआ है। बेगम ने एक बाज़ पर गोली चलाई थी, पर वह उचट कर धोबी के लगी, जिससे वह बेचारा मर गया। मैं नूरजहाँ बेगम को क़त्ल के जुर्म में मुजरिम ठहराता हूँ और हुक्म देता हूँ कि नूरजहाँ मुजरिम की हैसियत से चेहरे का नक़ाब हटा कर दरबार में खड़ी हो।

सम्राट का यह आदेश सुनते ही वज़ीर आसफ़ुद्दौला ने कहा—जहाँपनाह, बेगम के साथ हुज़ूर × × ×

जहाँगीर ने "कुछ नहीं सुन सकता"—कह कर उसे चुप कर दिया।

महावत ख़ाँ ने कहा—क्या बेगम को बेनक़ाब आना पड़ेगा?

जहाँगीर—हाँ, वह मुजरिम है।

महावत ख़ाँ—मगर शरीयत का हुक्म × × ×

जहाँगीर—शरीयत इन्साफ़ का ख़ून करने का हुक्म नहीं देती।

महावत ख़ाँ—मगर तो भी हुज़ूर, वे हिन्दोस्तान की अज़ीमुश्शान मल्का हैं।

जहाँगीर—कोई भी क्यों न हों, ख़ुदा की नज़र में सब एक हैं। इन्साफ़ सबके लिए बराबर है। मैं फिर हुक्म देता हूँ कि नूरजहाँ बेगम मुजरिम की हैसियत से दरबार में खड़ी हों।

राजा वीरसिंहदेव—तो क्या आज भारत की सम्राज्ञी को सम्राट के सम्मुख अपराधिनी बन कर दरबार में आना ही पड़ेगा?

जहाँगीर—हाँ, आना ही पड़ेगा राजा साहब, मैं बादशाह हूँ। कुछ भी हो, मुझे इन्साफ़ करना ही पड़ेगा।

वीरसिंहदेव—यह नहीं हो सकेगा, सम्राट!

जहाँगीर—क्यों न हो सकेगा, राजा साहब?

वीरसिंहदेव—भारत की सम्राज्ञी का अपमान भारत-सम्राट के दरबार में कभी नहीं किया जा सकता।

यह सुनते ही सम्राट जहाँगीर आवेश में बिजली के समान तड़प कर फ़ुर्ती से उठे और पलक मींचते धोबिन के पास पहुँच कर बोले—"अच्छा, यह नहीं हो सकता तो यह तो हो सकता है।" इतना कह कर सम्राट जहाँगीर ने अपनी कमर से कटार निकाली और उसे धोबिन के हाथ में बलात् थमाते हुए वे उससे बोले—"धोबिन! तू इन्साफ़ चाहती है? अच्छा, तुझे इन्साफ़ ही मिलेगा। जिस तरह नूरजहाँ ने तेरे ख़ाविन्द को क़त्ल करके तुझे बेवा बना डाला है, उसी तरह तू भी मुझे मार कर नूरजहाँ को बेवा बना दे, ले।" यह कहते हुए सम्राट जहाँगीर ने घुटनों के बल बैठ कर सीना उघार दिया। दरबार में सन्नाटा छा गया! धोबिन ठिठक कर रह गई!

❋ ❋ ❋

(३७९ पृष्ठ का शेषांश)

की भी यही दशा है, जिनमें बूँदी, टोंक, करोली और बाँसवाड़ा की दशा तो अत्यन्त शोचनीय है।

उदयपुर बड़ा रमणीय नगर है, परन्तु सफ़ाई का इन्तज़ाम पर्याप्त नहीं है। देहातों में तो न राज्य की ओर से सफ़ाई का कोई प्रबन्ध है, न अशिक्षित किसान ही कभी सफ़ाई की आवश्यकता अनुभव करते हैं। उदयपुर में भी भाषण की स्वतन्त्रता बिलकुल नहीं है और कई अख़बार उस राज्य में घुसने नहीं पाते। लगभग दस वर्ष पूर्व उदयपुर राज्यान्तर्गत ठिकाना बिजोलिया की प्रजा ने ठिकाने के अनेक अनुचित कर और कामदार के अनेक अत्याचारों से तङ्ग आकर बड़ा ज़बरदस्त सत्याग्रह छेड़ा था, जो तीन साल तक जारी रहा था। उस समय राज्य ने ठिकाने के राव को अपना प्रबन्ध सुधारने के लिए तो विवश नहीं किया, परन्तु सैकड़ों सत्याग्रही किसानों को ठिकाने की और रियासत की जेलों में सड़ाया। उदयपुर के सोलहों को विस्तृत जुडीशियल अधिकार होने के कारण ठिकानों की प्रजा बड़ी तङ्ग रहती है।

बेगार उदयपुर के शासन का ख़ास कलङ्क है और ज़कात है वहाँ की निरन्तर व्याधि। राजपूताने की कई रियासतों ने बेगार को सङ्कुचित कर दिया है और जो कुछ ली जाती है उसकी एवज़ में लोगों को कुछ दैनिक मज़दूरी दी जाती है, परन्तु उदयपुर राज्य के उच्चाधिकारियों का अभी इस ओर कुछ ध्यान नहीं गया है।

हम आशा करते हैं कि उदयपुर का शासन शीघ्र ही सुधर कर आधुनिक साँचे में ढल जायगा और उदयपुर के महाराणा वास्तव में हिन्दुओं के सूर्य बनेंगे।

श्रीमती रामप्यारी—आप कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर की अध्यापिका हैं और अभी हाल में ही उक्त विद्यालय के लिए धन-संग्रहार्थ विद्यालय की मुख्याधिष्ठात्री के साथ अफ़्रिका गई हैं।
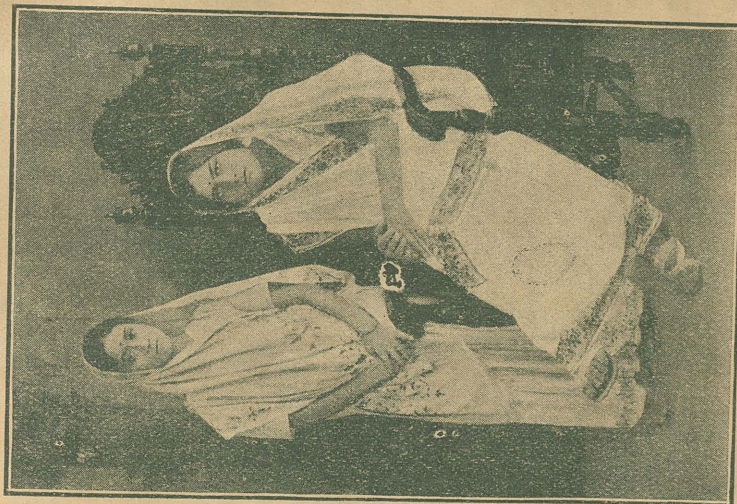
कुमारी राजकुमारी शिवपुरी (बैठी हुई) और कुमारी गिरिराज कुमारी (खड़ी)—जिन्होंने प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला की भाषण-प्रतियोगिता और गायन-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार और रजत-पदक प्राप्त किया है।

कुमारी नारायणी देवी, मुख्य-अधिष्ठात्री कन्या-आश्रम, जालन्धर। आप कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर के लिए धन-संग्रह करने अफ़्रिका गई हैं।

महिलाओं को कला-कौशल की शिक्षा देते हुए—श्रीमती ईथल लेग्निस्का—आप न्यूयॉर्क (अमेरिका) के 'वीमेन्स सिम्फ़ोनी ऑरचेस्ट्रा' नामक सङ्गीत-विद्यालय की सञ्चालिका हैं।

अपनी राष्ट्रीय पोशाक में कुछ वैल्श लड़कियाँ, जिन्होंने हाल ही में इङ्गलैण्ड के 'माउण्ट स्नोडन' नामक पर्वत की चढ़ाई की थी।

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?

मिस पेट्रिशिया मेण्डल, जो 'हवाई पुलिस' में प्रवेश पाने वाली प्रथम अमेरिकन महिला हैं।

रामायण या रमणी !!!

"वञ्चक भगत कहाय राम के, किङ्कर कञ्चन-कोह-काम के !"

नवयुवकों का कर्तव्य

[श्री० जगदीशचन्द्र जी]

यदि हम विद्यार्थी हैं, तो विद्यार्थी का अर्थ 'किताब का कीड़ा' कभी नहीं होता। विद्योपार्जन के अतिरिक्त भी हमारा अधिकांश कर्तव्य अवशिष्ट रह जाता है। क्या हुआ यदि हम शेक्सपीयर के ड्रामे और मिल्टन के सानेट ही चाटते रहे? नौकरी मिल जावेगी? तो अब तो वह भी असम्भव है—वह वेतन भी अलभ्य है, जो हम होस्टेल में बैठे उड़ा देते हैं। और, यदि हम बेकार हैं, तो वास्तव में हमारा जीवन ही बेकार है। क्योंकि यदि मनुष्य काम करना चाहे तो वह बेकार नहीं रह सकता; बेकार वही रहेगा जिसमें उत्साह नहीं, बल नहीं।

हमारे पढ़ने का समय लद गया। अब यदि पढ़ना है तो पाठ्य विषय भी कुछ और ही होगा। वर्तमान पाठन-प्रणाली की बड़ी तीव्र आलोचनाएँ हो चुकी हैं। महात्मा गाँधी का कहना है कि स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् इसे बिलकुल बदल देना पड़ेगा। एक अङ्गरेज़ का कथन है कि आजकल की पढ़ाई 'Too distributive' है, जिससे 'Flabbiness and weakness of mind' (मस्तिष्क की दुर्बलता) हो जाने का भय है। वास्तव में हमें इतने विषय पढ़ाए जाते हैं कि हम किसी एक में भी निपुण न होकर सब में अधूरे रह जाते हैं। कारण यह है कि हमें मानसिक विकास के निमित्त शिक्षा नहीं दी जाती, वरन् नौकर बनाने के लिए दी जाती है। परिणाम यह होता है कि न तो हमें नागरिकता (Citizenship) का ज्ञान होता है और न सद्-व्यवहारों का ही। हो कैसे? हमारे शिक्षक अथवा हमारे बड़े भी तो अनुकरणीय नहीं।

परन्तु हमारी और भी आवश्यकताएँ हैं, जिनका आजकल स्कूल-कॉलेजों या परिवारों से कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता। मानव-कर्तव्य की पहली सीढ़ी शुद्धाचरण है। परन्तु हमारे समाज का वातावरण अति दूषित हो रहा है; हमारे माता-पिता 'शुद्धाचरण' के अर्थ ही नहीं समझते। इसलिए अब हमें देश के नेताओं को अपना सच्चा पथ-प्रदर्शक मान कर अपने आचार-व्यवहार बनाने होंगे। हमें प्रेम-सत्य-सेवा का भाव जाग्रत करना होगा। केवल दुर्बलों एवं निर्धनों पर दया कर, उनकी सेवा-सहायता करने से ही, हमारा विश्वास है, हृदय के अन्य उत्कृष्ट भाव स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं। सेवा में यह बल है। गाँधी ने सत्य का प्रचार किया, ईसा ने प्रेम का प्रतिपादन किया, बुद्ध ने दया का पाठ पढ़ाया, परन्तु हमारी अटल धारणा है कि इन सबसे उत्तम धर्म 'सेवा' है। सेवा करिए, दया, प्रेम, सहानुभूति के भाव स्वयं आप में आ जाएँगे। न भी आएँ तो कोई हर्ज नहीं। हमें सेवा करना है, प्रेम का प्रदर्शन नहीं। उस प्रेम से क्या लाभ, जिसने सेवा के निमित्त प्रेरित नहीं किया?

इसके अतिरिक्त सफलता-प्राप्ति के हेतु उत्कट इच्छा, दृढ़ निश्चय, पूर्ण अध्यवसाय, वास्तविक योग्यता, अटल विश्वास आदि की भी आवश्यकता होती है। हमें पशुता से या सम्मान-रहित मानवता से यथार्थ मनुष्यता में परिणत होना होगा। ढीला-ढाला जीवन किस काम का? क्यों न हम उद्योगी एवं प्रयत्नशील बनें? ऐसे प्रयत्नशील, कि उसी में अपने प्राण तक दे दें और हँसते रहें। यह देह मिली किस लिए है, जिसका कुछ ठीक नहीं? तेज़ी से जीवन की दौड़ में आगे निकल जाने के लिए। यूरोप कहाँ चला गया? परन्तु भारत अभी वहीं है, और उसी में सन्तुष्ट है!

ये तो मानसिक उन्नति के साधन हुए, जो प्रथम आवश्यक हैं। परन्तु अभी एक बड़ा भाग कार्य का रह गया है। वास्तव में कार्य से ही ज्ञान की भी अभि-वृद्धि होती है। क्योंकि ज्ञान एवं कर्म का अन्योन्य

सम्बन्ध है; क्योंकि ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है, और अनुभव के लिए क्रिया परमावश्यक है। यदि कोई मनुष्य परोपकार, दया और सहानुभूति पर केवल किताबें ही पढ़ता रहे, तो वह समय का सत्यानाश ही करता रहेगा। एक बार किसी दरिद्र को दान देने के कोमल भाव जो हमें सिखा देते हैं, वह पुस्तकें नहीं सिखा सकतीं। तात्पर्य यह कि हमारे कर्तव्य का क्रियात्मक कार्य से बहुत सम्बन्ध है। कर्म ही ज्ञान—वह ज्ञान है जिसे भारतीय दर्शन साहित्य ने 'आध्यात्मिक सुख' और मनुष्य-जीवन का उद्देश्य बताया है, और जो पश्चिमीय अनात्मवादी (Materialistic) विद्वानों के 'आधिभौतिक सुख' से भिन्न है—का उद्गम-स्थान है और यह निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होता है। बस इसी ज्ञान—आध्यात्मिक सुख—के प्राप्त्यर्थ जो कार्य किए जाते हैं, उन्हीं को कर्तव्य कहते हैं। इसी का नाम धर्म भी है।

हमारा प्रथम धर्म पृथ्वी पर यह है कि हम जीवित रहें। प्राण से ही नहीं, वरन् नीरोग मन तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर से। यह याद रखना चाहिए कि हम जो कुछ भी कर सकते हैं, बलिष्ट रह कर ही अच्छी तरह तथा अधिक कर सकते हैं। 'Survival of the fittest' बलवान ही अधिकार प्राप्त करेगा—प्रकृति का यही नियम भी है। मर जाना बड़ा भारी पाप है। केवल उसी को मर जाना चाहिए, जिसकी भुजाओं में अपने लिए रास्ता बनाने का बल न हो। और निरुद्देश्य तथा उत्साह-हीन मनुष्य तो सौ मर जाने के बराबर हैं। परमात्मा ने हमें पैदा किया है, स्वयमेव प्रयत्न करने के लिए और इसीके हेतु हमें काफ़ी स्वाभाविक आयु भी दी है, जिसका पता, यदि हम नियमानुकूल रहें तो लग सकता है। यह मानव-शरीर, जो प्राणि-जगत में सर्वोत्तम है, यह समझिए, कि आपकी परीक्षा के लिए मिलता है। इसमें आप काम करने के लिए—स्वत्वों की रक्षा और अधिकारों को प्राप्त करने के लिए—स्वतन्त्र बना दिए जाते हैं!

परन्तु शोक तो यह है कि हमारे अभिभावक अपने साथ हमें भी ले डूबना चाहते हैं। भारत के युवक-समुदाय की दुर्बलता का वे ही मुख्य कारण हैं। उन्होंने हमें भीरु तथा परिज्ञापटु बना रक्खा है। कारण यह है कि वे मोह में पड़े हैं। उन्हें, सच मानिए, हमसे प्रेम नहीं। क्योंकि प्रेम विनिमय अथवा व्यापार की भावना नहीं है। हमारे माँ-बाप हमें इसलिए पढ़ाते और पालते हैं कि हम उनका नाम चलाएँ। हमारा चाहे कुछ भी हो, परन्तु उनका नाम मरने के बाद भी चलता रहे! उनके स्वार्थ हमारे ऊपर निर्भर हैं। हमारा शीघ्रातिशीघ्र विवाह कर लेना—हमारा एक व्यक्तिगत अधिकार छीन कर, जिसमें वह केवल अनुमति देने के अधिकारी थे, उन्होंने अपने कर्तव्य में दाख़िल कर लिया है, यद्यपि इससे उनका विशेष प्रयोजन यही होता है कि अपनी ईश्वर-भक्ति की उम्र में बच्चे खिलाएँ। हमें कई दृष्टान्त ऐसे मालूम हैं, जहाँ उन्होंने बलपूर्वक अपनी सन्तानों का ब्याह, उनकी इच्छा के विपरीत धन के लोभ में, कर दिया है। यथार्थ में वे उनकी नहीं, अपनी शादी करते हैं।

उनका भ्रम है कि मनुष्य सदैव एक सा ही काम कर सकता है। किन्तु निःसन्देह यह आवश्यक नहीं कि जो उन्होंने अपने समय में किया था वही हम भी करें। यह भी आवश्यक नहीं कि बड़े होकर हम उनका कहना मानें ही। क्योंकि वृद्ध पुरुष का युवक से लाज़िमी बुद्धिमान होना किसी वेद-शास्त्र में नहीं लिखा है। पिट २२ वर्ष की अवस्था में इङ्गलैण्ड का 'Prime Minister' (प्रधान सचिव) हो गया था। वृद्धों को चाहिए कि सांसारिक सुखों का ख़्याल छोड़ दें। आख़िर, किसके लिए इतना तूल करना, जब अन्तिम दिन दूर नहीं? उन्हें पता नहीं कि यह मोह ही सब दुःखों की खानि है? अपने परदादा भगवान कृष्ण की बातें क्या वे भूल गए? क्या इस बाह्य शरीर का कुछ भी मूल्य अथवा अस्तित्व उन्होंने बताया है? हम भाई, भगिनी, मित्र तो इसलिए हैं कि साथ रहते हैं, अन्यथा और कोई सम्बन्ध थोड़े ही है, सिवाय इसके कि सब मनुष्य हैं और उस एक प्रभु की सन्तान हैं। चिरस्थायी तो आत्मा है। उसी को उन्नत करना मानव-जीवन का उद्देश्य है। और उसका उत्थान सुकार्यों से ही होता है, न कि विवाह करके क्लर्क बन जाने और शान्तिमय जीवन बिताने से, चाहे पड़ोस में ही किसी बेचारे पर विपत्ति पड़ी हो।

हम विवाह का विरोध नहीं करते। भारतीय समाज, जिसका आचरण हद से ज़्यादा बिगड़ चुका है, इसके

बिना उच्छृङ्खल हो जाएगा। हमारा तो युवक भाइयों से यह कहना है कि वे अध्यवसाय करें। अर्थात् कुछ वर्ष तक यह अभ्यास करें कि वे अपने मन में बिना दुर्विचार लाए रह सकते हैं या नहीं? यदि नहीं रह सकते, तो उन्हें विवाह कर लेना होगा और यदि रह सकते हैं तो विवाह की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यह कार्य दो-चार दिन या महीनों का नहीं, वर्षों का है। इसका एक बड़ा बढ़िया तरीक़ा यह है कि हम अपना एक जीवन-लक्ष्य बना लें और उसमें इतने लीन हो जायँ कि बुरी भावनाओं को मन में स्थान ही न मिले।

हम अपने ऐसे मिलने वालों को जानते हैं, जो आठों याम स्त्रियों की ही चर्चा किया करते हैं। अनेकों का तो उनसे अनुचित सम्बन्ध भी है। इसका कारण आजकल की हीन सामाजिक अवस्था है। प्राचीन समय में ६ वर्ष का बालक गुरुकुल में भेज दिया जाता था और वहाँ उसे स्त्री की सूरत भी २५ वर्ष पर्यन्त देखने को नहीं मिलती थी; पढ़ाई भी आजकल से भिन्न थी। वे माँ-बाप के नहीं, राष्ट्र की सम्पत्ति समझे जाते थे। यदि धर्मार्थ उन्हें बलि-वेदी पर चढ़ना पड़ता, तो माँ-बाप को यह अधिकार नहीं था कि उन्हें रोकें, प्रत्युत वे उन्हें प्रोत्साहित करते थे। क्या आजकल के माता-पिता इतना साहस कर सकते हैं?

एक दूसरी आवश्यकता, जिसे भारत में कम लोगों ने समझा है, नवयुवकों में आत्मबल अथवा आत्म-निर्भरता की आदत है। बड़ी लज्जा का विषय है कि हमारे छात्र कॉलेज में आते-आते पति तथा प्रायः पिता भी बन जाते हैं, और फिर भी डटे रहते हैं अपने लड़के के बाबा के सर पर। कितनी लज्जा तथा अपमान की बात है! दोनों साथ-साथ कभी न होना चाहिए। क़ुसूर हमारे माँ-बापों का भी है, क्योंकि वे बड़े होने पर भी अपने लाड़लों को 'पालने का बालक' ही समझते रहते हैं। यदि पहले आधुनिक शिक्षा, तो दूसरे इनका यह व्यवहार भी उन्नति के मार्ग का काँटा बनने का कम उत्तरदायी नहीं है। प्राचीन भारत में कैसी अच्छी प्रथा थी! समृद्धिशाली देश अमेरिका में भी आज यही होता है। लड़के, चाहे वे अमीर हों चाहे साधारण, बहुधा घर से अलग हो जाते हैं और उन्हें निज निर्वाहार्थ स्वयं धनोपार्जन करना पड़ता है, और पढ़ना भी। कोई रसोइया बनता है, कोई चपरासी, कोई कहार। क्या इस प्रकार पढ़े हुए लड़के उद्योगहीन हो सकते हैं? किन्तु आदि-गुरु भारत अभी सोता है, प्रभात की सूर्य-किरणें उसे जगाती नहीं, मानो थपकी दे रही हैं—हाय!!

उपर्युक्त लक्ष्य ये हो सकते हैं। आजकल हमारी भारत-माँ बेड़ियों में जकड़ी है, समाज पाताल की ओर अग्रसर है, धर्म का गला घुट रहा है और साहित्य में जान नहीं। क्या ये स्पष्ट कुछ काम हमारे करने योग्य नहीं हैं? लड़के कह देते हैं कि देश-सेवा हमारा कर्तव्य नहीं। तो क्या उनके गृहस्थ माँ-बाप या अन्य बूढ़े इसके उपयुक्त हैं? नहीं, यह हमारा ही काम है। हम इस बारे में अधिक न कहेंगे। आजकल तो बच्चा-बच्चा तद्विषयक स्वकर्तव्य समझता है, फिर चाहे उसका प्रकार कोई भी हो।

समाज से हमें घोर युद्ध ठानना है। अनेक विद्वानों का तो विचार है कि भारत की राजनीतिक अवस्था सुधारने से पहिले उसकी सामाजिक दशा पर ध्यान देना अधिक आवश्यक है। हमारा बूढ़ा समाज वर्तमान वातावरण की उपेक्षा करता हुआ रूढ़ियों का उपासक हो रहा है। उसे समय के साथ करवट लेना नहीं आता। परन्तु समय का चक्र उसे पीस डालेगा। आवश्यकता है, क्रान्ति की। हमें बता देना है कि हमारा उत्तरदायित्व हमारे ही ऊपर है। हम समाज से डरें ही क्यों, जब वह स्वयं मुर्दा हो रहा है और अपनी शक्ति खो चुका है? डरें वे, जो बुज़ुर्ग हैं, और जिन पर उसका आतङ्क अभी तक छाया हुआ है। काफ़ी दिनों तक वह 'गुड़ियों का विवाह' कर चुका, और काफ़ी विधवाओं को सता चुका। उसे विधवाओं को अधिकार-च्युत कर विधुरों को सैकड़ों विवाहों की आज्ञा देते लज्जा न आई! उसने एक दीवार खड़ी की है, जिसके दूसरी ओर कुछ दीनजनों को अछूत कह कर निकाल दिया है। निर्वासित न इस ओर के कुओं का पानी पी सकते हैं, न यहाँ के मन्दिरों में पूजा कर सकते हैं और न उसे (समाज को) छू ही सकते हैं। यह घोर अन्याय नहीं तो क्या है? इन्हीं कुकर्मों के कारण हमारा समाज आज तक अपनी पतितावस्था से

नहीं उठ सका है। मनुष्य मनुष्य से घृणा करे, यह न जाने किस नीच पापी मनुष्य के मस्तिष्क का आविष्कार है? घृणा मनुष्य से नहीं, उसके दुर्गुणों से की जाती है, और उन दुर्गुणों के दूर करने का उपाय उनका मानसिक सुधार है। परन्तु यहाँ तो समाज के ठेकेदारों ने उनसे सब सम्बन्ध ही तर्क करा दिए। उन ठेकेदारों पर लानत! उनका नाश हो!!

नवयुवको! समाज हमीं लोगों के योग से बना है। हम ही यदि अच्छे हों तो समाज का काया-पलट कर सकते हैं। हमने आपस में तो भेद-भाव कुछ उठाया है। अपने छात्रालयों में प्रत्येक हिन्दू के साथ खा लेते हैं, और यवनों का छुआ भी खाते-पीते हैं। परन्तु लुक-छिप कर। अब हमें सरे-मैदान आना पड़ेगा। कह देंगे कि जिसे हम सहेतुक (Reasonable) समझते हैं, वह अवश्य करेंगे। यह क्रिया-क्षेत्र हमारा इतना विस्तृत हो कि अछूत उससे बाहर न रह जायँ। उनकी समस्या बड़ी बेढब है। हिन्दू-जाति याद रक्खेगी, यदि उन्हें उसने अपने में से निकाल दिया तो उसका सर्वनाश सरल एवं समीप हो जाएगा। मिलन से हमारा मतलब सहभोज से ही नहीं है। खाना-पीना तो छोटी सी बात है। वास्तव में हृदय मिलने चाहिए। हम अछूतों से इतनी सहानुभूति रखने लगें कि यदि वे हमारे धर्म में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दें, तो हम स्वयं भङ्गी और चमार बन जायँ। हमें उनसे इतना प्रेम हो जाय। कह दें संसार से कि उन्नत होंगे तो हम भी उन्हीं के साथ होंगे, नहीं तो उन्हीं में मिल कर रहेंगे। इङ्गलैण्ड के रहने वाले रस्किन (Ruskin) को निर्धनों से इतनी समवेदना थी कि उसने अपना तमाम धन उन्हीं में बाँट दिया, और स्वयं सड़क पर झाड़ लगाने लगा। ये बातें हम साम्यवाद से भली-भाँति सीख सकते हैं।

आजकल धर्म तथा भगवान पर बड़ा झगड़ा हो रहा है। एक पक्ष उन्हें मृत्यु-शय्या पर लिटाता है और दूसरा उनका सर्वव्यापी अस्तित्व प्रमाणित करता है। यह झगड़े वास्तव में कभी तय न होंगे। पर यदि उनका अस्तित्व मान भी लिया जाए तो भी हमारी सहानुभूति प्रथम पक्ष की ओर जाती है; क्योंकि वे कर्त्तव्य पर आरूढ़ तो हैं, दूसरे की भाँति उन्हीं के नाम पर अत्याचार तो नहीं करते। पक्षों के दृष्टान्त के लिए हम रूसी तथा भारतीय हिन्दू-समाज को ले सकते हैं। ईश्वर की कभी यह इच्छा नहीं कि पङ्गु बन कर दिन-रात माला ही जपा जाय। जो अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को नहीं पहिचानते वे यथार्थ में ईश्वर से बहुत दूर हैं। हम ज़ालिम हाकिम को सम्मानहीन ग़ुलाम से धार्मिक समझते हैं। हमारे यहाँ स्वाभिमान-शून्यता को क्षमा, और कायरता को अहिंसा समझा जाता है। हम इसके प्रतिकूल हैं। हमारे विचार में प्रत्येक मनुष्य को अपनी सीमित शक्ति के द्वारा अधिकारों की प्राप्ति और रक्षा करनी चाहिए। और कुछ नहीं तो उसके लिए प्राण तो हम अपने दे ही सकते हैं। कारलाइल (Carlyle) ने 'Dignity of Labour' नामक निबन्ध में कैसी सुन्दरता तथा सतर्कता से कार्य के पावन महत्त्व तथा उसकी अलौकिकता का वर्णन किया है। वास्तव में उस प्रकार का वास्तविक मत भी हमारे आस्तिक अन्धविश्वास एवं कूपमण्डूकता से कहीं अच्छा है। धर्म के यथार्थ अर्थ कर्त्तव्य के हैं। यदि हम सच बोलते हैं, सच्चरित्रता से रहते हैं, प्रेम, दया, सौजन्य, सहानुभूति, सहनशीलता आदि को व्यवहार में लाते हैं और अन्य उचित कार्य करते हैं, जिनमें दूसरों को हानि नहीं होती, तो हमें समझना चाहिए कि हम ईश्वराज्ञा की अवज्ञा नहीं करते।

हमारा स्वाभाविक धर्म 'मानव-धर्म' है। हम सब आदमी होने के नाते भाई-भाई हैं, चाहे हिन्दू हों, ईसाई हों, मुसलमान, पारसी, जैन या सिक्ख हों। किसी एक को दूसरे से घृणा का अधिकार नहीं। इसी कारण हमारा यही धर्म नहीं कि उक्त सदाचारों का व्यवहार करें, वरन् यह भी है कि उन्हें दूसरों द्वारा कराएँ भी। इसी को त्याग कहते हैं, जो मानव-कर्त्तव्य का अन्तिम सोपान है।

साहित्य के विषय में राष्ट्र-भाषा का अन्वेषण मुझे यहाँ नहीं करना। किसी एक का नाम ले देने से निबन्ध का विस्तार सङ्कुचित हो जायगा। किन्तु जो सर्व-सम्मति द्वारा पक्षपातहीनतापूर्वक सिद्ध हो वह सबको माननीय होना चाहिए। रहीं प्रान्तिक भाषाएँ। वे जैसी की तैसी रह सकती हैं और उनमें तथा राष्ट्र-भाषा में पृथक्-पृथक् साहित्य-निर्माण हो सकता है। प्रश्न है, साहित्य के प्रकार का। मेरे विचार में साहित्याचार्य बाबू श्याम-

सुन्दरदास जी के शब्दों में हमें 'ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो मनोवेगों का परिष्कार करने वाला, सञ्जीवनी शक्ति का सञ्चार करने वाला, चरित्र को सुन्दर साँचे में ढालने वाला, तथा बुद्धि को तीव्रता प्रदान करने वाला हो।' बहुत से लोग साहित्यिक शक्ति को कुछ समझते ही नहीं। पर यदि वे फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति और इटली के पुनरुत्थान की ओर ध्यान दें, तो उन्हें विदित होगा कि उनके मूल में रूसो एवं वाल्टेयर और मेज़िनी का साहित्यिक आन्दोलन ही था। हमारे देश में रसिक सज्जन काफ़ी जन्म लेते हैं, जिससे उन्हें श्रृङ्गार-रस ही अधिकतया भाता है। वास्तव में वे हमारे सामाजिक देह के रोग हैं। यदि वे सेवा, त्याग तथा साहस का राग छेड़ते, तो अधिक शोभा देता।

मनुष्य का कर्तव्य समय के साथ-साथ बदलता रहता है। शान्ति के समय यदि मनुष्य की दृष्टि कलाओं की ओर जाती है, तो अस्थिर परिस्थिति में अपनी रक्षा के साधन जुटाना उसका कर्तव्य हो जाता है। जिस प्रकार परिस्थिति ने राणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह और छत्रपति शिवाजी से नवीनता की उत्पत्ति करा ली, उसी प्रकार सदैव वह कठिन समयों में समाज से एक नवीन युक्ति (Scheme) की आशा रखती है। और उसी के साथ नवयुवकों का भी कर्तव्य होता है। हमें ये सब बातें समझना, सोचना, ध्यान में धरना और परिवर्तन को अपनाना चाहिए। वह मनुष्य यथार्थ में मृतक के समान है, जिसके ध्यान में कोई ध्येय नहीं, और जो सफलता के पथ पर अग्रसर नहीं होता, क्योंकि उन्नति मनुष्य का स्वभाव-सिद्ध लक्षण है।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कर्त्तव्य का कभी टोटा नहीं होता। शोक! बहुत से लोगों की समझ में ही नहीं आता कि क्या करें। वास्तव में कर्तव्य कठिन समयों में और भी बढ़ जाता है। बुद्धिमत्ता कार्य को ढूँढ़ निकालने में है। यह भी नहीं भूलना होगा कि जिस प्रकार मानव-प्रकृति में भिन्नता होती है, वैसे ही कर्तव्य भी पृथक्-पृथक् होते हैं। कदाचित् मनुष्य-प्रकृति की भिन्नता के लाभ का इससे अच्छा उदाहरण और कहीं न मिलेगा।

एक बात और—परिस्थिति और साधनों के विषय में शिकायत करना बड़ी भारी भूल है। परिस्थिति कैसी भी हो, उसके अनुकूल कार्य छाँट लिया जा सकता है। हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहना अक़्लमन्दी नहीं। अक़्लमन्दी है, प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति से लाभ उठाने में, उससे काम निकालने और उसे अपने लिए उपयोगी बना लेने में। आज के वैज्ञानिक आविष्कार न होते हुए भी सहस्रों वर्ष पूर्व समुद्र पार किए जाते थे। इसी प्रकार भाग्य भी कोई चीज़ नहीं। यदि है भी तो वह मनुष्य के उत्थान-पतन के साथ परिवर्तित होता रहता है। उसके बदलने की मनुष्य में पूरी शक्ति है। आपको बचपन से ही एक कोठरी में बन्द कर दिया जाय, तो आपके भाग्य में गूँगा होना बदा है, और यदि आपको उच्च शिक्षा दी जाय तो आपका विद्वान हो जाना भी आपके भाग्य के बाहर नहीं।

हाँ, तो लक्ष्य-निर्धारण ही उन्नति के शिखर की पहली सीढ़ी है। लक्ष्यहीन पुरुष उद्भ्रान्त पथिक के समान होता है। और युवा अवस्था ही उद्देश्य के स्थिर करने का सबसे उपयुक्त अवसर है। अतएव हमारा कर्तव्य चरित्र एवं शरीर को बनाते हुए उपर्युक्त कार्यों में से दो या एक को, अपनी रुचि के अनुसार छाँट कर, योग्यता सम्पादित करने में है। रुचि की सलाह लेने से आसानी होती है। दूसरे परिस्थिति का भी कुछ ध्यान रखना साधारणतया बुरा नहीं, क्योंकि कार्य उसके अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों हो सकता है। परन्तु उससे अनजान बन बैठा रहना सेवा एवं कर्तव्य के प्रति अन्याय होगा। कितने हैं, जो नित्य कर्मों के साथ-साथ कुछ सदाचारों का भी अभ्यास किया करते हैं? कितने हैं, जो अपनी पाठ्य पुस्तकों या श्रृङ्गारपूर्ण उपन्यासों के अतिरिक्त संसार के उज्ज्वल जीवन-चरित्रों के भी पढ़ने का कष्ट उठाते हैं? कितने हैं, जिन्होंने देश-धर्म के ऊपर गम्भीर विचार करते हुए अपने कुछ मिनट खोए हैं? कितने हैं, जिन्होंने भारतीय किसान या मज़दूर से यहाँ के फक्कड़ रईसों का मुक़ाबिला किया है? कहाँ तक गिनाया जाय? सहृदय पुरुष के रोंगटे खड़े हो जाएँगे। हम नेताओं के इतनी पुकार करने पर भी शराब और विदेशी वस्तु बहिष्कार नहीं कर सकते। हम एक गाँव वाले को दोनों समय चना खाते देख कर भी नहीं पसीजते, बल्कि उसके भाग्य को दोष दे सिनेमादि

(शेष मैटर ३९५वें पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

[गताङ्क से आगे]

आर्थिक कठिनता और मिस्टर सुस्टर

राज्य की बागडोर हाथ में लेते ही द्वितीय पार्लामेण्ट को पता चला कि राज्य-कोष ख़ाली है। शासन-सञ्चालन के लिए अर्थ-सचिव ने यूरोप और फ़ारस के सेठों से ऋण लिए, जो रूस और इङ्गलिस्तान को नहीं रुचा। वे चाहते थे कि उनकी सरकार से धन उधार लिया जावे और शासन में उनका हस्तक्षेप स्वीकार किया जावे। इसको अर्थ-सचिव सानिउद्दौला ने नहीं माना। इसलिए दो रूसियों ने मिल कर उसको गोली से मार दिया। इन हत्यारों को रूसी सरकार ने कोई दण्ड नहीं दिया। फ़ारस की पार्लामेण्ट अब तो इन दोनों देशों को भली-भाँति समझ गई, इसलिए उसने अमेरिकन अर्थशास्त्री श्रीयुत सुस्टर को अर्थ-सचिव नियत किया और उसको आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए कर आदि लगाने में पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी। जब उसने बजट पूरा करने को एक कर लगाया तो रूसियों ने इसका विरोध किया और लोगों को सहायता के वचन दे-देकर भड़काया कि कर देने से इन्कार कर दें। इसका मिस्टर सुस्टर ने विरोध किया और जो लोग रूसियों की शरण में थे, उनसे कर वसूल करने को उसने सशस्त्र सैनिक भेजे। इस आचरण से चिढ़ कर रूसियों ने पार्लामेण्ट को आदेश किया कि मिस्टर सुस्टर को पदच्युत किया जावे। इस आदेश पर विचार करने के लिए पार्लामेण्ट की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। उसमें रूसी आदेश का विरोध किया गया और ईरानी स्त्रियों ने भी इस विरोध-आन्दोलन में भाग लिया। आख़िर रूस ने अपने सेना-बल से इस विरोधी पार्लामेण्ट का अन्त कर दिया और अपने अनुकूल एक शासक-मण्डल की स्थापना कर दी। तबरेज़, रश्त और ऐन्ज़ली आदि कई नगरों में राष्ट्रीय देशभक्तों का रूसियों ने क़त्ले-आम किया। इस प्रकार दूसरी पार्लामेण्ट का अन्त हुआ। इससे पूर्व रूसियों ने निर्वासित शाह को सहायता देकर पुनः सिंहासन पर बैठाना चाहा था, परन्तु उनको सफलता नहीं मिली।

इसके बाद फ़ारस में रूस और इङ्गलैण्ड की तूती बोलने लगी। सारा प्रबन्ध इन्होंने अपने हाथ में ले लिया और नितान्त निरङ्कुश शासन ही नहीं, परन्तु रक्त-शोषक व्यापार-नीति भी ख़ूब चलने लगी। बालक शाह अहमद उनकी संरक्षता में पलता रहा। जब वह युवा हुआ तो उसके राज्याभिषेक के लिए जुलाई सन् १९१४ में एक पार्लामेण्ट बुलाई गई। इसके दो मास बाद ही यूरोप में भीषण रणचण्डी का नाच होने लगा।

अफ़ग़ानिस्तान

अन्य मुस्लिम देशों की भाँति अफ़ग़ानिस्तान से यूरोप का सम्पर्क अधिक नहीं रहा, इसलिए उनके समान वहाँ राष्ट्रीय भावों की जाग्रति भी नहीं हुई। १९वीं शताब्दी अफ़ग़ानिस्तान के लिए अन्धकार-काल था। एक तरफ़ अङ्गरेज़ और दूसरी तरफ़ रूसी लोग इसको दबाए हुए थे। उसकी आन्तरिक अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय थी। लूट-मार, रक्तपात और विप्लव रोज़ की घटनाएँ थीं। बात की बात में एक अमीर का क़त्ल हो जाता था या सिंहासन-च्युत कर दिया जाता था और उसके स्थान पर दूसरा बिठा दिया जाता था।

वहाँ न निश्चित शासन-व्यवस्था थी और न जनता का जान-माल सुरक्षित था। अमीर के मन में जो आता या मुल्ला लोग जैसा उसको सुझा देते, वही वहाँ का क़ानून था। जनता को सिवाय लूट-खसोट करने के और किसी बात की चिन्ता न थी। यही कारण था कि अफ़ग़ानिस्तान को एक तरफ़ से अङ्गरेज़ों ने और दूसरी तरफ़ से रूस ने दबोच रक्खा था। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अङ्गरेज़ सरकार उसको अपने अधीन समझती थी और किसी विदेशी सरकार के साथ सन्धि या विग्रह न करने देती थी। १६०५ में अफ़ग़ान अमीर को अपने देश का बादशाह तो मान लिया गया था, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में फिर भी वह अङ्गरेज़ों के अधीन ही बना रहा। तत्कालीन अमीर हबीबुल्ला ने अपने शासन-काल में अफ़ग़ानिस्तान को उन्नत बनाने के लिए कई सुधार किए। रेल, तार, सड़कें, शफ़ाख़ाने, पाठशालाएँ आदि जारी किए और व्यापार के लिए कई सुविधाएँ कीं। परन्तु १६१४ तक अफ़ग़ानिस्तान में राष्ट्रीय जाग्रति के कोई चिह्न नहीं दिखाई देते थे। जमालुद्दीन अफ़ग़ानी के प्रचार से अफ़ग़ान लोग मुस्लिम-सङ्गठन का महत्व अवश्य समझने लग गए थे और कुछ समझदार अफ़ग़ान यूरोपीय लोगों की आक्रमणात्मक नीति के कारण उनसे घृणा भी करने लग गए थे। सन् १६११-१२ में जब इटली ने त्रिपोली पर और बालकन रियासतों ने तुर्की पर आक्रमण किया तो अफ़ग़ान जनता के उस अंश में, जो वाह्य संसार की गति से परिचित था, रोष की लहर उमड़ आई थी और उसने कई प्रकार से अपने सहधर्मियों के साथ उनके सङ्कट में सहानुभूति प्रकट की थी। परन्तु यह सब चिह्न मुस्लिम-सङ्गठन के स्वरूप थे, इनमें कभी राष्ट्रीयता नहीं आई थी।

मुसलमान और कॉङ्ग्रेस

इस दृष्टि से भारतीय मुसलमानों की अवस्था अच्छी नहीं थी। शिक्षा और संस्कृति में ये अफ़ग़ानों से अवश्य अधिक उन्नत थे, पर उनमें अभी राष्ट्रीयता का उदय नहीं हुआ था। भारतवर्ष में लगभग १८७० से ही राष्ट्रीयता की जाग्रति होने लगी थी। प्रान्तिक भाषाओं की उन्नति, राष्ट्रीय साहित्य की वृद्धि, आर्य-समाज तथा ब्रह्म-समाज का प्रचार, समाज-सुधार आदि सब राष्ट्रीय जाग्रति के स्वरूप थे, लेकिन यह आन्दोलन प्रायः हिन्दुओं का ही कार्य था। १८ दिसम्बर, सन् १८८५ में राष्ट्रीय सभा की स्थापना हुई और बम्बई में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। इसमें मिस्टर ए० ओ० ह्यूम सम्मिलित थे और उन्होंने सभापति-निर्वाचन का प्रस्ताव किया था। परन्तु प्रतिनिधि या दर्शक की हैसियत से उस जलसे में मुसलमान एक भी नहीं था। तृतीय कॉङ्ग्रेस के सभापति श्री० बदरुद्दीन तय्यब जी थे और मौलवी हामिदअली आदि कुछ मुसलमान भी सम्मिलित हुए थे, लेकिन ऐसे मुसलमान उस समय केवल इने-गिने थे, जो भारतवर्ष को अपनी मातृभूमि मानते हों और हिन्दू-मुसलमान दोनों को राष्ट्रीय सूत्र में बाँधना अपना ध्येय समझते हों। सन् १८८६ की कॉङ्ग्रेस में मौलवी मोहम्मद हिदायतरसूल ने अपने भाषण में स्वीकार किया था कि अलीगढ़ पार्टी के मुसलमान कॉङ्ग्रेस के विरुद्ध हैं। परन्तु उसी समय शेख़ रज़ाहुसेन ख़ाँ ने कहा कि कॉङ्ग्रेस के विरोधी मुसलमान नहीं, परन्तु हमारे शासकगण हैं। सन् १६०३ में कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के सभापति नवाब सैयद मोहम्मद साहब बहादुर थे, जिन्होंने अपने भाषण में कहा था कि "हिन्दू-मुसलमान दोनों के स्वार्थ एक हैं, दोनों के दुख-सुख एक हैं, और दोनों का देश एक है, इसलिए दोनों को मिल कर देशहित के लिए कार्य करना चाहिए।" सन् १६०४ से पहिले

(३६३वें पृष्ठ का शेषांश)

देखने चले जाते हैं। आलस्य की गोद में पड़े हुए हमें, चार बजे सुबह नङ्गे पैर, नङ्गे बदन कार्यरत भङ्गी का सड़क पर झाड़ लगाना बुरा लगता है, क्योंकि हमें तो नौ बजे चाय और बिस्कुट आने पर उठना है। उफ़! इससे अधिक हृदय-विदारक दृश्य देखने वाले को नहीं मिल सकता। परन्तु यह कब तक होगा? रोम राज्य और ज़ारशाही शासन भी तो तबाह हो गए। अवश्य समय बदलेगा और उसे बदलना पड़ेगा। आओ, एक बार एकाग्रचित्त तथा दृढ़ निश्चय हो हम अपने काम में संलग्न हो जायँ और उससे तब तक अलग न हों, जब तक हमारे शरीर में स्पन्दन-शक्ति रहे।

❀ ❀ ❀

मौलवी मोहम्मद हाफ़िज़, अली मोहम्मद भीमजी, नवाब शमशुद्दौला, नवाब ग़ुलाम मोहम्मद, मौलवी मोहर्रमअली चिश्ती आदि मुसलमान सज्जन समय-समय पर कॉङ्ग्रेस में जाया करते थे और कभी-कभी भाषण भी दिया करते थे। सन् १९०४ की कॉङ्ग्रेस में बम्बई, मद्रास तथा बङ्गाल से एक-एक मुसलमान प्रतिनिधि भी आए थे, परन्तु ये लोग प्रायः हिन्दुओं के विशेष आग्रह से केवल उनको प्रसन्न करने के लिए और कभी-कभी किसी नेता के साथ विशेष घनिष्टता के कारण सम्मिलित होते थे। इन लोगों को रेल-किराया और दूसरा ख़र्चा भी प्रायः हिन्दू देशभक्त ही दिया करते थे। वास्तव में मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से कोई प्रेम नहीं था, बल्कि वे इसके विरोधी थे। उनके विरोधी होने के दो कारण थे—(१) आर्य-सभ्यता की पुनर्जाग्रति और (२) मुस्लिम सङ्गठन।

हिन्दू-जाग्रति

१९वीं शताब्दी की भारतीय राष्ट्रीयता हिन्दू-राष्ट्रीयता थी। आर्य-समाज खुल्लमखुल्ला कहता था कि वैदिक धर्म संसार में सर्वोच्च धर्म है। संस्कृत सर्वोत्तम भाषा है और आर्य-सभ्यता सर्वोत्तम सभ्यता है। इस संस्था के संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती वैदिक सभ्यता को पुनर्जीवित करके भारत का उद्धार करना चाहते थे। इतना ही नहीं, वे वैदिक धर्म का प्रचार देशदेशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में करना चाहते थे। आर्य-समाज के प्रारम्भिक जोश के ज़माने में आर्य भजनीक गली-गली में गाते फिरते थे कि "आएगे ख़त अरब से जिनमें लिखा यह होगा; गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।" इसी समय बँगला साहित्य की वृद्धि और संस्कृति होने लगी थी। बङ्किम बाबू आदि अनेक लेखकों ने अपने ग्रन्थों द्वारा देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की जाग्रति की थी। पर उनके लेखों में भारतवर्ष हिन्दुओं का था। बङ्किम बाबू के अमर अद्भुत उपन्यास आनन्दमठ में भारतवर्ष को एक देवी माना है और उसके पुत्र उसके सामने उपस्थित होकर उसका उद्धार करने का प्रण करते हैं। वे लोग देवी के सामने वन्देमातरम् का गान गाते हैं, जो हमारा राष्ट्रीय सङ्गीत बन गया है। उसी समय हिन्दी-साहित्य की वृद्धि हुई और हिन्दी के लेखक दावा करने लगे कि हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है। अनेक उच्च राजनैतिक हिन्दू नेताओं ने इससे सहमति प्रकट की और हिन्दी का प्रचार दक्षिण तक में किया जाने लगा। तत्कालीन हिन्दी-साहित्य में भी राष्ट्रीयता और आर्य-सभ्यता की पुनर्जाग्रति एक ही बात है। भारतवर्ष हिन्दुओं का है और हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान का तराना है। प्रसिद्ध नाटककार बाबू हरिश्चन्द्र ने क्षत्रियों की बहुत प्रशंसा की है। प्राचीन आर्य-सभ्यता के नष्ट होने पर आँसू बहाए हैं और उनके पुनरुद्धार की प्रार्थना की है। कहीं-कहीं उन्होंने "काहे चोटी-कटवा बुलाए जयचन्दवा" आदि लिखे हैं। पञ्जाब में आर्य-समाज की प्रधानता थी ही। वहाँ औरङ्गज़ेब की धर्मान्धता, हक़ीक़तराय की धर्मदृढ़ता आदि विषयों के गानों और 'ख़ुदा बड़ा कि शैतान' आदि पुस्तकों का प्रचार था। दक्षिण में लोकमान्य तिलक और श्रीमहादेव गोविन्द रानाडे दोनों बड़े विद्वान नेता थे। तिलक तो संस्कृत के धुरन्धर विद्वान और गणित-शास्त्र के पारङ्गत पण्डित थे। उनको आर्य-संस्कृति का अभिमान था और उसके गौरव को पुनः स्थापित करने की चिन्ता थी। वे हिन्दुओं के उद्धार में भारत का उद्धार मानते थे। शिवाजी-विजय और गणेश-चतुर्थी, इन उत्सवों को उन्होंने अपने प्रान्त में प्रचलित किया था और इनको वे राष्ट्रीय जाग्रति के साधन मानते थे। उसी समय मराठी, हिन्दी, बँगला आदि भाषाओं में शिवाजी के कई जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए और उनको राष्ट्रीय नेता तथा उद्धारक माना जाने लगा। इसी समय भूषणकृत 'शिवा-बावनी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जो मुसलमानों को कभी पसन्द नहीं आ सकता था।

पण्डित मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, पण्डित अयोध्यानाथ, पण्डित बिशननारायण दर आदि कॉङ्ग्रेस-नेताओं ने कभी कोई बात मुसलमानों के विरुद्ध नहीं की, बल्कि ये सब मुसलमानों की सहयोगिता का प्रयत्न करते रहे और कॉङ्ग्रेस में सम्मिलित होने को प्रति वर्ष निमन्त्रित करते रहे। फिर भी मुसलमान हिन्दू-जाग्रति से डर कर कॉङ्ग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए।

मुस्लिम-सङ्गठन का सन्देश भारतवर्ष के मुसलमानों को १९वीं शताब्दी के मध्य में ही मिल चुका था। मुग़ल साम्राज्य का अधःपतन, मराठों का उत्कर्ष और सन् १८५७ में अङ्गरेज़ों द्वारा अन्तिम विजय, तथा मुस्लिम-सत्ता के निःशेषीकरण से भारतीय मुसलमान निराशा में पड़े हुए थे। मुस्लिम-सङ्गठन के सन्देश से फिर उनमें आशा का सञ्चार हुआ। अपने को वे विस्तृत मुस्लिम-संसार का एक अङ्ग मानने लगे। तुर्की, ईरान, मिस्त्रि, अफ़ग़ानिस्तान ये चार मुस्लिम देश, जो अब तक प्रायः स्वतन्त्र थे, उनके गौरव में अपना गौरव, उनके पतन में अपना पतन समझने लगे। भारतीय विपदाओं का ध्यान छोड़ कर भारत के मुसलमान अन्य मुस्लिम देशों की विपदाओं के निवारण करने की चिन्ता करने लगे। स्वयं अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब मुस्लिम देशों के प्रति इनका अनुराग बढ़ने लगा। वे अपने को विशाल मुस्लिम भ्रातृ-मण्डल में सम्मिलित समझ कर हर्षित होने लगे।

मुसलमानों का भय

अन्य मुस्लिम देशों में इस समय यूरोपीय जातियों के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हो उठी थी, परन्तु भारतीय मुसलमानों में यह बात नहीं थी, वास्तव में उनको भय था कि कहीं जाग्रत हिन्दू-जाति उनको हड़प न जावे। मुसलमान मुग़ल साम्राज्य के ऐश्वर्य का स्मरण करते थे और हिन्दू लोग चित्तौड़ के रक्तपात तथा शम्भाजी के नृशंस वध को। मुसलमानों को अपने अतीत गौरव पर दुःख था और हिन्दुओं को अपनी पुनः जाग्रति के कारण हर्ष। कुछ उग्र और कट्टर हिन्दू तो अङ्गरेज़ और मुसलमान दोनों को समकक्ष समझ कर दोनों को एक ही लाठी से मार भगाना चाहते थे। ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं थी और न इनमें कोई ज़िम्मेदार नेता ही थे। परन्तु ऐसी बातें सुन कर मुसलमान चिन्तित, भयभीत तथा क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकते थे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को इस बात का गर्व था कि कल तक वे भारतवर्ष के शासक थे। १८वीं शताब्दी के मध्य में ही वास्तव में सिक्खों, मराठों और बुन्देलों ने मुसलमान-शक्ति को नष्ट कर डाला था, इसलिए हिन्दुओं का साहस और भी बढ़ रहा था। हिन्दू समझते थे और उनका समझना ठीक था कि उन्होंने अपना देश मुसलमानों से वापस छीन लिया था और विज्ञान-सम्पन्न अङ्गरेज़ों का हस्तक्षेप न होता तो भारतवर्ष पुनः स्वतन्त्र हो गया था। मुसलमानों को इन बातों से और भी चिढ़ होती थी। वे हिन्दुओं को अब भी भीरु रियाया मानते थे और बङ्गाली बाबू तथा संयुक्त प्रान्त के लालाओं को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए हिन्दुओं की जाग्रति और बढ़ती हुई शक्ति से अपनी रक्षा करने के लिए मुसलमान राष्ट्रीयता के बजाय मुस्लिम-सङ्गठन तथा अपने समाज के उद्धार की ओर झुके जाते थे। इतना ही नहीं, वे अपने सङ्गठन को हिन्दुओं की राष्ट्रीयता का उत्तर समझते थे और हिन्दुओं से अपनी रक्षा करने के लिए अङ्गरेज़-सरकार की शरण लेते थे और उसकी प्रशंसा करते थे। १९वीं शताब्दी के अन्त में और २०वीं शताब्दी के आरम्भ में कुछ वर्षों तक मुसलमानों के इस कल्पित सन्देह के कारण भारत में पर्याप्त राजनैतिक उन्नति नहीं हुई। बङ्ग-भङ्ग के समय में मुसलमानों ने साथ नहीं दिया। फाँसी पर लटकने वाले और जेल जाने वाले सब हिन्दू थे। मानो भारत की स्वतन्त्रता में मुसलमानों का कोई गौरव ही न था।

१७वीं और १९वीं शताब्दी

वैसे तो १६वीं शताब्दी से ही भारत से यूरोप का सम्पर्क आरम्भ हो गया था, बल्कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व भी यूरोप भारत से और भारत यूरोप से नितान्त अनभिज्ञ नहीं थे, लेकिन मुसलमानों के इतिहास में उस प्राचीन सम्पर्क की गणना करना आवश्यक नहीं है। १६वीं शताब्दी के आरम्भ में बम्बई से नीचे की ओर पश्चिमी तट पर पोर्तुगालियों ने एक काफ़ी विस्तृत राज्य स्थापित कर दिया था और विजयनगर तथा बहमनी राज्यों में जो उस समय निरन्तर युद्ध हुआ करते थे, उससे वे लोग लाभ उठाया करते थे। विजयनगर का एक सम्पन्न व्यापारी उस समय यूरोप, चीन, जावा, बर्मा आदि देशों से व्यापार करता था और बहमनी राज्यों के मुसलमान सुलतानों के लिए यूरोप से युवतियाँ मँगवाया करता था। सम्राट अकबर

पोर्तुगाली विद्वानों से ईसाई मत के विषय पर प्रायः बातचीत किया करता था और जहाँगीर तो एक पोर्तुगाली के पास पढ़ता भी था। १७वीं शताब्दी के अन्त में सूरत में और अन्यत्र कई जगह अङ्गरेज़ों ने कई कारख़ाने खोल दिए थे और शिवाजी के जहाज़ी बेड़े से उनके जहाज़ी बेड़े ने कई युद्ध भी किए थे। सूरत में कर्मचारी, सैनिक, व्यापारी आदि रूप में अनेक अङ्गरेज़ रहते थे और देश के अन्दर भी कई स्थानों पर फैले हुए थे। १८वीं शताब्दी में अङ्गरेज़ और फ्रान्सीसी दोनों भारतीय रियासतों में हस्तक्षेप करने लगे और मुग़ल-साम्राज्य की जर्जरावस्था देख कर प्रान्तिक नव्वाबों को आपस में लड़ा-लड़ा कर अपना मतलब गाँठने लगे। बहुत से नवाब और हिन्दू-शासक यूरोपीय सैनिक प्रणाली को अधिक उत्तम और यूरोपीय सैनिकों को अधिक उपयोगी समझ कर अपनी सेनाओं में उनको भरती करने लगे। एक जर्मन सिपाही, जो बङ्गाल के नवाब के यहाँ नौकर था, उसने एक मुसलमान महिला से विवाह भी कर लिया था। यह महिला भारत के इतिहास में बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध है। विधवा होने के बाद दिल्ली और भरतपुर आदि के शासकों को इसने सैनिक सहायता दी थी। मेरठ ज़िले के सरधाना नामक स्थान में इसकी क़ब्र बनी हुई है।

यूरोपीय लोगों के सम्पर्क से मुसलमानों ने कुछ नहीं सीखा। उस समय भौगोलिक ज्ञान और सेना-सङ्गठन के सिवाय यूरोप के पास सिखाने को भी कुछ न था। फ्रान्स, स्पेन, इटली, ऑस्ट्रिया, रूस आदि सब छोटे-बड़े यूरोपीय देश उस समय निरङ्कुश शासकों के अधीन थे। इसके अतिरिक्त अभी तक भारत में विदेशी भाषा का अध्ययन भी नहीं होने लगा था। इसलिए भारतीय मुसलमानों को यूरोप की सामाजिक अवस्था, राजनीति और भावनाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं था। साथ ही भारतीय मुसलमानों की दृष्टि में अब तक मुग़ल-साम्राज्य का विपुल और विशाल ऐश्वर्य मँडरा रहा था। वे अपने आपको यूरोपीय लोगों से किसी बात में कम नहीं मानते थे और धार्मिक कट्टरता तो मुसलमानों का सहज गुण है ही। इसलिए मुसलमान लोग यूरोपियन लोगों से कुछ सीखने की परवा भी नहीं करते थे।

१९वीं शताब्दी

१९वीं शताब्दी में स्थिति बिलकुल बदल गई। सन् १८५७ के ग़दर के बाद, जिसमें मुग़ल-सम्राट को अङ्गरेज़ों ने क़ैद करके रङ्गून भेज दिया और उसके दो निर्दोष बच्चों को गोली से मार डाला, मुसलमानों को अनुभव हो गया कि अब अङ्गरेज़ों का राज्य भारत से हिलने का नहीं है। इससे उनमें नैराश्य और दैन्य बढ़ने लगा और अन्त में हार कर वे लोग अङ्गरेज़ों की छत्र-छाया में ही उन्नति करने के स्वप्न देखने लगे। इसी समय हिन्दुओं में अपूर्व जाग्रति होने लगी, जिससे मुसलमान डरने लगे और अपने अस्तित्व के विषय में भी कई प्रकार की चिन्ताएँ करने लगे। उधर तुर्की, मिस्र, ईरान आदि देशों में अनेक लोग यूरोप की आक्रमणात्मक नीति को समझ कर मुस्लिम-सङ्गठन की योजनाएँ कर रहे थे और उत्तर अफ्रीका में सेनूसिया-सङ्घ धर्मोद्धार करने में लग गया था। जमालुद्दीन अफ़-ग़ानी जैसे प्रचारक और अनेक पत्रों के द्वारा भारत में भी यह सङ्गठन-सन्देश आया। मुसलमानों ने इसका हृदय से अभिनन्दन किया। भारत के मुसलमानों में जाग्रति होने लगी और शिक्षा-प्रचार, साहित्य-वृद्धि और उर्दू भाषा के उद्धार के द्वारा वे अपनी क़ौम को सङ्गठित करने लगे।

१९वीं शताब्दी में भारतीय मुसलमानों के सबसे बड़े और योग्य नेता थे, सर सैयद अहमद। इनका जन्म सन् १८१७ में दिल्ली के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इन्होंने उच्च मुस्लिम शिक्षा प्राप्त की थी और बाद में कुछ अङ्गरेज़ी भी पढ़ ली थी। सन् १८५७ के ग़दर में इन्होंने अङ्गरेज़ सरकार का साथ दिया था। इन्होंने मुसलमानों में शिक्षा-प्रचार का कार्य अपने हाथ में लिया और सन् १८६४ में अलीगढ़ में एक समिति की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था पश्चिमीय वैज्ञानिक ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करना। सन् १८७१ में अपने दो योग्य पुत्रों के साथ ये इङ्गलैण्ड गए। इनमें से एक वहाँ क़ानून पढ़ने के लिए रह गया और बड़ा योग्य बैरिस्टर बन कर आया। सर सैयद अहमद पहिले ही यूरोप की वैज्ञानिक उन्नति और विचार-स्वतन्त्रता पर मुग्ध थे। इङ्गलैण्ड का जीवन देखने के बाद तो उनके

विचार और भी दृढ़ हो गए। वे भारतीय मुसलमानों के सङ्कुचित विचार, अल्प ज्ञान, अशिक्षा और अनेक सामाजिक कुरीतियों को और भी दुःख के साथ अनुभव करने लगे। इङ्गलैण्ड से उन्होंने एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था कि इङ्गलैण्ड की नौकरानी भारत की उच्च कुलीन महिला से अधिक सुशिक्षिता होती है।

सर सैयद अहमद

इङ्गलैण्ड से वापस आकर सर सैयद अहमद ने एक पत्र का सम्पादन करना आरम्भ किया। इसके द्वारा वे अपने सहधर्मियों को विदेशी भाषाओं का अध्ययन करने तथा वैज्ञानिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने लगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अलीगढ़ में एङ्गलो ओरियन्टल कॉलेज की स्थापना की, जिसकी व्यवस्था और प्रबन्ध-शैली में उन्होंने कैम्ब्रिज का अनुकरण किया, परन्तु मुस्लिम-धर्म की शिक्षा अनिवार्य रक्खी। सन् १८७२ में कॉलेज का शिलान्यास करवाते हुए सर सैयद अहमद ने तत्कालीन वॉयसरॉय लॉर्ड लिटन से कहा था कि "मेरे जीवन के सिद्धान्त हैं, इङ्गलैण्ड से प्रेम, अङ्गरेज़ी सरकार की भक्ति और मुझे विश्वास है कि इस कॉलेज में इन सिद्धान्तों की शिक्षा मिलती रहेगी और यहाँ के विद्यार्थी अङ्गरेज़ी सरकार से जो लाभ हुए हैं, उनको अनुभव करना सीखेंगे।" सर सैयद अहमद अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्रणाली को अत्युत्तम मानते थे और सन् १८८४ में जब वॉयसरॉय अलीगढ़ कॉलेज देखने गया, तो उन्होंने उसको अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। उसमें कहा था—"अङ्गरेज़ी राज्य से भारत को अनेक लाभ हुए हैं, पर सबसे बड़ा लाभ हुआ है पश्चिमीय प्रणाली द्वारा शिक्षा का प्रचार, जिसके कारण हम लोगों की नैतिक तथा बौद्धिक उन्नति होती जाती है।" इस अटूट राजभक्ति के कारण ही सर सैयद अहमद कॉङ्ग्रेस का विरोध करते थे और उस समय के मुसलमान प्रायः सब उनके साथ थे। वास्तव में उनको भारतवर्ष की उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी मुसलमान जाति की। उनको मुसलमानों के अधःपतन पर बड़ा दुःख होता था और उनका उद्धार करना उनके जीवन का ध्येय था। सर सैयद के उपदेशों के प्रभाव से मुसलमान अङ्गरेज़ी का अधिकाधिक अध्ययन करने लगे थे और सङ्गठित होने लग गए थे। पश्चिम के अभ्युदय को देख कर उनमें अपने अतीत वैभव की स्मृतियाँ जाग्रत होने लगी थीं और अपनी वर्तमान अकर्मण्यता पर वे सन्ताप प्रकट करने लगे थे। इसी समय उर्दू परिमार्जित होने लगी और शृङ्गार-रस के सिवा अन्य उपयोगी विषयों पर काव्य-रचना होने लगी। उस समय के मुख्य कवि मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली का जन्म, पानीपत में, सन् १८३७ में हुआ था। सर सैयद अहमद ख़ाँ से इनकी बहुत घनिष्ठता थी। उस समय के सङ्कुचित हृदय मुसलमान सर सैयद को उनकी सुधार-प्रियता के कारण उनको क़ाफ़िर कहा करते थे। लेकिन मौलाना हाली उनकी सुधार-योजना से पूर्ण सहमत थे। इन्होंने "मद्दोजज़्द इस्लाम" अर्थात् इस्लाम का उत्थान और पतन नामक एक मुसद्दस लिखा था। इसको लिख कर हाली साहब मुस्लिम-जगत में अमर हो गए हैं। उनकी यह कविता उर्दू जानने वालों में बहुत प्रसिद्ध हुई और मुसलमानों के तो गले का हार बन गई। इस समय भी सब शिक्षित मुसलमान हाली के मुसद्दस पर गर्व करते हैं। हाली ने इस मुसद्दस में पैग़म्बर मुहम्मद की शिक्षा का वर्णन किया है और मुसलमानों के अभ्युदय तथा चमत्कारी पराक्रम का सुन्दर चित्र खींचा है। भारत के वर्तमान मुसलमानों की अधोगति का वर्णन करते हुए यहाँ के ग़रीबों की मूर्खता, अमीरों की विलासिता, मौलवियों की कट्टरता और उपदेशकों की स्वार्थ-परायणता आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। आपने लिखा है कि मुसलमानों का जो जातीय बेड़ा सात समुद्रों का सफ़र तै कर आया, वह गङ्गा के दहाने में आकर डूब गया। यहाँ के वायु के एक थपेड़े ने ही उसका काम तमाम कर दिया। ये पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं—

वह दीने हजाज़ी का बेबाक़ बेड़ा।
निशाँ जिसका अक़साए आलम में पहुँचा॥
मज़ाहम हुआ कोई ख़तरा न जिसका।
न अम्माँ में ठिठका न कुलज़म में झिझका॥
किए तै सफ़र जिसने सातों समुन्दर।
वह डूबा दहाने में गङ्गा के आकर॥

हाली की व्यापक पंक्तियों में मुसलमानों के व्यापक विचार का स्फुटीकरण था। इसीलिए वे हिन्दू जाग्रति से डरते थे और राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करते थे और अपनी जाति के उद्धार में लगे हुए थे। फिर भी कोई-कोई मुसलमान अनुभव करने लगे थे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता अच्छी है और इससे देश का कल्याण हो सकता है। स्वयं हाली ने लिखा था:—

> तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर।
> न किसी हमवतन को समझो ग़ैर॥
> हो मुसलमान इसमें या हिन्दू।
> बौद्ध मज़हब हो कि या ब्रह्मो॥
> सबको मीठी निगाह से देखो।
> समझो आँखों की पुतलियाँ सबको॥

सर सैयद अहमद कॉङ्ग्रेस का साथ नहीं देते थे, लेकिन हिन्दू-मुस्लिम एकता वे भी चाहते थे। ऋषि दयानन्द के वे बड़े मित्र थे और उनसे कई बार मिले थे। लेकिन सर सैयद अहमद की हिन्दू-मुस्लिम एकता में राष्ट्रीयता नहीं थी। इसको वे मानव-धर्म समझते थे। प्रगाढ़ राजभक्ति के साथ राष्ट्रीयता आती भी कहाँ से?

अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए और एक प्रकार से कॉङ्ग्रेस का विरोध करने के लिए मुसलमानों ने आग़ा ख़ाँ के नेतृत्व में मुस्लिम-लीग की स्थापना की। लेकिन थोड़े वर्ष बाद ही बुद्धिमान मुसलमान अनुभव करने लगे कि स्वराज्य-प्राप्ति के बिना न जाति का कल्याण हो सकता है, न देश का। इसलिए मुस्लिम-लीग ने अपना ध्येय निश्चित किया वैध उपायों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति। ऐसा करने पर आग़ा ख़ाँ इससे अलग हो गए। यूरोपीय महासमर छिड़ जाने के बाद तक मुस्लिम-लीग में गवर्नर आदि उच्च अधिकारियों को निमन्त्रित किया जाता था और वे कभी-कभी आया भी करते थे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सन् १९१४ के बाद से ही भारतीय मुसलमान अधिकाधिक राष्ट्रीय बनने लगे थे। डॉक्टर सर मोहम्मद इक़बाल का "क़ौमी शिवाला" और "हिन्दोस्ताँ हमारा" ये दो कविताएँ उर्दू-संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और हिन्दोस्ताँ हमारा तो उत्तर भारत में वन्देमातरम् की भाँति राष्ट्रीय गीत हो गया है।

स्वप्न

[श्री० कपिलदेव नारायणसिंह 'सुहृद']

> सन्ध्या के नीरव तम में, तेरा चुपके से आना।
> पीछे की ओर निरख कर, रुकना आँसू बरसाना॥
> अधरों का इषत् हिलाना, आहों का बाहर जाना।
> छविमय उन गोरे-गोरे गालों का मुरझा जाना॥
>
> कितना विषाद छाया था, उस मतवाली चितवन में।
> उन छविवाले फूलों में, तारों में और गगन में॥
> तम के अन्तरतम में भी घनतम ताण्डव करता था।
> नभ की शत-शत आँखों से अविरल आँसू झरता था॥
>
> उद्वेलित उच्छ्वासों से रजनी का नीरव मन था।
> उफ़! उन घड़ियों में कितनी ज्वाला थी उत्पीड़न था॥
> स्वप्नों के टूट रहे थे, वे तार सुनहले प्यारे।
> स्मृतियाँ बेहोश पड़ी थीं, उस सूने क्षितिज किनारे॥

सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार—मिस सविता देवी

आप एक ऐङ्गलो-इण्डियन रमणी हैं; आपका असली नाम मिस आइरिश गैस्पर है।

भविष्य में संसार के प्रधान देश

[श्री० सुमतिप्रसाद जी जैन, एम० ए०, एल-एल्० बी०]

संसार परिवर्तनशील है और यह परिवर्तन राजनीतिक स्थितियों में विशेषतया दिखलाई पड़ता है। प्राचीन काल के साम्राज्य चाहे वे भारतीय हों अथवा यूरोपीय, अब उस स्थिति में, जिसमें वह ईसा से दो हज़ार वर्ष पहिले पाए जाते थे, नहीं मिलते। प्राचीन रोमन साम्राज्य, जो सारे सभ्य संसार में फैला था, अब विलुप्त हो चुका है। इसी तरह एलेक्ज़ैण्डर द्वारा स्थापित महान साम्राज्य का भी पता नहीं। यही हाल अशोक और अकबर के साम्राज्यों का भी हुआ। सन् १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध के बाद ही रूस की ज़ारशाही का भी अन्त हो गया। जर्मन और ऑस्ट्रियन साम्राज्य सदा के लिए इस संसार से उठ गए। प्राचीन तुर्क साम्राज्य (Ottoman Empire) टूट कर उसके स्थान पर केवल टर्की का छोटा सा राज्य रह गया है। इधर एशिया में सन् १९१० ई० के राज्य-विप्लव के बाद, चीन साम्राज्य के स्थान पर चीन का प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हुआ।

जैसे-जैसे पुराने साम्राज्यों का अन्त हुआ, वैसे-वैसे उनके स्थान पर नए-नए साम्राज्यों का जन्म होता गया। पुराने साम्राज्यों का विचार छोड़ कर यहाँ इतना लिख देना ही पर्याप्त होगा कि सन् १८७० ई० से यूरोपीय देशों ने साम्राज्य-विस्तार की दौड़ में भाग लिया और अपने प्रयत्न में सब से अधिक सफल रहा ब्रिटिश साम्राज्य। जहाँ तक हो सका, फ़्रान्स ने भी इस दौड़ में पूरा भाग लिया, परन्तु ब्रिटेन की तरह उसे सफलता न मिल सकी। जर्मनी के महामन्त्री प्रिन्स बिसमार्क की नीति साम्राज्य बनाने की न थी, किन्तु वह भी समय के प्रभाव को न रोक सका और जर्मनी भी "सूर्य में स्थान" (A place in the Sun) प्राप्त करने की चिन्ता में लगा, पर देर से कार्यारम्भ करने के कारण यथोचित सफलता न प्राप्त कर सका। यूरोपीय महायुद्ध का यही एक विशेष कारण भी था। इटली अपनी भीतरी स्थिति के कारण अपना भाग न ले सका। स्पेन और पुर्तगाल साम्राज्य-उत्पादन की शक्ति पहिले ही खो चुके थे। हॉलैण्ड और बेलजियम अपने पुराने पाए हुए भाग से ही सन्तुष्ट रहे। इसलिए उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई प्रयत्न ही नहीं किया। सारे यूरोप के दाँत अफ़्रीका को हड़पने पर लगे थे। परिणाम यह हुआ कि अबसीनिया और लाइबेरिया को छोड़ कर समस्त अफ़्रीकन द्वीप यूरोपीय राज्यों के फन्दे में फँस गए। एशिया में साम्राज्य-निर्माण ने दूसरा रूप धारण किया और यह था, "आर्थिक साम्राज्यवाद।" भिन्न-भिन्न देशों के राजाओं को धन देकर यूरोपीय राज्यों ने उन्हें अपने वश में कर लिया। इस प्रकार के साम्राज्य-निर्माण में संयुक्त राज्य अमेरिका, इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स ने विशेष भाग लिया। फ़ारस के शाह, मिश्र के खदीव और चीन के सम्राट ने खुले हाथों ऋण लिया, जिसका फल यह हुआ कि ऋण-दाताओं का उनके राज्य में हस्तक्षेप बढ़ गया। रूस जैसे ग़रीब देश के ज़ार ने एक अद्भुत बात की; स्वयं ऋणी होने पर भी उसने फ़्रान्स से धन लेकर फ़ारस के शाह को ऋण दिया, जिससे रूस का प्रभाव फ़ारस में क़ायम रहे! साम्राज्यवाद की अद्भुत लीला है। ब्रिटेन ने चीन में नए प्रकार से साम्राज्य की नींव डाली। चीन वालों से कहा गया कि यदि तुम हमसे अफ़ीम न ख़रीदोगे तो हम तुम्हारे देश पर गोलेबारी करेंगे। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक रस्किन ने इस पर एक मार्केदार टिप्पणी करते हुए लिखा है कि यह "अफ़ीम की लड़ाई" इतिहास के समस्त युद्धों से निकृष्ट है। चीन को हड़प जाने के लिए यूरोप की सभी जातियाँ उस पर दाँत लगाए बैठी थीं और अवसर पाते ही फ़्रान्स ने इण्डोचाइना, इङ्गलैण्ड ने हाङ्गकाङ्ग और बर्मा, रूस ने मन्चूरिया का उत्तरी भाग और

जापान ने कोरिया और मन्चूरिया का अधिकांश दबा लिया।

पर, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, समय और स्थिति परिवर्तनशील है। राजनीतिक संसार बहुत दिनों तक एक ही स्थिति में नहीं रह सकते। उन्नीसवीं शताब्दी में जो राज्य यूरोप के प्रधान राज्य थे, वे बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी प्रधानता खो बैठे। यूरोपीय महायुद्ध के बाद इस परिस्थिति में फिर परिवर्तन हुआ और इस बार रूस और जर्मनी पहले की तरह प्रधान राज्य न रहे। वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, जापान और इटली प्रधान और महान राष्ट्र माने जाते हैं। परन्तु कौन कह सकता है कि इनकी स्थिति सदैव ऐसी ही बनी रहेगी। क्योंकि लक्षणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भविष्य में देशों की प्रधानता उनकी जन-संख्या तथा आर्थिक दशा पर निर्भर रहेगी। फलतः इस दृष्टिकोण से देखते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, भारतवर्ष, रूस, फ़्रान्स और जर्मनी ही भविष्य में संसार के प्रधान राष्ट्र होंगे। इसका कारण यह है कि अमेरिका बड़ा उपजाऊ देश है। यहाँ सब प्रकार की वस्तुएँ पैदा होती हैं। यहाँ के अधिवासियों को दूसरे देश वालों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। खाद्य पदार्थ, रूई, तेल, खनिज पदार्थ, मैशीन इत्यादि अधिकता से यहाँ होते हैं। जल-वायु भी अति उत्तम है, जिसमें रह कर मनुष्य परिश्रम से जी नहीं चुराते। यहाँ की जन-संख्या भी दिनोंदिन उन्नति पर है और रहने के लिए स्थान की भी कमी नहीं है। इन सब कारणों को देखते हुए इसमें कोई सन्देह नहीं दिखाई पड़ता कि संयुक्त राज्य भविष्य में भी सब से प्रधान राजनीतिक देश रहेगा। भविष्य के प्रधान राष्ट्रों में दूसरा स्थान चीन को मिलेगा। यद्यपि वर्तमान समय में चीन की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। अभ्यन्तरीन और बाहरी उत्पातों तथा झगड़ों के कारण चीन अत्यन्त शिथिल हो रहा है। चीन के फ़ौजी ऑफ़ीसर राज्य और प्रधानता के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। बाहरी शत्रु इस आपसी लड़ाई में उन अफ़सरों की धन तथा अस्त्र-शस्त्रादि से सहायता करते हैं। इस तरह चीन में आजकल सदा ही गृहयुद्ध छिड़ा रहता है। उधर जापान भी दाँव लगाए हुए है। कोरिया सन् १९१० ई० से जापान के अधीन है। मन्चूरिया में भी उसने बहुत सी रेल-लाइनें बनाई हैं और अपरिमित धन लगाया है और चीन-जापान की वर्तमान लड़ाई का विशेष कारण यह धन ही है। इसी तरह रूस, इङ्गलैण्ड तथा फ़्रान्स भी चीन के सम्बन्ध में अपने दाँव देखते रहते हैं। परन्तु इस स्थिति का बहुत काल तक क़ायम रहना असम्भव है। चीन में राष्ट्रीयता की लहर उत्तरोत्तर बड़े वेग से उठ रही है। चीन राष्ट्र का निर्माण प्रति दिन बड़ी तेज़ी से हो रहा है। इसी राष्ट्रवाद के कारण चीनियों ने जापानी माल का पूर्ण बहिष्कार कर रक्खा है। यहाँ तक कि जापान इस बहिष्कार से घबरा उठा है। इधर चीनी जनरल भी अब पारस्परिक भेद-भाव भूल कर एक-दूसरे से मिल रहे हैं। यही कारण था कि पिछले चीन-जापान युद्ध में चीन को दबाने में जापान को इतनी कठिनाई का सामना करना पड़ा। चीन अब बहुत दिनों तक अवनति की अवस्था में नहीं रह सकता। वह बहुत जल्द संसार के उन्नत राष्ट्रों में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगा। चीन एक विशाल देश है, यहाँ का जल-वायु अच्छा है, पृथ्वी भी काफ़ी उपजाऊ है और चीनी लोग भी बहुत काम करने वाले होते हैं। वे शान्त महासागर के विभिन्न द्वीपों में जाकर मज़दूरी करते हैं। यहाँ भारत में भी हम प्रतिदिन साधारण चीनियों की बुद्धिमत्ता के नमूने देखते हैं। चीनी कारीगरों द्वारा बनाई हुई काग़ज़ की पङ्खियाँ और फूल हर बच्चे के हाथ में पाए जाते हैं। उनकी शिल्प-चातुरी के नमूने, लकड़ी के काम और चीड़ की पचीकारी पर दिखलाई पड़ते हैं। चीन की जन-संख्या भी संसार के समस्त देशों से अधिक है। राजनीतिज्ञों का मत है कि चीन की वर्तमान जन-संख्या प्रायः चालीस करोड़ है। चीनी लोग शीघ्र ही अपने देश की बागडोर अपने हाथ में लेंगे और तब संसार के राष्ट्रों में चीन का स्थान दूसरा होगा।

भारतवर्ष—यहाँ हमें अपने पाठकों को भारतवर्ष के प्राचीन वैभव का दिग्दर्शन नहीं कराना है। क्योंकि इतिहास का प्रत्येक पन्ना उसकी महानता का साक्षी है। और न हमें यहाँ भारतवर्ष की वर्तमान दशा का ही वर्णन करना है। क्योंकि सामयिक समाचार-पत्रों के वाचकों से कुछ छिपा नहीं है। यहाँ हमें केवल भारत-

वर्ष के भविष्य पर विचार करना है। भारत-सरकार की २० अक्टूबर सन् १९१७ की घोषणा के अनुसार भारतवर्ष शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा और पुनः अपनी प्राचीन महानता प्राप्त करेगा। तब हम किसी के मुहताज न रहेंगे। भारतवासी संसार के अन्य देशों के निवासियों से किसी तरह कम न समझे जायँगे। भारतवर्ष का जलवायु विभिन्न प्रकार का होने के कारण यहाँ हर तरह की उपज बड़ी सुगमता से होती है। खनिज पदार्थ भी यहाँ बहुतायत से पैदा होते हैं। यहाँ की बड़ी-बड़ी नदियाँ बिजली की शक्ति का ख़ज़ाना हैं। भारतवर्ष के मनुष्य समझदार और परिश्रमी हैं और बहुत थोड़े में बसर करना जानते हैं। यहाँ की जन-संख्या लगभग पैंतीस करोड़ है; फलतः भारतवर्ष का भविष्य साधारणतया उज्ज्वल है। हमारे कथन का आशय यह है कि भारतवर्ष का स्थान भविष्य के राष्ट्रों में कम से कम तीसरा होगा।

रूस यूरोप और एशिया के उत्तर में फैला हुआ महान देश है। इसका उत्तरी भाग बेहद ठण्ढा है, किन्तु मध्य देश तथा दक्षिणी भाग यथेष्ट उपजाऊ हैं। कई शताब्दियों तक रूस में ज़ारशाही की तूती बोलती रही, किन्तु बीसवीं शताब्दी में वहाँ की जनता इसे और अधिक समय तक न सह सकी। फलतः सन् १९१७ ई० में रूस में राज्य-विप्लव हुआ और पञ्चायती राज्य की स्थापना हो गई। रूस की नई सरकार ने ज़ार की सरकार द्वारा लिए हुए पुराने ऋण को चुकाने से एकदम इन्कार कर दिया। वे देश—विशेषतया इङ्गलैण्ड—जिन्होंने रूस को ऋण दे रक्खा था, हक्के-बक्के रह गए। अब नई सरकार ने देश का पुनर्निर्माण आरम्भ किया है। इस नवीन योजना के प्रथम पाँच वर्ष समाप्त हो चुके हैं और सन् १९३२ ई० से दूसरी पञ्च वार्षिक योजना आरम्भ हुई है। इस योजना के अनुसार रूस की उपज आगामी पाँच वर्षों में वर्तमान उपज से तिगुनी हो जायगी। रूसी लोग बड़े समझदार और परिश्रमी होते हैं। रूस में सब प्रकार की उपज बहुतायत से होती है। इन्हीं कारणों से भविष्य के राष्ट्रों में रूस का स्थान चौथे से नीचे नहीं रहेगा।

अब हमें फ़्रान्स के सम्बन्ध में कुछ कहना है। फ़्रान्स की सभ्यता सारे संसार में प्रसिद्ध है। इस सभ्यता का निर्माण करने में फ़्रान्स को कई शताब्दियाँ बितानी पड़ी हैं। आज भी फ़्रेञ्च साहित्य के कारण यूरोप का मुख उज्ज्वल है। स्वाधीन विचारों में फ़्रान्स सदा आगे रहा है। रूसो के फ़्रान्सीसी ग्रन्थों का अवलोकन करने वाला प्रत्येक मनुष्य उसके सुन्दर विचारों से परिचित है। साधारणतया फ़्रान्स एक बड़ा देश कहा जा सकता है। यहाँ का जलवायु अच्छा है तथा भूमि भी उपजाऊ है। जिससे यहाँ सब प्रकार की उपज होती है। जन-संख्या भी पर्याप्त है। इसलिए विचारशीलों का अनुमान है कि भविष्य के उन्नतिशील राष्ट्रों में फ़्रान्स का स्थान पाँचवाँ रहेगा।

जर्मनी अपनी अद्भुत शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के कारीगर प्रतिदिन की आवश्यकता की वस्तुएँ बड़े सस्ते दामों पर बनाते हैं। भारतवर्ष वहाँ से रङ्ग और सूई आदि सामान बहुतायत से ख़रीदता है। महायुद्ध से पहिले जर्मन-साम्राज्य बहुत शक्तिशाली था। किन्तु उस युद्ध में हार जाने से उसकी शक्ति का ह्रास हो गया। वारसाई की सन्धि के अनुसार जर्मनी को अपने समस्त उपनिवेश विजयी राष्ट्रों को देने पड़े, सेना कम करनी पड़ी और लड़ाई के बड़े जहाज़ छोड़ने पड़े। थोड़े शब्दों में जर्मनी निःशस्त्र कर दिया गया। और साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि युद्ध के दण्ड-स्वरूप जर्मनी विजयी राष्ट्रों को युद्ध-दण्ड के तौर पर एक बहुत बड़ी रक़म कितने ही वर्षों तक देता रहे। जर्मनी का क़ैसर राज्य छोड़ कर भागा और उसके स्थान पर प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना हुई। वर्तमान काल में जर्मनी निःशस्त्र है। परन्तु निःशस्त्र होना भविष्य की उन्नति में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालता। जर्मनी अपनी पुरानी शक्ति फिर से एकत्रित कर रहा है। कोई ऐसा प्रयत्न, जिससे जर्मनी की आर्थिक दशा में उन्नति होने की आशा दीख पड़ती है, नहीं छोड़ा जा रहा है। वहाँ के पुराने कारख़ाने, जो युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तैयार करने के लिए बनाए गए थे, अब फ़ैक्टरी और कार्यालयों में परिणत किए जा रहे हैं। जर्मनी अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। वह यह चाहता है कि उसको वारसाई की सन्धि द्वारा आरोपित ऋण न देना पड़े। सन् १९३१ ई० में उसने यह ऋण नहीं दिया और शायद भविष्य में भी न देगा।

इस प्रकार उऋण होकर अपनी चतुरता से जर्मनी फिर अपनी पुरानी उन्नति पर पहुँचेगा। जर्मन देश बहुत उपजाऊ है, खनिज पदार्थों की तो यहाँ भरमार ही है, जर्मनी की जन-संख्या भी अच्छी है। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए इसमें सन्देह नहीं होता कि जर्मनी उन्नति करके कम से कम छठे स्थान पर पहुँचेगा।

वर्तमान काल के प्रधान राष्ट्रों में इङ्गलैण्ड, जापान और इटली ऐसे हैं, जो भविष्य में शायद अपने स्थान पर न रह सकेंगे। पहले ब्रिटिश साम्राज्य को ही लीजिए। इसकी कट्टरता का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा और उदारता बढ़ रही है। इसके भाग एक के बाद दूसरे अपने स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार प्राप्त कर रहे हैं। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ़्रीका, न्यूज़ीलैण्ड, न्यूफ़ाउण्डलैण्ड, आयर्लैण्ड एक के बाद दूसरा आहिस्ता-आहिस्ता पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते चले जा रहे हैं। यद्यपि ये देश कहने के लिए ब्रिटेन के उपनिवेश हैं, किन्तु यथार्थ में सब स्वतन्त्र हैं। सन् १९३१ ई० में स्टेच्यूट ऑफ़ वैस्टमिनिस्टर (Statute of West Minister) के पार्लामेण्ट में पास होने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश क़ानूनन् भी प्रायः स्वतन्त्र हो गए हैं। इधर मिश्र देश भी स्वतन्त्र होने की चिन्ता में है। यद्यपि उसे एक प्रकार की स्वतन्त्रता मिल चुकी है, परन्तु वह पूर्ण स्वराज्य लिए बिना न मानेगा। ईराक़ को सन् १९३२ ई० में स्वतन्त्र देश बना देने का वचन मिल चुका है। इस प्रकार इङ्गलैण्ड केवल एक छोटा सा द्वीप रह जायगा। यहाँ की ज़मीन भी कुछ विशेष उपजाऊ नहीं है, परन्तु जन-संख्या काफ़ी है। देश के अधिकांश लोग कारख़ानों में काम करके जीविका अर्जन करते हैं। किन्तु भविष्य में जब संसार के समस्त देश अपने-अपने कारख़ाने खोल लेंगे, तब इङ्गलैण्ड के माल की माँग न रहेगी। फल-स्वरूप इङ्गलैण्ड अपनी सारी जनता को भोजन तक न दे सकेगा। इसलिए कुछ अङ्गरेज़ों को अपना देश छोड़ कर व्यवसाय की चिन्ता में, अन्य देशों को जाना पड़ेगा। इस प्रकार इङ्गलैण्ड की वर्तमान प्रधानता नष्ट हो जायगी।

जापान की स्थिति इङ्गलैण्ड से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। वह भी इङ्गलैण्ड की तरह ही एक बहुत छोटा किन्तु शिल्प-प्रधान द्वीप है, जिसकी जन-संख्या उसके खाद्य-पदार्थों की अपेक्षा अब भी अधिक है। जापान अपना माल देकर बदले में खाना ख़रीदता है। किन्तु जब और देश भी शिल्प की प्रतियोगिता में जापान के बराबर हो जायँगे, तब दूसरे देशों में जापान के माल की खपत न हो सकेगी। और जापान अपनी वर्तमान प्रधानता पर स्थिर न रहने पाएगा। चीन के सामने जापान जैसे छोटे देश की कुछ गणना ही न रहेगी। इसी प्रकार इटली भी अपनी वर्तमान अवस्था में न रह सकेगा, उसका भी नीचे आना अनिवार्य है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे बहुत से पाठक शायद सहमत न होंगे। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। राजनीतिक भविष्य जैसे कठिन विषय पर मतभेद होना केवल स्वाभाविक ही नहीं, वरन् आवश्यक भी है। यह बात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सम्बन्ध में इससे भी अधिक लागू है। साधारण ज्योतिष दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक वह जो गणित से सम्बन्ध रखता है और नक्षत्रों की गति-विधि देख कर चन्द्र और सूर्य-ग्रहण का समय बतलाता है। ज्योतिष का यह भाग सर्वथा सत्य है। परन्तु उसका दूसरा भाग, जिससे पोथी देख कर मनुष्यों के भाग्य के निर्णय की चेष्टा की जाती है, इससे बिलकुल भिन्न है। राजनीतिक भविष्यद्वाणी भी इस दूसरी कक्षा में मानी जायगी। यहाँ परिस्थिति देख कर स्वयं अर्थ निकालना होता है और उसके ग़लत होने की उतनी ही सम्भावना है, जितनी कि उसके सही होने की। यही कारण है, जिससे इस लेख में दिए हुए विचारों से मतभेद होना नितान्त अनिवार्य है। फलतः हमें इस बात का दावा नहीं है कि हमने जो कुछ लिखा है, वह सत्य ही होगा।
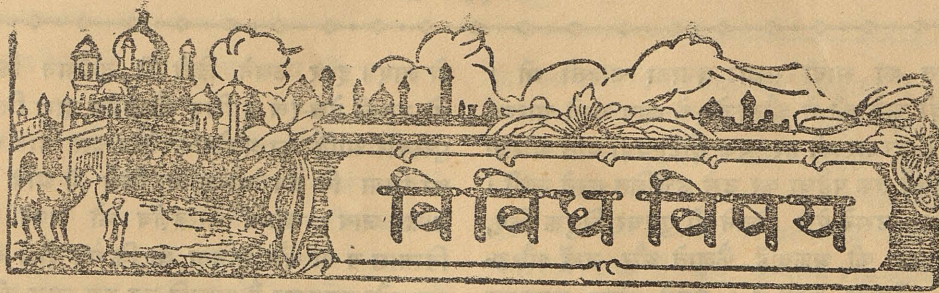
शाहज़ादी रौशनआरा

शाहज़ादी रौशनआरा अपनी विचित्र प्रतिभा और दिलेरी के कारण मुग़ल-वंश के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखती है। यह प्रतिभा-शालिनी रमणी सम्राट शाहजहाँ की कन्या और औरङ्गज़ेब की बहिन थी। सम्राट औरङ्गज़ेब के शासन-काल का इतिहास लिखने वाले कभी रौशनआरा को भूल नहीं सकते। क्योंकि अगर रौशनआरा अपने भाई औरङ्गज़ेब की सहायता न करती तो शायद उसे अपने भाइयों को परास्त करने और अपने वृद्ध पिता को बन्दीगृह में बन्द करने में सफलता भी नहीं प्राप्त होती। सच बात तो यह है कि रौशनआरा की कूटबुद्धि ने ही औरङ्गज़ेब को भारत का सम्राट बनाया था, अन्यथा उस समय के घराऊ झगड़े से परित्राण पाना औरङ्गज़ेब के लिए कठिन था।

शाहज़ादी रौशनआरा अपने माता-पिता की पाँचवीं सन्तान थी और सम्वत १६६४ विक्रमाब्द में बुरहानपुर नामक स्थान में इसका जन्म हुआ था। यह अपने भाई औरङ्गज़ेब से एक साल दो महीने तेरह दिन बड़ी थी। दिल्ली में उन दिनों सैदतुन्निसा नाम की एक विख्यात विदुषी रमणी रहती थी। शाही ख़ान्दान के लड़कों और लड़कियों की शिक्षा का काम इसी के सिपुर्द था। शाहज़ादी रौशनआरा को भी इसीने अरबी और फ़ारसी की शिक्षा दी थी। इसके अतिरिक्त सैदतुन्निसा की मदद से शाहज़ादी रौशनआरा ने यूनानी चिकित्सा-शास्त्र तथा अन्यान्य विषयों का भी अध्ययन किया था। शाहज़ादी रौशनआरा अपने पिता शाहजहाँ की प्यारी पुत्री थी और कहते हैं कि सम्राट तत्कालीन राजनीति और शासन-व्यवस्था में भी उसकी सलाह लिया करता था, इसलिए राजनीति-चर्चा में भी रौशनआरा को ख़ासी दिलचस्पी थी। उसकी चातुरी और प्रतिभा पर मुग्ध होकर शाहजहाँ ने उसे तीन लाख रुपए पुरस्कार-स्वरूप प्रदान किया था और समय-समय पर इनाम-इकराम द्वारा उसकी निजी सम्पत्ति की वृद्धि करता रहा। इसके सिवा एक बार नौरोज़ उत्सव के अवसर पर पचीस लाख की रक़म शाहजहाँ ने रौशन-आरा को दिया था।

जहानआरा रौशनआरा की बहिन थी। उसे रौशन-आरा का सम्राट द्वारा बार-बार पुरस्कृत होना अच्छा नहीं लगता था। इसके सिवा कुछ और भी कारण थे, जिससे दोनों बहिनों में विषम वैमनस्य पैदा हो गया और धीरे-धीरे वह इतना बढ़ा कि दोनों एक-दूसरे की जानी दुश्मन बन गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्राट शाहजहाँ के जीते जी उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए झगड़ा आरम्भ हो गया। रौशनआरा औरङ्ग-ज़ेब को ताज-व-तख़्त का मालिक बनाना चाहती थी और जहानआरा दाराशिकोह को। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दोनों बहिनों ने शाहजहाँ पर दबाव डालना आरम्भ किया। इन दोनों रमणियों के आन्दो-लन के कारण दरबारियों में भी दो दल बन गए थे। यद्यपि शाहजहाँ रौशनआरा को अधिक मानता था और जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, राजकाज में उसकी सलाह भी लिया करता था, परन्तु उत्तराधिकार के सम्बन्ध में उसने जहानआरा का ही पक्ष लिया। क्योंकि जहानआरा ने सम्राट के दिल में यह बात जमा देने में सफलता प्राप्त कर ली थी कि साम्राज्य का उप-युक्त उत्तराधिकारी दाराशिकोह ही हो सकता है; औरङ्गज़ेब में ऐसी योग्यता नहीं है। परन्तु तीक्ष्ण-बुद्धि रौशनआरा दारा को फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहती थी। वह अपनी सारी शक्ति लगा कर औरङ्गज़ेब

को भारत का भावी सम्राट बनाना चाहती थी। उसने बड़ी चालाकी से औरङ्गज़ेब के कान भरने आरम्भ कर दिए। दरबार की हर एक छोटी-बड़ी बात औरङ्गज़ेब के कानों तक पहुँचा कर उसे उत्तेजित करने लगी। इसके सिवा उसने ऐसे कितने ही गुप्तचर नियुक्त किए, जो तरह-तरह की अफ़वाहें फैलाते और उन्हें औरङ्गज़ेब तक पहुँचाया करते थे। इसके सिवा साधारण जनमत को भी उसने औरङ्गज़ेब के पक्ष में करने की बड़ी चेष्टा की। सन् १६५८ ईस्वी में, जब शाहजहाँ मृत्यु-शय्या पर पड़ा तो उसके चारों लड़के—दाराशिकोह, शुजा, मुराद और औरङ्गज़ेब—अलग-अलग सम्राट-पद प्राप्त करने की चेष्टा में लगे। परन्तु अन्त में औरङ्गज़ेब को ही सफलता प्राप्त हुई। शाहज़ादा मुराद को सब्ज़बाग़ दिखा कर उसने अपने वश में कर लिया। भामूगढ़ के मैदान में भाई-भाइयों में भयङ्कर समर आरम्भ हुआ। हज़ारों जानें गईं। दाराशिकोह हार कर दिल्ली की ओर भाग गया। शुजा पहले ही आसाम की ओर भाग चुका था। मुराद औरङ्गज़ेब के क़ैदख़ाने में था। औरङ्गज़ेब ने अपने सम्राट होने की घोषणा कर दी थी। परन्तु दरबारी षड्यन्त्रों का अभी अन्त नहीं हुआ था। सम्राट शाहजहाँ की उत्कट अभिलाषा थी कि उसका लाड़ला बेटा दाराशिकोह भारत का सम्राट बने। उसे औरङ्गज़ेब का बादशाह होना किसी तरह भी पसन्द न था। इसलिए उसने एक नई तदबीर सोची और अगर समय रहते ही रौशनआरा को इस बात की टोह न लग जाती तो मुग़ल साम्राज्य के इतिहास के पन्ने किसी और ही रङ्ग में रँगे गए होते। अस्तु।

भाइयों को परास्त करके, विजय का डङ्का बजाता हुआ, जिस समय औरङ्गज़ेब ने आगरे में प्रवेश किया, उस समय उसका वृद्ध पिता सम्राट शाहजहाँ नज़रबन्द था, इसलिए वह प्रगट रूप से दाराशिकोह की मदद नहीं कर सकता था। परन्तु वह चाहता था कि किसी तरह औरङ्गज़ेब के मनसूबे व्यर्थ कर दिए जावें, इसलिए एक दिन फ़ाज़िल ख़ाँ के मार्फ़त उसने औरङ्गज़ेब को पैग़ाम भेजा कि मेरी इच्छा स्वयं अपने हाथों से औरङ्गज़ेब के सिर पर राज-मुकुट धरने की है, इसलिए वह थोड़ी देर के लिए क़िले में चला आए, ताकि मेरी अभिलाषा पूरी हो जाए। इधर उसने क़िले की तुर्कमान स्त्रियों को, जो उसकी देख-रेख के लिए औरङ्गज़ेब द्वारा नियुक्त थीं, पुरस्कार आदि का प्रलोभन देकर इस बात पर राज़ी कर लिया कि जब औरङ्गज़ेब क़िले में आवे तो मार डाला जाय। यद्यपि औरङ्गज़ेब को अपने पिता पर विश्वास न था और जानता था कि यह दारा का तरफ़दार और मददगार है, तथापि वह इस चाल की गहराई को नहीं ताड़ सका। उसने पिता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और क़िले में जाकर पिता के हाथों से राज-मुकुट धारण करने को राज़ी हो गया। परन्तु औरङ्गज़ेब के वहाँ जाने से पहले ही रौशनआरा ने इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ कर दिया। उसने औरङ्गज़ेब को बुला कर अच्छी तरह समझा दिया कि सम्राट के चकमे में न आना। औरङ्गज़ेब सावधान हो गया और अपनी रक्षा का उपाय करने लगा। कई इतिहासकारों का मत है कि यद्यपि शाहजहाँ की हैसियत उस समय एक राजनीतिक क़ैदी की थी और औरङ्गज़ेब की आज्ञा के बिना उसके पास तक मनुष्य तो क्या एक पक्षी भी नहीं पहुँच सकता था, फिर भी वह सम्राट था। बहुत से दरबारी, कर्मचारी और प्रजा उसके पक्ष में थी। शाहजहाँ था भी नेकदिल, दयावान और समझदार, इसलिए क़ैद होने पर भी उसका प्रभाव पूर्ववत् था। लोग उसकी नेकियों को नहीं भूले थे, इसलिए रौशनआरा के सावधान करने पर औरङ्गज़ेब ने स्पष्ट शब्दों में पिता की आज्ञा की अवहेलना न की और बहानेबाज़ी करके समय बिताने लगा। साथ ही दरबारियों और कर्मचारियों को प्रचुर रुपए-पैसे आदि देकर उन्हें अपने वश में करने लगा। अन्त में जब उसे विश्वास हो गया कि उसके मददगारों की तादाद काफ़ी हो गई तो उसने अपने नज़रबन्द पिता को कहला भेजा कि जब तक क़िले में हथियारबन्द सैनिक मौजूद हैं, तब तक मैं नहीं आ सकता। वृद्ध सम्राट पुत्र की इस चालाकी को न समझ सका! उसने अपने सैनिकों को बुला कर आज्ञा दे दी कि क़िला ख़ाली कर दिया जाय। औरङ्गज़ेब तो यही चाहता ही था। जब उसने देखा कि सम्राट के शुभ-चिन्तक और सैनिक क़िले से बाहर चले आए तो उसने अपने विश्वासी अनुचरों के साथ जाकर क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। कुछ लोगों का कहना है कि वह सारी

कार्रवाई उसने अपनी बहिन रौशनआरा की सलाह से की थी।

अस्तु, औरङ्ग़ज़ेब के तख़्तनशीन होने पर रौशनआरा का दबदबा भी ख़ूब बढ़ गया। शासन-कार्य के प्रत्येक विभाग में उसकी तूती बोलने लगी। अब वह राज-महल की सर्व-प्रधाना शासिका थी। शासन की मशीन का हर एक पुर्ज़ा उसके इशारों पर चलने लगा। औरङ्ग़ज़ेब ने प्रचुर धन-रत्न देकर उसे मालामाल कर दिया। नित्य-नैमित्तिक व्यय के लिए प्रति मास राजकोष से यथेष्ट रुपए मिलने लगे। राज-दरबार का प्रत्येक व्यक्ति रौशनआरा को सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। जब कभी वह बाहर निकलती तो उसकी सवारी बड़े ठाट-बाट से निकला करती थी। यहाँ तक कि रौशनआरा के सामने औरङ्ग़ज़ेब की शाह बेगम की भी कुछ नहीं चलती थी। इसके साथ ही रौशनआरा भी औरङ्ग़ज़ेब को बड़े स्नेह की दृष्टि से देखती थी और उसे ही अपना सर्वस्व समझती थी। सन् १६६४ में औरङ्ग़ज़ेब सख़्त बीमार पड़ा। धीरे-धीरे बीमारी यहाँ तक बढ़ी कि शाही हकीमों ने उसे दुस्साध्य बता दिया। सम्राट बहुधा बेहोशी की हालत में पड़ा रहने लगा। उस समय रौशनआरा ने उसकी बड़ी सेवा की थी। हज़ारों नौकरों, बाँदियों और बेगमों के रहते हुए भी वह दिन-रात उसके पलङ्ग के पास बैठी रहती और सारी सेवा-शुश्रूषा अपने हाथों से किया करती। इस समय भाई को उसके शत्रुओं के षड्यन्त्र से बचाने का भी उसने यथेष्ट प्रबन्ध कर रक्खा था। जिस महल में औरङ्ग़ज़ेब रोग-शय्या पर पड़ा था, उसके बाहर और भीतर तुर्कमान स्त्रियों का ज़बरदस्त पहरा बिठा दिया गया था। यहाँ तक कि रौशनआरा की आज्ञा बिना बादशाह की बेगमें भी रोगी की शय्या तक नहीं पहुँच सकती थीं। रौशनआरा के शत्रुओं ने बाहर यह अफ़वाह उड़ा दी थी कि औरङ्ग़ज़ेब की मृत्यु हो चुकी है और रौशनआरा स्वयं सम्राज्ञी बनना चाहती है, इसलिए उसने इस बात को प्रगट नहीं होने दिया है और भीतर ही भीतर प्रयत्न कर रही है। कुछ लोगों का कहना था कि रौशनआरा औरङ्ग़ज़ेब के लड़के की जगह अपने सब से छोटे भाई को तख़्तनशीन करना चाहती है। सम्राट की इस दीर्घकालीन रुग्णता के कारण शासनतन्त्र में विशृङ्खलता और साम्राज्य में विद्रोहाग्नि के धधक उठने की पूरी सम्भावना थी। परन्तु बुद्धिमती रौशनआरा ने बड़ी दृढ़ता और गम्भीरता से इस विषम परिस्थिति का सामना किया। उसने सबसे पहले 'शाही मुहर' को अपने अधिकार में कर लिया और सूबेदारों, अधीनस्थ राजाओं और अन्यान्य राज-कर्मचारियों के नाम समय-समय पर हुक्मनामे जारी करके राज्य में शान्ति क़ायम रक्खी।

अन्त में रौशनआरा की सेवा-शुश्रूषा से औरङ्ग़ज़ेब की हालत सुधरने लगी। परन्तु इन्हीं दिनों एक घटना सङ्घटित हुई, जिससे रौशनआरा के अधिकार और दबदबे को गहरा धक्का लगा। औरङ्ग़ज़ेब की प्रधाना महिषी को अपने पति के ऊपर रौशनआरा का प्रभाव और अधिकार बड़ा बुरा मालूम हुआ। वह एक राजपूत रमणी थी। पति की रुग्णावस्था में उसकी सेवा करना अपना धर्म समझती थी। परन्तु रौशनआरा के सामने उसकी दाल नहीं गलने पाती थी। अन्त में हताश होकर उसने पहरेदारों को अपनी ओर कर लिया और जब रौशनआरा इधर-उधर चली जाती, तब यह बेगम औरङ्ग़ज़ेब के पास पहुँचती और रौशनआरा की ख़ूब निन्दा किया करती थी। जब औरङ्ग़ज़ेब सम्पूर्ण नीरोग हो गया तो बेगम ने अपने पुत्र शाहआलम को औरङ्ग़ज़ेब के पास भेज कर रौशनआरा की बड़ी शिकायत कराई। दूसरी कई बेगमों ने भी, जो रौशनआरा से चिढ़ी हुई थीं, शाहज़ादे शाहआलम की शिकायतों का समर्थन किया। औरङ्ग़ज़ेब के दिल पर इन शिकायतों का बड़ा असर पड़ा। वह रौशनआरा की अनधिकार चर्चा से चिढ़ गया और धीरे-धीरे उसके प्रभाव से अपने को मुक्त कर लिया। रौशनआरा के वे शानो-शौकत के दिन देखते-देखते हवा हो गए। शासनतन्त्र के सभी विभागों से उसका प्रभाव तिरोहित हो गया। औरङ्ग़ज़ेब उसके तमाम अहसानों को भूल गया। अब वह राजपरिवार के बच्चों की शिक्षयत्री के सिवा और कुछ नहीं रह गई। अपने अच्छे दिनों में उसने राजपरिवार की दूसरी स्त्रियों के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उसका फल उसे हाथोंहाथ मिल गया। औरङ्ग़ज़ेब को भी अब उसकी सहायता और परामर्श की कोई ज़रूरत न रही। शाही महल के नौकर-चाकर भी रौशनआरा

की तुन्द-मिज़ाजी से परेशान रहते थे। सम्राट को अपने हाथों में कर लेने के कारण उसने सबके साथ दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दिया था। उसकी आज्ञा की अवहेलना करना मृत्यु को वरण करना था। किसी की ज़रा सी चूक भी वह बरदाश्त नहीं कर सकती थी। साधारण से साधारण अपराध के लिए कठिन से कठिन दण्ड प्रदान करना उसके लिए मामूली बात थी। इसलिए सम्राट औरङ्ग़ज़ेब के अन्तःपुर में कोई उसका शुभचिन्तक न था। वरन् सभी चाहते थे कि किसी तरह इसके चङ्गुल से प्राण बचे। इसके सिवा रौशनआरा के पतन का कारण औरङ्ग़ज़ेब की कन्या शाहज़ादी ज़ेबुन्निसा भी थी। यह शाहज़ादी जैसी रूपवती थी, वैसी ही बुद्धिमती भी थी। दया, दाक्षिण्य और मिलनसारी आदि कितने ही स्त्रियोचित सद्गुण इसमें थे। यह बड़ी मञ्जुभाषणी थी। राजमहल के सभी छोटे-बड़े इससे प्रसन्न रहते थे। स्वयं सम्राट भी इसकी बुद्धिमानी और इसके मधुर व्यक्तित्व पर मुग्ध था। इसलिए रौशनआरा को ज़ेबुन्निसा के लिए स्थान ख़ाली कर देना पड़ा।

शाहज़ादी रौशनआरा ने पचपन-छप्पन वर्ष की उम्र में इस संसार को छोड़ा था। दिल्ली का रौशनआरा-बाग़ आज भी उसकी याद दिलाता है। किसी समय इस बाग़ की शोभा दर्शनीय थी। आज भी उसकी गणना दिल्ली के दर्शनीय स्थानों में की जाती है।

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

कहानी-कला पर विचार

"हमारे अधिकतर सम्पादकों को कहानी-कला की शिक्षा की बहुत आवश्यकता है।" एक अमेरिकन पुस्तक में ये शब्द पढ़ कर हम चकित रह गए। ठीक यही भाव कई दिनों से हमारे मन में हिन्दी-सम्पादकों के प्रति उठ रहे थे। पर उन्हें प्रकट करने का साहस न होता था। परन्तु यदि अमेरिका—जिसे आधुनिक 'कहानी' का रूप निश्चित करने का सौभाग्य प्राप्त है और जहाँ आज भी कहानी अपने असली रूप में निकल रही है—की यह अवस्था है तो हिन्दी, जिसमें कहानी का प्रादुर्भाव हुए अभी केवल कुछ ही वर्ष हुए हैं—की यह हालत क्षम्य है। इसमें हमारे सम्पादकों का कोई दोष नहीं; क्योंकि हिन्दी में कहानियों की एक-दो को छोड़ कर कोई भी पत्रिका नहीं। अधिकतर पत्रिकाएँ यहाँ "विविध विषय सम्पन्न" हैं। वे मास में केवल एकाध कहानी देती हैं। इसके लिए कौन कहानी-कला का अध्ययन करता फिरे—विशेष कर जब कि पाठकों में साहित्यिक ज्ञान का अभाव होने के कारण कोई भी चीज़ कहानी के नाम से चल सकती हो। परन्तु उस भाषा के लिए, जो राष्ट्र-भाषा के उच्चासन पर आरूढ़ होने जा रही हो, यह अवस्था सन्तोषजनक नहीं। हमें तो अभी विश्व-साहित्य में हिन्दी के लिए आदर का स्थान प्राप्त करना है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हमारे साहित्यिक प्रयास संसार के सम्मुख रक्खे जाने से पहिले साहित्यिक—केवल साहित्यिक—कसौटी पर परखें जाएँ तो।

"शिक्षा" तथा "उपयोगिता" कला को बहुत रौंद चुके हैं—उसका लगभग गला घोंट चुके हैं। इसलिए उनके पञ्जे से कला को छुड़ा कर हमें अब इस बेचारी को विकसित करने में प्रयत्नशील होना चाहिए। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर हम आधुनिक कहानी पर दो शब्द लिखने बैठे हैं। क्योंकि हमारे क्षुद्र विचार में हिन्दी में बहुत कम कहानियाँ अपने नाम को सार्थक करने वाली हैं। और शायद यही लेख विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करके हिन्दी-कहानी के विकृत रूप को सँवारने में कुछ लाभदायक हो जाए।

जिस दिन से मनुष्य ने होश सँभाला था, उसी दिन से वह कहानी कहने लगा था। चाहे ठीक हो या न हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य में कहानी बहुत पुराने समय से चली आ रही है। हमारे पुराणों में तथा मिश्र के ६,००० वर्ष पुराने पत्रों में इसके काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। परन्तु जिस रूप में कहानी इस समय प्रचलित है, उस रूप को सब से पहिले संसार के सम्मुख, सन् १८२७ में, प्रसिद्ध फ्रेञ्च लेखक प्रॉस्पर मेरिमी (Prosper Merimee) ने अपनी अद्वितीय कहानी 'मैतियो फ़ाल्कन' (Mateo Falcon) द्वारा तथा सन् १८३० में विख्यात अमेरिकन लेखक तथा कहानी के पिता एडगर ऐलन पो (Edgar Allan Poe) ने अपनी कहानी 'बैरिनाईस' (Berinice)

द्वारा रक्खा। पो ने १८४२ में हॉथॉर्न (Hawthorne) की रचनाओं की समालोचना करते हुए कहानी की परिभाषा पर भी ख़ूब प्रकाश डाला। और पो की खींची हुई लकीरें आज भी प्रमाण मानी जाती हैं। तब से 'कहानी' साहित्य की एक भिन्न शाखा बन गई और पो के दिखाए हुए मार्ग पर चलने लगी। फल यह है कि आज 'कहानी' को लिखने तथा पढ़ने वालों की संख्या अपरिमित है। पश्चिम से भारतवर्ष में सबसे पहिले कहानी बङ्गला ने ली और बङ्गला से हिन्दी ने। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि कहानी हमें पश्चिम से मिली है। इसलिए ठीक कहानी लिखने के लिए हमें उन्हीं के बाँधे हुए नियमों पर चलना चाहिए। इस लेख में उन्हीं नियमों को दृष्टिगत करते हुए कहानी-कला पर विचार किया जाएगा।

कहानी क्या है ?

कहानी एक मुख्य पात्र तथा एक प्रधान घटना का संक्षिप्त काल्पनिक वर्णन है। इसमें एक कथानक (Plot) आवश्यक है, जिसकी रचना विस्तारपूर्वक वर्णन को काट-छाँट कर इस भाँति हुई हो कि पढ़ने पर मस्तिष्क में वह केवल एक भाव की छाप छोड़ जाए।

इस परिभाषा में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

मुख्य पात्र

इसका यह मतलब नहीं कि एक को छोड़ कर और पात्र चाहिए ही नहीं। परन्तु उनकी आवश्यकता केवल मुख्य पात्र के वर्णन की सहायता के लिए है। जैसे लेखक को अपनी कहानी में माता की ममता दिखानी हो। इसमें माता मुख्य पात्र के अतिरिक्त एक दो बच्चे, बच्चों को कष्ट देने वाला कोई दुष्ट तथा उनकी सहायता करने वाला कोई सज्जन भी आवश्यक है। कभी-कभी दो मुख्य पात्र भी हो सकते हैं; परन्तु यह नियम नहीं, प्रत्युत उसका अपवाद है।

प्रधान घटना

प्रधान घटना के विकसित करने के लिए भी और घटनाओं का होना अनिवार्य है। इन घटनाओं के सहारे ही प्रधान घटना तक पहुँचा जा सकता है। जैसे प्रेमचन्द जी की कहानी "बूढ़ी काकी" में प्रधान घटना यद्यपि बूढ़ी का जूठी पत्तलों को चाटना है, परन्तु उस तक पहुँचने के लिए लेखक को छोटी-छोटी कितनी ही घटनाएँ पार करनी पड़ी हैं।

संक्षिप्त वर्णन

इसके अर्थ केवल यही नहीं कि कहानी छोटी हो, परन्तु यह भी है कि उसमें भर्ती का एक शब्द भी न हो। "शीतल सुखद समीर", "पूर्णमासी की उज्ज्वल रात्रि," "टूटी हुई वीणा" और अन्य ऐसे कवित्वमय भाव यदि कहानी के विकास के लिए आवश्यक न हों तो उनका वहाँ कोई स्थान नहीं। कला को छिपाना भी तो कला है। कला के उच्चतम आदर्श तक पहुँचने के लिए बीसियों नई सूझों तथा कमनीय विचारों को निछावर करना भी ज़रूरी है। आदर्श कहानी वही है, जिसमें एक-एक शब्द नाप-तौल कर रक्खा गया हो।

इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि कहानी में फ़ालतू शब्द आने से वह रद्दी हो जाएगी। इस कला के बड़े-बड़े विद्वानों की लेखनी से भी फ़ालतू शब्द निकल ही जाते हैं। अमर फ़्रेञ्च लेखक मोपासाँ की प्रसिद्ध कहानी 'नेक्लेस' में तथा अद्वितीय अमेरिकन लेखक ओ॰ हेनरी की कहानी "The Gift of the Magi" में भी ढूँढ़ने पर कुछ शब्द फ़ालतू अवश्य मिल जाएँगे। परन्तु आदर्श वही होना चाहिए, जो ऊपर कहा गया है।

कथानक

कथानक लेखक द्वारा की हुई वह चतुर योजना है, जिससे उत्सुकता को उकसा कर वह अन्त में उसे शान्त कर देता है। यह कहानी का ख़ाका मात्र है। जैसे चितेरा चित्र का ख़ाका खींचने के अनन्तर उसमें रङ्ग आदि भरने तथा दृश्य चित्रित करने लगता है, उसी भाँति कहानी लिखने से पहिले कथानक निश्चित कर लेना अत्यावश्यक है। कथानक के बिना कहानी का बनना असम्भव है। और कुछ करने से पहिले लेखक की सब शक्तियाँ कथानक को तराशने में लगनी चाहिएँ। क्योंकि कुबड़े के कूबड़ की भाँति एक भद्दे कथानक को कोई भी कहानी नहीं छिपा सकती।

रोचकता कहानी का एक बड़ा भारी गुण है और उसे रोचक बनाने के लिए कथानक में कम से कम एक रुकावट का लाना अनिवार्य है। प्रधान पात्र या पात्री के पूर्णानन्द की राह में काँटों की बाढ़ का होना ज़रूरी है। उसे पार करने में, उन्हें सफल या असफल कराने में ही कथानक का कर्त्तव्य पूरा हो जाता है।

एक ही भाव की छाप

इसके लिए जहाँ तक हो सके, समय, स्थान, पात्र तथा घटनाओं की एकता को कहानी में लाने का उद्योग करना चाहिए। इसके ये अर्थ हैं कि जहाँ तक हो सके, घटनाएँ एक ही निश्चित समय में घटित हों, सीन एक ही स्थान तक परिमित रहे, कहानी प्रधानतया एक ही पात्र पर केन्द्रित हो तथा कहानी की सब शक्तियाँ एक ही प्रधान घटना को उत्पन्न करने में लगी हों।

ऊपर कही बातों से यह स्पष्ट है कि कहानी साहित्य-कला की कितनी कठिन शाखा है। इसे ठीक लिखने के लिए कितने संयम तथा परिश्रम की आवश्यकता है। यह प्रत्येक तृतीय श्रेणी के नौसिखिए लेखक की धरोहर नहीं, परन्तु साहित्य-मार्तण्डों के जौहर दिखाने की चीज़ है। पो इसे साहित्य में केवल कविता से नीचे गिनता है। सत्य, शिव और सुन्दर का चित्ताकर्षक चित्र खींचने के लिए यह साहित्य की किसी भी शाखा से टक्कर ले सकती है। इसलिए कहानी को ठीक मार्ग पर चलाने की बहुत आवश्यकता है। क्या यह आशा नहीं की जा सकती कि हिन्दी-प्रेमी इस ओर शीघ्र ध्यान देने की कृपा करेंगे?

इस लेख में हम केवल कहानी की परिभाषा मात्र दे सके हैं। कहानी को किस तरह आरम्भ करना चाहिए, कैसे समाप्त करना चाहिए, कहानी का नाम चुनने में कितनी सावधानी की आवश्यकता है, स्फूर्ति कहाँ से और कैसे मिल सकती है, आदि-आदि बातों पर फिर कभी समय मिलने पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

—पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

❀ ❀ ❀

कविता के क्षेत्र में

आजकल साहित्य में कविता को लेकर बहुत वाद-विवाद हो रहा है। कविता के स्वरूप के विषय में भिन्न मत होना कोई अनुचित बात नहीं। पर जब 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' की नौबत आ जाती है अथवा आने का भय रहता है, तब सतर्कता की अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ती है। अस्तु—

इस विवाद के कई स्पष्ट कारण हैं। पहला और मुख्य कारण तो समालोचना के पश्चिमी सिद्धान्तों का अन्धानुकरण है। हम इन सिद्धान्तों का उपयोग कविता की तोल में न करके, कविता को उनके पीछे घसीटे फिरते हैं। हिन्दी तथा संस्कृत के उत्तरकालीन अधिकांश कवियों पर भी यही दोषारोप है। हम उन पर दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ आदि पण्डितों द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के उदाहरण पर कविता लिखने का लाञ्छन लगाते हैं। यह सत्य है कि इन कालों में कविता की वह सरलता नष्ट हो चुकी थी, जो इनसे पहले के कवियों में पाई जाती है। इन कालों में यदि अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की रचना होती, तो कालिदास के शाकुन्तल के समान, शकुन्तला की विदाई के समय की यह तीव्र भावनामयी युक्ति किसी कवि को न सूझती—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं।
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्॥
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै—
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥

वास्तव में उस समय भावना का तिरस्कार हो गया था। कवि कल्पना के बोझ से इतने दब गए थे कि 'कृष्ण के मकराकृत कुण्डलों में मकरध्वज के चिन्हों के सिवा कुछ न देखते हुए, वे उन योगिराज को कामदेव का अवतार ही नहीं, अड्डा मान बैठे थे।' सूर ने भी कृष्ण के शृङ्गार का वर्णन ख़ूब किया है। पर बाल-लीला से गोपी-विरह तक उनका शृङ्गार सांसारिक विषय-लिप्सा के गर्त से कहीं ऊँचा है। उनकी यह भावना विरह-वर्णन के इस पद से स्पष्ट है—

कहाँ लौं कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मन सो तहाँ न जाई॥
जाके रूप न रेख बरन बपु नाहिन सङ्ग सखा सहाई।
ता निरगुन सों नेह निरन्तर क्यों निबहै री माई॥
जल बिन तरँग भीति बिन लेखन बिन चेतहिं चतुराई।
या ब्रज में कछु नहीं चाह है ऊधौ आनि सुनाई॥
मन चुभि रही माधुरी मूरति अङ्ग-अङ्ग अरुझाई।
सुन्दर श्याम कमल-दल-लोचन सूरदास सुखदाई॥

यही परमात्मा का सुन्दर और मङ्गलमय रूप है। इसी के भीतर सत्य की झलक दिखाई देती है।

हमारी भी दशा हिन्दी और संस्कृत के अधिकांश मध्य और उत्तरकालीन कवियों जैसी ही है। पश्चिमी सिद्धान्त भारतीयों के लिए बिलकुल नए होने से हमारी भी धाक पहले-पहल जमी। पर 'बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनाएगी।' अब असलियत प्रकट हो गई है। आजकल कोई प्रतिभा-सम्पन्न सज्जन अपने अध्ययन के फल-स्वरूप कुछ सिद्धान्तों को लेकर चतुरतापूर्वक कविता लिखते हैं और दूसरे व्यक्ति, जिनकी प्रतिभा इतनी बढ़ी-चढ़ी नहीं होती, अथवा जिनका अध्ययन इतना प्रशस्त नहीं होता, उन्हीं के चुने सिद्धान्तों पर कविता लिखने लगते हैं; और उन्हें नवयुग का प्रवर्तक कह कर अपना महन्त मान लेते हैं। यह महन्तगीरी आजकल हिन्दी में बहुत चली है और भिन्न-भिन्न वादों के नाम से प्रसिद्ध है। बाह्य अथवा अन्तर्जगत् की वास्तविक अनुभूति का अभाव होने से इस प्रकार रची गई कविता में वह माधुर्य नहीं होता, जो चित्त को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर ले। संस्कृत के कवि भारवि लिखते हैं:—

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः,
प्रसादयन्ती हृदयानपिद्विषान्।
प्रवर्तते नाकृत पुण्यकर्मणां,
प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती॥

इन कवियों की कविता के शब्द और अलङ्कार, विविक्त होने के स्थान पर, कुछ अज्ञात अर्थ रखने वाले होते हैं, जिसका ज्ञान स्वयं कवि महाशय को भी होता है या नहीं, इसमें सन्देह है। भारवि की माप के विरुद्ध शत्रुओं तक के चित्त प्रसन्न करने के स्थान पर कविता सुन कर सहृदयों के चित्त भी खिन्न हो जाते हैं। प्रसन्नता (भावों की स्पष्टता) का तो उनमें अभाव रहता ही है, पर हाँ, भारवि के एक मत का ख़ूब बढ़-चढ़ कर पालन होता है। वह यह कि गम्भीरता कहिए अथवा क्लिष्टता के मारे कविता की थाह ही नहीं लगती—कविता समझ में ही नहीं आती। यह क्लिष्टता जल की गम्भीरता नहीं है, किन्तु उसका अत्यन्त उथलापन; जिसके कारण प्रयत्न करने पर भी मारे कीच के पैर नीचे जाता ही नहीं। डुबकी लगाना तो दूर रहा, आचमन के लिए हाथ डालते ही नीचे बैठी गन्दगी जल की ऊपरी चादर को मैली कर देती है।

जिन अङ्गरेज़ कवियों के अनुकरण पर बहुधा आजकल की कविताएँ लिखी जाती हैं, उनमें भी भावना की प्रबलता थी। West Wind (पश्चिमी हवा) को सम्बोधित करके शेली लिखता है—

Make me thy lyre ev'n as the forest is,
What if my leaves are falling like its own!
The tumult of thy mighty harmonies
Will take from both a deep autumnal tone,
Sweet though in sadness.

इन पंक्तियों से जान पड़ता है कि कवि संसार का रङ्ग-ढङ्ग देख कर ऊब गया है। ये पंक्तियाँ हृदय के सच्चे उद्गार हैं, ऊब जाने की कल्पना मात्र नहीं। यह कवि की जीवनी से स्पष्ट है। उसकी प्रत्येक कविता से इसी प्रकार की प्रतिध्वनि निकलती है। आजकल के कवि विवाहित जीवन का आरम्भ होने से पहले ही विरह के गीत अलापने लगते हैं। ख़स की टट्टियों में बिजली के पङ्खों के नीचे बैठ कर गर्मी की दुपहरी बिताने वाले श्मशान-वर्णन और ग्रीष्मकाल पर कविता लिखते हैं। कुछ अधिक हुआ तो आसपास की किसी बग़ीची में बसन्त-ऋतु में बैठ कर पुष्पों का सौरभ-पान करते हुए नव घन और निर्झर पर कविता लिखने लगे। बताइए, इस प्रकार की उक्ति में सजीवता कहाँ से आ सकती है? माना कि अन्धे सूर को कृष्ण का शृङ्गार देखने को नहीं मिला था। गोस्वामी जी ने भी धनुषयज्ञ देखा न था। पर रात-दिन अपने इष्ट-देव के चिन्तन में लीन रहने से—हृदय में उनके प्रति अगाध और

अनन्य भक्ति होने से यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी कविता अनुभूति-रहित है। गोस्वामी जी ने प्रकृति का शुद्ध वर्णन नहीं किया। अपने महाकाव्य में नितान्त आवश्यकता पड़ने पर ही इस दिशा में उनकी लेखनी चली है। कारण यही है कि इस ओर उनकी रुचि अधिक न थी। यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि अनर्गलता-रहित होने पर भी उनके ऐसे वर्णन, उनकी अन्य कविता के सामने फीके जँचते हैं।

अब इसमें सन्देह नहीं कि कविता का मूल अनुभूति है। इसके उत्तेजन के लिए बाह्य और अन्तर्जगत का सूक्ष्मावलोकन आवश्यक है। तभी कवि वर्ण्य विषय से अपनी एकता अनुभव करता है और यथार्थ कविता की सृष्टि होती है। अनुभूति के बिना, कविता के केवल लक्षण लेकर उन्हें अपनी रचना में घटित करने का प्रयत्न ठीक वैसा ही है, जैसे किसी के सिर में दर्द तो न हो, पर वह हाय-हाय करके इधर-उधर सिर पटकता फिरे। इस प्रकार के प्रयत्नों में वह स्वाभाविकता, वह अनूठापन आ ही नहीं सकता, जो कविता की वास्तव में आत्मा है। आजकल के कवि-सम्मेलनों में यह बात स्पष्ट दिखाई देती है ! स्वाभाविकता की जड़ तो 'समस्या' के कुठार से पहले ही काट दी जाती है ; बस, कृत्रिमता को अवकाश मिल जाता है और वह भाँति-भाँति की चेष्टा दिखाती हुई नृत्य करने लगती है। कहीं-कहीं तो यह चेष्टा भी असह्य हो जाती है। वीर-जयन्तियों के उपलक्ष्य में होने वाले कवि-सम्मेलनों में होली के पद गाए जाते हैं। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि कवि-सम्मेलन होना अभीष्ट नहीं। हों, अवश्य हों। यह कहने में भी आपत्ति नहीं कि भावुक युवकों को मैदान में आकर परीक्षा देने का तथा जनता के मनोरञ्जन के ये अच्छे साधन हैं। पर इस अखाड़े में वे ही उतरें, जिनके हृदय में कविता लिखने की वास्तविक विह्वलता हो। प्रत्येक व्यक्ति इस विषय में अपनी परीक्षा इस प्रकार कर सकता है कि कविता रचने को वह कवि-सम्मेलन की राह न देखे। ऐसे ही व्यक्तियों की रचनाओं में से जो-जो जनता के मनोभावों को सन्तुष्ट करने वाली होंगी, वे समय की चपेट के सामने ठहर सकेंगी; शेष उसकी बाढ़ में स्वयं विलीन हो जावेंगी।

कुछ विद्वानों का मत है कि कविता का युग चला गया। पर आजकल भी पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी ऐसी कविताओं के दर्शन हो जाते हैं, जो वास्तव में हृदय-स्पर्शिनी होती हैं। ये ऐसी ही लेखनी से निकलती हैं, जिनमें तीव्र अनुभूति होती है। यह भी देखा जाता है कि एक ही महानुभाव की एक रचना तो बहुत भली लगती है, पर दूसरी नहीं। इनमें पहली तो हृदय का स्वाभाविक उद्गार है, और दूसरी किसी सम्पादक के पत्रों, अथवा स्वयं कवि महोदय की यश अथवा अर्थ-लोलुपता का फल। प्रेसों के प्रसाद से अच्छी और बुरी सभी रचनाएँ हमारे पास पहुँच जाती हैं। अच्छों का अंश कम होने से हम अधीर हो, कह बैठते हैं कि अब कविता का युग नहीं है। यही तब भी होता था, जिसे कविता का युग कहा जाता है। जो कुछ प्राचीन कविता उपलब्ध है, वह एक-दो नहीं, बीसों शताब्दियों की कृति है। उस समय आवागमन तथा छापे की सुविधा न होने से सब रचनाएँ प्रसिद्धि न पा सकती थीं। केवल चुना हुआ माल ही सड़ने से बच पाता था। अब भी यही होगा। वास्तविक कविता का ही अधिक पठन-पाठन होगा। शेष एकाध बार भले ही हमारे नेत्रों के सामने आ जायँ।

अनुभूति कोई मूर्त पदार्थ नहीं। इसके जाग्रत होने पर शब्दों का मूर्त रूप देने में कल्पना और बुद्धि का सहारा देना पड़ता है। इस प्रकार काव्य की सृष्टि होती है। इस काव्य को कविता का रूप देने के लिए एक विशेष प्रकार की 'लय' अत्यन्त आवश्यक है। इस लय का स्वरूप निर्धारित करने में भी कई पन्थों की सृष्टि हो चुकी है। एक मत कहता है कि छन्द अनावश्यक हैं, इनके बिना भी कविता में लय का कार्य सिद्ध हो सकता है। इसी मत के आधार पर आजकल कविता के अद्भुत-अद्भुत रूप दिखाई देते हैं। कवि महाशय सुविधानुसार अथवा अपनी झक का अनुसरण कर मन-माने स्थान पर पंक्ति का आरम्भ या अन्त कर देते हैं। सत्य है, 'विधि सों कवि सब विधि बड़े।' वास्तव में ये पंक्तियाँ कई गद्य-वाक्य हैं, जिन्हें तोड़-तोड़ कर मनमाने स्थान पर कर्ता, विशेषण, क्रिया, कर्म, प्रश्नवाचक और विस्मयादि-सूचक चिन्ह रख दिए जाते हैं। इस प्रकार उनके रचयिताओं ने स्वयं किसी वस्तु की कल्पना कर

ली है। इसमें किस प्रकार की 'लय' होती है, यह भी अनुभवगम्य नहीं। देखिए—

> हे गुणवान !
> किस अनादि के काल से
> तेरा अन्तहीन यह गान,
> गूँज रहा है,
> जीवन के प्रत्येक अंश में
> अन्तहीन अम्बर में।
> अशनि-नाद,
> कर्म-कोलाहल,
> मेघ-मन्द्र
> सागर-गर्जन,
> खिले सुमन सी हँसी
> और वर्षा-सा रोदन,
> हो जाते हैं सभी लीन
> तेरे खर स्वर में
> नीर-तरङ्ग समान,
> हे गुणवान !

छन्द के अभाव में यदि लेखक इन्हें गद्य-काव्य का ही रूप देते तो राय कृष्णदास की 'साधना' या रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' की शैली के अच्छे काव्य-ग्रन्थ बन जाते और जनता के मनोभावों को सरलता से पुष्ट करने में सहायक होते। इन महाशयों की 'लय' की जो कल्पना है, वह गद्य-काव्य में अच्छी प्रकार लाई जा सकती है। वैसे भी देखा जाय तो अच्छे गद्य-लेखक की शैली में एक प्रकार की लय अवश्य होती है। पर इस लय और कविता की लय में भेद है। कविता की लय छन्दों पर ही आश्रित है।

छन्द के विरुद्ध मुख्य रूप से यह कहा जाता है कि उनकी यति और अन्त्यानुप्रास के कारण उक्ति (Expression) की सरलता मारी जाती है। यह कथन सर्वथा निर्मूल है। छन्द का बन्धन तोड़ने पर भी सुधारकों की उक्ति कहाँ तक सरल होती है, यह सभी जानते हैं। दूसरी ओर इन बन्धनों में—मर्यादा में—रहने वाले प्राचीन कवियों में क्लिष्टता का प्रायः अभाव ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने मुख्यतः एक छन्द (चौपाई) का आश्रय ग्रहण कर रामायण जैसा अद्वितीय महाकाव्य बना दिया। उक्ति को कहीं कठिनाई न आई। बानगी के लिए एक चौपाई देखिए। इसमें दस का अर्थ लाने को 'षटचारी' (छः और चार) शब्द केवल अनुप्रास और मात्रा-पूर्ति के लिए लाया गया है। चौपाई है—

> गिरत दशानन उठा सँभारी।
> भूतल परे मुकुट षटचारी॥

प्रतिभा तो अपना मतलब हर कहीं सिद्ध कर लेती है। सौभाग्य से भारतीय पिङ्गल में छन्दों की भी कमी नहीं। अपनी सुविधानुसार किसी छन्द से काम लिया जा सकता है। यदि कहा जाय कि ब्रज-भाषा जैसी सुविधा खड़ी बोली को प्राप्त नहीं तो यह भी माननीय नहीं। गोस्वामी जी तथा कबीर आदि कुछ कवियों के अतिरिक्त प्रायः सभी ने बातचीत की भाषा में बहुत कम परिवर्तन किए हैं। संस्कृत जैसी व्याकरण-बद्ध भाषा तक में छन्द का जादू यहाँ तक फैला कि वैद्यक, ज्योतिष आदि तक के ग्रन्थ पद्य में लिखे गए। आज-कल खड़ी बोली में भी छन्दोबद्ध कविता सिद्ध-हस्त कवियों के हाथ से धड़ाके से निकलती है। यदि छन्द को कविता का शरीर (Form) बता कर उसकी आत्मा ही सब कुछ मानी जाय, तो उस निर्गुण परब्रह्म का अनुभव जन-साधारण की पहुँच के बाहर है, जब तक कि वह सगुण रूप में प्रकट न हो।

एक दूसरा मत छन्द की आवश्यकता तो मानता है, पर उसे मात्रिक छन्दों तक में अन्त्यानुप्रास रुचिकर नहीं। कौन सहृदय व्यवहार में इस कथन की उपयोगिता का अनुभव करेगा? मेरा जहाँ तक विचार है, मराठी में तो वर्ण-वृत्तों तक में अन्त्यानुप्रास उपयोगी समझ कर रक्खे गए हैं। सत्य है कि अन्त्यानुप्रास के बिना छन्द का काम चल सकता है। 'लय' के लिए भी अन्त्यानुप्रास अत्यन्त आवश्यक नहीं। पर कम से कम मात्रिक छन्दों में तो हमें अन्त्यानुप्रास का अभ्यास पड़ा हुआ है। चाहे इसे प्राचीन कविता से लगी चाट कहिए या कुछ, अन्त्यानुप्रास के बिना जिह्वा और कान को झटका सा लगता है और कविता का सङ्गीत फीका पड़ जाने से उसका आह्लादक गुण मारा जाता है।

इस अनुप्रास के बिना छन्द वैसा ही है, जैसे बिना सुपारी के पान। कुछ मनचलों को चाहे ऐसा पान रुचिकर हो, पर साधारण समाज तो उसे सुपारी डाल कर खाने का आदी है। यदि शैली की नवीनता कह कर अन्त्यानुप्रास के अभाव की उपयोगिता सिद्ध की जाय तो भी प्रश्न यह है कि इससे कविता का सौन्दर्य कहाँ तक स्थिर रहता है? नई बात लोक में कुछ कौतूहल भले ही उत्पन्न कर दे, पर जब तक वह उपयोगी अथवा सुन्दर नहीं है, लोक उसे ग्रहण नहीं कर सकता। हम किसी वस्तु को केवल नवीनता के कारण क्यों ग्रहण कर लें—विशेषकर जब कि उससे सुन्दर के—आत्मा के न सही, शरीर के सही—सौन्दर्य को आघात पहुँचता हो।

सरस्वती का उपयुक्त स्थान वही मस्तिष्क हो सकता है, जो शुद्ध हो, सरल हो, और हठधर्मी तथा मतमतान्तर की कीच से लिप्त न हो। कविता का स्वच्छन्द प्रवाह उसी हृदय से निकल सकता है, जिसमें तीव्र अनुभूति हो। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि मस्तिष्क और हृदय के बीच में कोई अवरोध है, और एक का सम्बन्ध दूसरे से नहीं। है, अवश्य है। सत्य तो यह है कि तीव्र अनुभूति होने पर भी सरस्वती की कृपा बिना कविता की सृष्टि हो ही नहीं सकती। किन्तु जहाँ मस्तिष्क का परिष्कार बहुत-कुछ मनुष्य के हाथ में है, हृदय का संस्कार परमात्मा कहिए अथवा प्रकृति, किसी अज्ञात शक्ति पर ही निर्भर है। फलतः कवि होना मनुष्य के हाथ में नहीं। यही अभिप्राय 'Poets are born, not made' कहने का है।

—पुरुषोत्तम दीक्षित, बी० ए०

❀ ❀ ❀

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों का स्थान

स्त्रियों को प्राचीन काल में 'अर्धाङ्गिनी' कहते थे। बस यह शब्द ही इस बात का काफ़ी प्रमाण है कि उस समय स्त्रियों का यथोचित आदर होता था तथा घर में उनका दर्जा पुरुष के दर्जे से किसी प्रकार भी कम नहीं माना जाता था। हाँ, एक बात अवश्य थी कि स्त्री अपने को पति की सहचरी समझने के साथ ही अनुचरी भी समझती थी। परन्तु अनुचरी का भाव वहीं तक था, जहाँ तक पति-सेवा से सम्बन्ध है। यज्ञादि में पतियों के साथ स्त्रियों का बैठना परमावश्यक था। स्त्रियों का स्थान महाभारत एवं रामायण में ही उच्च बताया गया है। यही नहीं, उसके बाद के काव्यों और नाटकों में भी वे श्रेष्ठ बताई गई हैं। फलतः मध्यकालीन भारत में भी स्त्रियाँ आदरणीय समझी जाती थीं। इसके प्रमाण के लिए भवभूति एवं नारायण भट्ट, इन दो व्यक्तियों का नाम लिख देना ही पर्याप्त है। इनके नाटकों में यह प्रश्न स्वयं हल हो गया है। स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। वे स्वयं विद्या से प्रेम करती थीं। बाणभट्ट ने लिखा है कि राज्यश्री को बौद्ध सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए दिवाकर मित्र शिक्षक नियुक्त हुआ था। उस समय की ऐसी बहुत सी स्त्रियों के नाम मौजूद हैं, जो बौद्ध भिक्षुनी बन जाती थीं एवं अपने गहन अध्ययन द्वारा बुद्ध के सिद्धान्तों का अन्य लोगों के सम्मुख प्रतिपादन करती थीं। यह तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है कि मण्डन मिश्र की अगाध पण्डिता स्त्री ने शास्त्रार्थ में श्रीशङ्कराचार्य जैसे उद्भट विद्वान का मुँह बन्द कर दिया था। यह भी ज़ाहिर है कि कवि राजशेखर की धर्मपत्नी अत्यन्त ही रूपवती और विदुषी थीं। उपर्युक्त स्त्री-रत्न का नाम अवन्त सुन्दरी था। राजशेखर ने अपने सिद्धान्त विषयक ग्रन्थों में जहाँ अन्य विद्वानों एवं स्वयं अपना मत प्रदर्शित किया है, या जहाँ उन्होंने उनके सिद्धान्तों एवं अपने सिद्धान्तों में मतभेद बताया है, वहीं—चार-पाँच जगह—अपनी विदुषी भार्या के सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन कराया है। विद्वानों का यह भी कथन है कि उस विदुषी ने प्राकृत भाषा में आने वाले देशीय शब्दों का एक कोष बनाया था और उसमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग समझाने के लिए अपने ही बनाए उदाहरण रक्खे थे। इसका पता सिर्फ़ इसीसे चलता है कि हेमचन्द्र ने अपनी देशी नाममाला में दो जगह उसके मतभेद को बता कर उदाहरण में उसकी ही कविता उद्धृत की है। जैसे स्त्री-शिक्षा के विषय में आज आन्दोलन किए जा रहे हैं, वैसे पहिले बहुत कम होते थे। क्योंकि स्वयं कवि राजशेखर लिखते हैं :—

"पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी कवि हों। संस्कार तो आत्मा में होता है, वह स्त्री या पुरुष के भेद की अपेक्षा

नहीं करता। राजाओं और मन्त्रियों की कन्याएँ, वेश्याएँ, कौतुकियों की स्त्रियाँ शास्त्रों में धुरन्धर विद्यावती देखी जाती हैं। बहुत सी सुन्दर कवियित्री भी हैं, जिनके नाम—इन्दुलेखा, मारुला, मोरिका, विज्जिका, शीला, सुभद्रा, पद्मश्री, मदालसा और लक्ष्मी इत्यादि हैं।"

यह तो हुई कवियित्री होने की बात। विद्वानों को यहाँ तक पता चला है कि उस समय की स्त्रियाँ गणित-शास्त्र में भी बहुत ही दक्ष होती थीं। भास्कराचार्य ने अपनी कन्या को गणित का अध्ययन कराने के लिए "लीलावती" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। राज्यश्री सङ्गीत एवं नृत्यादि में विशेष दक्ष थी। ये बातें सिद्ध करती हैं कि उस समय की स्त्रियाँ ललित-कलाओं में भी निपुण होती थीं। चित्रकला के विषय में हर्ष की "रत्नावली" देखने योग्य है। उसमें एक जगह रानी का वर्तिका अर्थात् ब्रुश से चित्र बनाने का वर्णन है।

मनु ने यद्यपि विवाहों के विषय में लिखा है कि आठ प्रकार के होते थे, परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि मनुस्मृति मध्यकाल के बहुत पहिले बन चुकी थी। याज्ञवल्क्य स्मृति में सिर्फ़ चार ही प्रकार के विवाह बताए गए हैं। हारीत-स्मृति ने सिर्फ़ ब्राह्म विवाह को ही ठीक माना है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में शायद आठ प्रकार के विवाह होते रहे हों, किन्तु उसके बाद धीरे-धीरे एक ही प्रकार का विवाह रह गया। राजा, रईसादि बहुविवाह अवश्य करते थे। ऐसा एक शिलालेख से प्रकट हो चुका है। बाल-विवाह की प्रथा उस समय नहीं थी। कालिदास ने शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के मिलन का उल्लेख किया है। उस समय शकुन्तला काफ़ी बड़ी हो चुकी थी। मनुस्मृति भी विवाह के समय कन्या की अवस्था १६ वर्ष की होना बताती है। सङ्गीत-विशारदा राज्यश्री भी विवाह के समय १४ साल की थी। महाश्वेता भी विवाह योग्य हो गई थी, यह कादम्बरी में स्पष्ट है। मध्यकाल के अन्तिम भाग में मुसलमानों के आवागमन से बाल-विवाह प्रथा का प्रारम्भ हुआ। विधवा-विवाह भी कुछ न कुछ था अवश्य, पर बिलकुल ही नष्ट नहीं हुआ था। स्मृतियों में इसका ज़िक्र है। महर्षियों ने असम्भुक्त विधवा के विवाह होने के उपरान्त की सन्तान को जायदाद का अधिकारी तक बताया है। पुनर्विवाह कौन स्त्री कर सकती है? इस विषय में महर्षि पाराशर ने स्पष्ट लिखा है :—

> नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
> पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

अर्थात्—"यदि किसी स्त्री का पति मर गया हो या साधु बन गया हो, लापता हो या पतित हो गया हो, नपुंसक हो या और किसी स्थिति में हो, वह स्त्री ऐसी दशा में दूसरा विवाह सानन्द कर सकती है।" इसके उदाहरण में वस्तुपाल, तेजपाल प्रसिद्ध मन्त्री मौजूद हैं। अलबत्ता ख़राबी यह हुई कि इस प्रथा की बुराई होते-होते यह प्रथा लोप हो गई। द्विजों ने तो इस प्रथा को अपने यहाँ से निकाल बाहर कर दिया। अलबेरूनी ने साफ़ लिखा है कि एक स्त्री दूसरी बार शादी नहीं कर सकती। आभूषणों के विषय में यही लिखा है कि सधवा स्त्रियाँ जो आभूषण धारण करती थीं, उनसे विपरीत आभूषण विधवाओं को पहनने पड़ते थे। स्त्रियाँ मध्यकाल में सीने के कार्य में विशेष पटु थीं। स्त्रियों की, उस समय साधारण पोशाक साड़ी थी। उसे वे आधी पहिनतीं एवं आधी ओढ़ती थीं। जब कभी बाहर जाने की आवश्यकता पड़ जाती, तो दुपट्टा या चादर भी डाल लेती थीं। स्त्रियाँ नाचने-गाने के समय "पेशस्" अर्थात् कोई ज़रीन वस्त्र पहनती थीं। कुछ मिली हुई तस्वीरों से यह बात सिद्ध हो चुकी है। रानियाँ अक्सर लहँगे पहनतीं और दुपट्टे डालती थीं। मथुरा एन्टीकिटीज़ (Muttra Antiquities) की प्लेट नम्बर १४ में एक जैन मूर्ति के नीचे दो श्रावक और तीन श्राविकाएँ खड़ी हैं, जो लहँगे पहिने हुए हैं। ये लहँगे आज जैसे लहँगों के समान ही हैं। यदि कोई कह दे कि दक्षिण में तो रिवाज नहीं है, तो उसके लिए यही उत्तर है कि नाचते-गाते समय दक्षिण की स्त्रियाँ अभी भी लहँगे पहनती हैं। अजन्ता की गुफा में एक चित्र है, जिसमें एक स्त्री बच्चे को गोद में लिए हुए बैठी है। उसमें उसने छींट पहनी है, इससे मालूम होता है कि उस समय छींट पहनने का भी रिवाज था। यही नहीं, अँगिया भी छींट की ही पहनती थीं। जिस समय विदुषी राज्यश्री का विवाह हुआ था, उस समय रेशम,

रूई, ऊन और सर्प की केंचुली के समान महीन, श्वास से उड़ जाने वाले, इन्द्रधनुष के समान सतरङ्गी वस्त्रों से घर भर दिया गया था। यह बात कल्पना नहीं, महाकवि बाण ने लिखी है। स्त्रियाँ अक्सर रङ्गीन कपड़े ही पहनती थीं। विधवाएँ श्वेत वस्त्र धारण करती थीं। स्त्रियाँ बालों में पट्टी भी डालती थीं और जूड़े भी बाँधती तथा सुगन्धित पुष्प भी लगाती थीं।

स्त्रियाँ कानों को दो जगह छिदवाती थीं और उनमें सोने की बालियाँ पहनती थीं। ऐसी मूर्तियाँ अजायबघरों में विद्यमान हैं। हाथों में हाथी-दाँत के चूड़े या शङ्ख के चूड़े पहनती थीं। गले में बहुमूल्य हार और उँगलियों में उत्तम अँगूठियाँ पहनी जाती थीं। धनवान स्त्रियाँ हार भी पहनती थीं। कुछ स्त्रियाँ अपने स्तनों को खुले रखती थीं, पर बहुत सी ऐसी भी थीं, जो ढके रखती थीं। कादम्बरी में चाण्डाल कन्या भी रत्न-जटित गहने पहनती थी। इससे साफ़ मालूम होता है कि आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही वेश-भूषा थी। जात-पाँत का झगड़ा नहीं था।

क़ानून में राजनीतिक स्थिति स्त्रियों की भी मानी जाती थी। पुत्रहीन होने पर लड़की ही पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। पितृगृह से मिले हुए धन पर स्त्री का ही अधिकार रहता था। उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों में स्त्रियों का स्वतन्त्र स्थान रक्खा गया था।

पर्दे की प्रथा उस समय नहीं थी। राज्य-स्त्रियाँ दरबार तक करती थीं। ह्यूङ्सांङ्ग के लेखों से स्पष्ट है कि बालादित्य की राजमाता उसके पकड़े जाने पर मिलने गई थी। कादम्बरी में विलासवती का अनेक ज्योतिषियों एवं पौराणिकों से मिलना बताया है। ह्यूङ्सांङ्ग से राज्यश्री मिली थी। यात्री अबूज़ैद ने भी राज-दरबारों में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों का उल्लेख किया है। कामसूत्र में भी स्त्रियों का पुरुषों के साथ मेले में जाना स्पष्ट है। स्त्रियाँ लड़ाई में भी जाती थीं। सेवक से लेकर साथी तक का समस्त काम स्त्रियाँ ही करती थीं। वे घोड़ों पर सवार होती थीं और शस्त्र भी धारण करती थीं। वे पुरुष-वेश में शस्त्र धारण कर मैदान में कट मरती थीं। पश्चिमी सोलङ्की विक्रमादित्य की बहिन अकादेवी वीर एवं राजनीति में अत्यन्त कुशल थी और उसीने गोगाके पर घेरा डाला था। ये बातें करती सिद्ध हैं कि उस समय पर्दे की प्रथा न थी। यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि पर्दे की प्रथा का प्रचार मुसलमानों के ज़माने से ही हुआ है और उसी का अनुकरण हमारे यहाँ घूँघट-रूप में हुआ। इससे पहिले भारतीय स्त्रियाँ घूँघट नहीं काढ़ती थीं। आज भी दक्षिण भारत में यह प्रथा बिलकुल नहीं के बराबर है।

सती-प्रथा उस समय पवित्र मानी जाती थी। मध्यकाल में इस प्रथा का कुछ-कुछ उत्थान ही हुआ। हर्ष-चरित में उनकी माता का अग्नि में कूदना सिद्ध ही है। राज्यश्री अग्नि में कूदने से स्वयं हर्ष द्वारा बचाई गई थी। इस प्रथा का पता शिलालेखों से भी मिलता है। अलबेरूनी लिखता है—"विधवाएँ या तो अग्नि में जल मरती थीं या तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती थीं। राजाओं की स्त्रियाँ वृद्धा न होने पर सती हो जाती थीं।" किन्तु ऐसा मालूम होता है कि जिसकी इच्छा होती थी, वही सती होती थी। अस्तु—

उपसंहार

उपर्युक्त कथन से स्पष्टतया प्रतीत होता है कि मध्यकाल में स्त्रियों की सामाजिक दशा बहुत उन्नत थी, उनका आदर बहुत ज़्यादा होता था। इन बातों के लिए हम अन्य कहीं न भटक कर सीधे वेदव्यास-स्मृति की ओर ही जाते हैं। उसमें लिखा है—"पत्नी पति से पूर्व उठे। घर-बार साफ़ करे। फिर स्नान करे। स्नानोपरान्त भोजन बनावे। पति को खिलाने के बाद ख़ुद खावे। बाल-बच्चों को सँभाले और आय-व्यय की चिन्ता करे। सायङ्काल फिर भोजन बना कर पति को खिलावे।"

ये बातें सिद्ध करती हैं कि स्त्री-समस्या उस समय इतनी रहस्यमयी न थी, जितनी आज है।

—दीनानाथ व्यास, विशारद

❀ ❀ ❀

शव-संस्कार की सर्वोत्तम प्रणाली

गत जून के 'चाँद' में 'विश्व-वीणा' शीर्षक स्तम्भों के नीचे, कराची के 'यङ्गबिल्डर' मासिक पत्र से किसी पारसी सज्जन का लिखा हुआ एक लेख उद्धृत किया गया है, जिसमें पारसियों में प्रचलित अन्तिम

संस्कार की विधि को सर्वोत्तम बताया गया है। बहुत थोड़े शब्दों में लेखक के कथन का आशय यही है कि संसार के विभिन्न मतवादियों में प्रचलित शव-संस्कार-विधियों में पारसियों की शव-संस्कार-प्रणाली सर्वोत्तम है। क्योंकि इसमें ख़र्च बहुत कम पड़ता है, अधिक स्थान की भी आवश्यकता नहीं पड़ती और जन-साधारण के स्वास्थ्य को भी कोई हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं होती। लेखक ने इस सम्बन्ध में किसी मज़हबी तरीक़े को कोई महत्व नहीं दिया है और न शव-संस्कार सम्बन्धी किसी मज़हबी तरीक़े पर उसकी आस्था ही है। उसने केवल शव-संस्कार सम्बन्धी किसी सहज-साध्य विधि की ओर लक्ष्य रख कर ही अपना मत प्रगट किया है। परन्तु हमने जहाँ तक पता लगाया है, पारसियों की शव-संस्कार-प्रणाली न तो सस्ती है और न स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से ही उपयोगी मानी जा सकती है। क्योंकि मुसलमान, ईसाई तथा अन्यान्य मतवादियों की भाँति पारसियों की अन्तिम संस्कार-विधि भी बड़ी ही आडम्बरपूर्ण, ख़र्चीली और अस्वास्थ्यकर है। 'चाँद' का लेख पढ़ कर, इस सम्बन्ध में हमने बड़ौदा आर्य-कन्या महाविद्यालय के अध्यापक श्रीयुत दयाशङ्कर जी भट्ट महोदय से बातचीत की थी। आप बहुत दिनों तक बम्बई में रह चुके हैं और इस बात के जानकार भी हैं। आपके पड़ोस में एक पारसी गृहस्थ का निवास था। एक दिन शाम को उनके घर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई। यह शोक-सम्वाद सुन कर उनकी बिरादरी के पचासों सज्जन एकत्र हो गए। रात हो गई थी, इसलिए तत्काल ही शव-संस्कार की तैयारी कठिन थी। इसलिए निश्चय हुआ कि प्रातःकाल शव-संस्कार हो। फलतः उस रात को शव वहीं पड़ा रहा। पुरोहितों ने शुद्धि-क्रिया के लिए चन्दन की लकड़ी और धूप आदि मँगवाया। रात भर धूप और चन्दन जलाया गया। चन्दन और धूप दोनों ही महँगी चीज़ें हैं। बम्बई जैसे शहर में इनका मूल्य और भी अधिक होता है। फलतः पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि इस रात भर की शुद्धि-क्रिया में कितना ख़र्च पड़ा होगा।

प्रातःकाल शव को उठा कर 'मृतक-कूप' में ले जाने की तैयारी हुई। इस काम के लिए आठ आदमी बुलाए गए। शव को शहर से बाहर एक निर्दिष्ट स्थान पर उठा कर ले जाना था। इसलिए जो आठ आदमी इसके लिए नियुक्त किए गए थे, उन्होंने मज़दूरी भी काफ़ी ली होगी। क्योंकि शहर का मामला ठहरा, वहाँ मज़दूरी भी गाँवों की अपेक्षा अवश्य ही अधिक देनी पड़ी होगी। अस्तु।

पारसियों का 'मृतक-कूप' एक सुदृढ़ स्तूप की शक्ल का, काफ़ी ऊँचा होता है। इसके निर्माण में सैकड़ों नहीं, वरन् हज़ारों रुपए की लागत पड़ती है। ये लोग शव को ले जाकर उसी स्तूप पर रख देते हैं और उसे नग्न करके उस पर प्रचुर घी और दही डाल देते हैं, ताकि गृद्ध आदि मांसाहारी पक्षी शीघ्र ही आकर उसका मांस खाना आरम्भ कर दें। परन्तु बहुधा पक्षी-गण एक दिन में शव को खाकर समाप्त नहीं कर सकते, इसलिए उसका सड़ कर दुर्गन्धयुक्त हो जाना अनिवार्य है। फिर ऐसी दशा में उस मृतक-कूप के आसपास की वायु कैसे शुद्ध रह सकती है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे लाइन में अङ्कलेसर नाम का एक स्टेशन है। यहाँ पारसियों की बस्ती है। वहाँ जो उनका मृतक-कूप है, उससे अकसर दुर्गन्धयुक्त वायु निकल कर एक मील तक के अधिवासियों में त्रास का सञ्चार किया करती है। मृतक-कूप की छत पर जब एक से अधिक मुर्दे हो जाते हैं, तब तो अवस्था और भी भीषण हो जाती है।

ख़ैर, अगर तर्क के लिए मान लें कि पारसियों की शव-संस्कार-विधि ही सर्वोत्तम है, तो इसके लिए भारत के सात लाख गाँवों में बृहदाकार मज़बूत मृतक-कूप बनवाने पड़ेंगे। प्रत्येक कूप के निर्माण में एक छोटे-मोटे गिर्जे से कम ख़र्च न पड़ेगा। अगर एक कूप का ख़र्च दो हज़ार रुपए भी मान लें तो कितने रुपयों का श्राद्ध हो जाएगा, इसे पाठक स्वयं ही विचार कर लें।

इसलिए हमारी तो राय है कि शव-संस्कार की सबसे उत्तम विधि उसे जला देना ही है। एक शव को जलाने के लिए २) की लकड़ी काफ़ी है। घी, शाकल्य और अन्य पदार्थों की बात हम नहीं कहते। क्योंकि यह तो व्यर्थ का आडम्बर और धन का अपव्यय है। इससे मृत व्यक्ति का कोई लाभ नहीं।

(शेष मैटर ४१८ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)
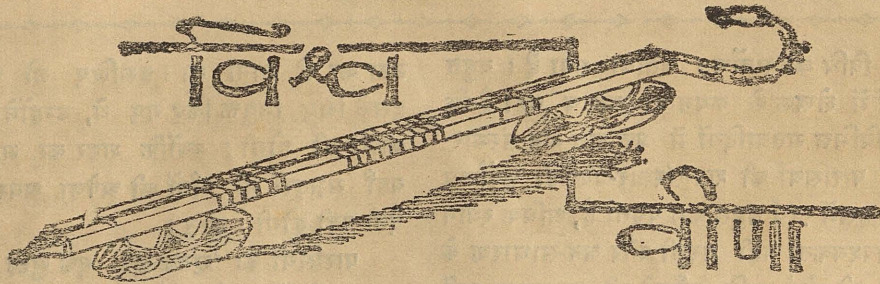
मज़हब को विदा करो !

भारतवर्ष में धार्मिक क्रान्ति का आगमन हो रहा है और उसका सबसे अधिक प्रभाव उन लोगों पर पड़ रहा है, जो अब तक धर्म के बन्धन में सब से ज्यादा बँधे रहे हैं। जुलाई के 'स्त्री-धर्म' में श्रीमती समाथीबाई नाम की महिला ने धर्म और मज़हब के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए हैं, वे उपरोक्त कथन की सत्यता को भली-भाँति प्रमाणित करते हैं। पुराने ज़माने की बात हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, पर हाल के ज़माने में धर्म-कर्म, तीर्थ, मन्दिर आदि की सब से प्रधान समर्थक और सहायक स्त्रियाँ ही रही हैं। जब उनके भावों में इस प्रकार परिवर्तन होने लगा तो अनुमान होता है कि मज़हब-रूपी क़िले की नींव खिसक रही है और उसके भूमिसात् होने का समय निकट आ पहुँचा है। नीचे हम उक्त लेख का भावानुवाद पाठकों के लाभार्थ देते हैं :—

हमारे देश का इतिहास अब ऐसे स्थान पर आ पहुँचा है, जहाँ कि वे तमाम बातें, जिनको हम भूतकाल में बिना किसी प्रकार के तर्क के सत्य मान चुके हैं, वर्तमान काल के अनुभव की कसौटी पर कसी जायँगी। हमारे क़ायदे-क़ानून, प्रथाएँ, रूढ़ियाँ, नियम आदि को, जो चिरकाल से हमारी सभ्यता के अङ्ग बने हुए हैं, आधुनिक विचारों के प्रकाश में जाँच की जायगी और फिर से उनके मूल्य का निर्णय किया जायगा। हमारा धर्म भी इस कसौटी पर कसे जाने से बच नहीं सकता, क्योंकि वह हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य में सम्मिलित है। हमारे मन्दिर भी, जो हमारे भगवान के निवास-स्थान-स्वरूप माने जाते हैं और जिनके नाम पर पुजारी लोग युगों से लोगों को आशीर्वाद देते आए हैं, अब दूसरी ही दृष्टि से देखे जायँगे। उनके सम्बन्ध में अब यह प्रश्न उठता है कि ये पत्थर के महाकाय भवन सचमुच हमारी संस्कृति के स्मारक हैं अथवा उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही है। कलाविद् भले ही उनकी प्रशंसा के गीत गाएँ और अन्य लोग भी भले ही उनका अनुकरण करें, पर तर्कशील लोगों को उनके विषय में स्वतन्त्र रीति से विचार करना आवश्यक है। इनके सम्बन्ध में इतिहासज्ञों का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "ऐसे विशाल और साथ ही निरर्थक भवनों का निर्माण प्रकट करता है कि उनके बनवाने वाले राजा लोग अवश्य ही अत्याचारी होंगे और उनकी प्रजा ग़ुलाम होगी। चाहे उनके बनवाने वाले कैसे भी धनवान क्यों न रहे हों और चाहे उन्होंने कितना भी अधिक ख़र्च क्यों न किया हो, पर अगर ये भवन स्वाधीन लोगों से पूरी मज़दूरी देकर बनवाए गए होते, तो उनका बन सकना किसी प्रकार सम्भव न था। × × × यह स्पष्ट है कि उस समय के लोग पशुओं से कुछ ही बेहतर हालत में थे और उनसे बेगार में ज़बर्दस्ती काम कराया जाता था।" ऐसी दशा में जब ख़ुद देव-मन्दिर ही निर्दयता और निरङ्कुशता की नींव पर बने हैं, तो उस 'धर्म' के लिए क्या कहा जाय, जिसके वे निदर्शक हैं।

भारतवर्ष में मज़हब ने—चाहे उसका दर्शनशास्त्र कैसा भी महत्वपूर्ण क्यों न हो—समाज की उच्च श्रेणियों का पक्षपात किया है और नीची श्रेणियों के साथ, जिनमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं, घोर अत्याचार किया है। इसने जनता के एक बहुत बड़े भाग को, जो वास्तव में परिश्रम करता है और जीवन-निर्वाह की सामग्री उत्पन्न करता है, दासता की परिस्थिति में पहुँचा दिया। निम्न-लिखित

उद्धरण से उपरोक्त कथन की सत्यता किसी हद तक प्रकट हो जायगी। स्मृतिकारों के मत से "अगर शूद्र वर्ण का कोई व्यक्ति उस आसन पर बैठे, जिस पर उससे ऊँचे वर्ण वाले बैठते हैं, तो या तो उसे देश-निकाला दिया जाना चाहिए या कोई अन्य यन्त्रणाजनक और अपमानपूर्ण दण्ड मिलना चाहिए; अगर वह उच्च वर्ण वालों के विरुद्ध निन्दात्मक शब्द उच्चारण करे तो उसका मुँह जला देना चाहिए; अगर वह वास्तव में उनका अपमान करे तो उसकी जीभ काट डालनी चाहिए; अगर वह किसी ब्राह्मण को यन्त्रणा पहुँचावे तो उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए; अगर वह ब्राह्मण के साथ एक ही आसन पर बैठ जाय तो उसके हाथ-पैर काट डालने चाहिए; अगर वह ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से धर्मशास्त्रों को सुन भी ले तो उसके कानों में जलता हुआ तेल डाला जाना चाहिए; अगर वह उन शास्त्रों को कण्ठाग्र कर ले तो उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए; यदि वह कोई अन्य अपराध करे तो उसे उच्च वर्ण वालों की अपेक्षा कठोर दण्ड दिया जाना आवश्यक है। पर यदि कोई उच्च वर्ण वाला शूद्र की हत्या कर डाले तो उसका दण्ड वही है, जो एक कुत्ता या बिल्ली या कौवे के मारने वाले को मिलता है।" क्या वर्तमान युग 'धर्म' के नाम पर इस प्रकार के विचारों को सहन कर सकता है?

मज़हब ने स्त्रियों को जो दर्जा दिया है, वह शूद्र की अपेक्षा थोड़ा ही बेहतर है। यद्यपि 'स्त्री' शब्द ही निन्दापूर्ण है, पर शास्त्रों ने उसे कुछ आध्यात्मिक महत्व प्रदान करके सन्तुष्ट करने की चेष्टा की है। धार्मिक क्रियाओं और यज्ञ आदि में सम्मिलित करके उसे बहकाया गया है। पर अपनी अज्ञानावस्था के कारण वह यह नहीं समझ पाती कि उसे वे सामान्य अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं जो प्रत्येक नर-तन धारी को प्राप्त हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे किसी न किसी पुरुष के अधीन रहना पड़ता है, चाहे वह पिता हो, पति हो या पुत्र। स्वाधीनता और ज्ञान से वञ्चित होकर स्त्री समाज की ग़ुलाम होने के सिवा और किसी अर्थ की नहीं रहती। क्या इसका उत्तरदायित्व मज़हब पर नहीं है? क्या यह परिस्थिति अधिक समय तक क़ायम रहनी चाहिए।

नवीन युग पुकार कर कह रहा है कि इस प्रकार की तमाम असभ्य प्रथाओं का अन्त होना चाहिए, और उस मज़हब की जड़ पर भी कुठाराघात होना चाहिए, जो इन प्राचीन और जङ्गलीपन की बातों का कारण है। मज़हब ने जाति, सम्प्रदाय और लिङ्गभेद सम्बन्धी जो नक़ली भेदभाव उत्पन्न किए हैं, उनको ठोकर मार कर हटा देना चाहिए और उनके कारण जो लोग अभी तक अत्याचार सहते रहे हैं तथा पतित बने हुए हैं, उनको अपना अधिकार हस्तगत करना चाहिए। मज़हब की श्रद्धा और उसकी आज्ञाओं के प्रति सम्मान-भाव ने बड़ा उत्पात किया है। और अब हमको विवेकपूर्वक इस बात का निर्णय करना चाहिए कि क्या अभी मज़हब को विदा कर देने का समय नहीं आया है?

❁ ❁ ❁

(४१७वें पृष्ठ का शेषांश)

जलाने की प्रणाली को आजकल के वैज्ञानिकों ने भी पसन्द किया है। इससे वायु के दूषित होने की तो कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती। रोग फैलाने वाले कीटाणु उसी शव के साथ ही जल कर भस्म हो जाते हैं। क़ब्रिस्तान की तरह इसके लिए विस्तृत स्थान की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। गाँव से बाहर किसी वन में या नदी किनारे लकड़ी एकत्र करके जला सकते हैं। इससे शव भी छीछालेदर से बच जाता है और यह तरीक़ा सबसे आसान भी है।

❁ ❁ ❁

सनातनी या सुविधावादी?

कुछ समय से हिन्दू-समाज में अछूतों का प्रश्न ज़ोर पकड़ रहा है और उन लोगों में एक नई जाग्रति भी, जिसका कुछ समय पहले पता भी न था, उत्पन्न हो रही है। अछूतों में एक दल ऐसा पैदा हो गया है, जो ऊँची जाति के हिन्दुओं से अलग हो जाने का प्रचार करता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो मुसलमान या ईसाइयों से मेल-जोल बढ़ाने का समर्थन करते हैं। एक तीसरी श्रेणी के अछूत भी हैं, जो मन्दिर-सत्याग्रह

आदि करके समाज में हलचल मचा रहे हैं। इस परिस्थिति को देख कर हिन्दुओं के कितने ही समझदार नेताओं को चिन्ता हुई है और वे किसी उपाय से अछूतों को सन्तुष्ट रखने और उनको हिन्दू-समाज का एक लाभदायक अङ्ग बनाए रखने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे ही लोगों में से एक माननीय मालवीय जी हैं। आप कई वर्षों से अछूतों को मन्त्र-दीक्षा देते हैं, ताकि उसका जप करके वे ऊँचे वर्ण वाले लोगों के समकक्ष हो सकें। कितने ही कूप-मण्डूक सनातनी मालवीय जी के इस काम पर बहुत बिगड़ते हैं और उनको 'अधार्मिक', 'आर्य-समाजी' आदि के नाम से सम्बोधन करते हैं। दूसरी तरफ़ सामाजिक क्रान्ति के पक्षपाती मालवीय जी के इस कार्य को अछूतों को बहकाने और मार्गच्युत करने वाला बतलाते हैं। इसी प्रकार के विचार रखने वाले एक लेखक ने मालवीय जी के कृत्य की आलोचना करते हुए गुजराती के 'प्रजामित्र केसरी' नामक साप्ताहिक पत्र में एक लेख लिखा है, जिसका आशय यहाँ दिया जाता है :—

'ग़रज़ पड़ने पर गधे को भी बाप कहना पड़ता है'—इस तरह की कहावत प्रसिद्ध है। इसके अनुसार अगर ग़रज़ पड़ने पर अछूतों को अपनाना पड़े तो इसमें नवीनता क्या है? × × × हमको समाचार मिला है कि कट्टर सनातनी पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक ऐसी ही विचित्र योजना की है। उन्होंने बनारस के 'आज' में एक सूचना प्रकाशित कराई है कि अन्त्यजों को ऊँचा उठाने के लिए उनको मन्त्र-दीक्षा देनी चाहिए और अन्त्यजों को उनका जप ऊँचे वर्ण के हिन्दुओं के साथ बैठ कर करना चाहिए। पण्डित जी की सम्मति है कि मन्त्रों का जप करने से अन्त्यज भगवान के निकट पहुँचेंगे और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन कर सकेंगे। इसलिए सनातनधर्म के आचार्यों का कर्तव्य है कि दशहरा या निर्जला एकादशी के दिन गङ्गा आदि पवित्र नदियों में अन्त्यजों को स्नान कराके मन्त्र-दीक्षा दें। × × × 'धर्मभूषण' पण्डित मालवीय जी की यह सूचना बड़ी अद्भुत है। इस विज्ञान-प्रधान बीसवीं सदी में जो मनुष्य ऐसा कहता है कि केवल मन्त्र जपने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी, उसके विषय में आशङ्का होती है कि उसका दिमाग़ यथास्थान है या नहीं?

मूर्ख या ढोंगी?

इस तरह का प्रस्ताव करने वाले व्यक्तियों के विषय में आजकल इसी सिद्धान्त पर उपनीत होना पड़ता है कि या तो वे घोर मूर्ख होते हैं या ढोंगी होते हैं। हिन्दुस्तान की सर्व-प्रधान शासन-सभा में वाग्धारा प्रवाहित करने वाला मनुष्य मूर्ख होगा, यह तो कोई मान ही नहीं सकता। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि मालवीय जी एक नम्बर के ढोंगी हैं। अगर मालवीय जी सच्चे दिल से यह प्रस्ताव करते हैं और मन्त्रों के प्रभाव में उनकी वास्तविक श्रद्धा है, तो हम उनसे कुछ सवाल पूछना चाहते हैं। अगर मालवीय जी सचमुच यह विश्वास करते हैं कि मन्त्र जपने से एक जाति का या जनता का उद्धार हो सकता है, तो वे अपने देश-भाइयों को और ख़ासकर हिन्दुओं को, ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनता से मुक्त होने के लिए, क्यों नहीं गौमुखी में हाथ डाल कर बैठने का उपदेश देते हैं? सम्प्रदायवादी मुसलमानों के मन को वश में करने के लिए तुलसी की माला का आश्रय क्यों नहीं लिया जाता? दूसरे लोग इस बात को न मानें तो कोई बात नहीं, पर स्वयम् मालवीय जी इस उपाय का अवलम्बन क्यों नहीं करते? वॉयसरॉय, गवर्नर, कमिश्नर आदि के साथ सलाह करने के लिए वे क्यों इधर से उधर दौड़ते रहते हैं? दिल्ली, शिमला और लन्दन की सड़कों पर वे किसलिए जूते तोड़ते हैं? इस प्रकार पण्डित जी के विचारों, बातों और कामों के बीच ज़मीन-आसमान का अन्तर है, यह मानना ही पड़ेगा।

'कथा के बैंगन'

सच तो यह है कि ये सब कथा के बैंगन हैं। मन्त्र जप कर अपनी उन्नति करने का उपदेश अछूतों को देने वाले अपने मन में अच्छी तरह जानते हैं कि राजनीतिक मुक्ति और सांसारिक उन्नति का मार्ग तो बरसते मेह में बम्बई की क्रुकशेंक रोड पर सत्याग्रह करके बैठे रहने

और आर्थर रोड जेल की कोठरियों में बन्द होने से ही मिल सकता है। पर हाथी की तरह इन 'धर्मभूषण' पण्डित के दिखाने के दाँत और हैं और खाने के और हैं। पण्डित जी अच्छी तरह समझते हैं कि भगवान इतना बेवक़ूफ़ नहीं है कि प्रातःकाल गङ्गा-स्नान करके नाक दबाने से, अथवा मस्तक पर भस्म लगा कर महादेव के मन्दिर में घण्टा बजाने से वह अङ्गरेज़ों की बुद्धि को हिन्दुस्तान छोड़ कर चले जाने को प्रेरित कर देगा। इसलिए वे स्वयम् राजनीतिक आन्दोलन में कूद पड़ते हैं और पूँजी वालों को इस बात की व्यावहारिक सम्मति देते हैं कि उनको अपने मूलधन की किस तरह रक्षा और वृद्धि करनी चाहिए। × × ×

जब से आर्य लोगों के पैर इस देश में पड़े हैं, तभी से अछूत आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक—तीनों प्रकार की ग़ुलामी भोग रहे हैं। इस ग़ुलामी के भीषण भार से उनका मनुष्यत्व बिलकुल कुचल गया है। इधर कई वर्षों से देश में स्वतन्त्रता का जो आन्दोलन फैलने लगा है, उसका प्रकाश इन ग़ुलामों के हृदयों तक भी पहुँचा है। अब वे भी अपनी पुरानी ज़ञ्जीरों को तोड़ फेंकने की आवश्यकता समझने लगे हैं। सनातनधर्मी हिन्दुओं के शिकार ये सात करोड़ व्यक्ति अब अपने ऊपर अत्याचार करने वालों के विरुद्ध सर ऊँचा उठाने लगे हैं और भारतीय नवयुवकों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिस उपाय का अवलम्बन किया है, उसका प्रकाश इनके हृदयों तक भी पहुँचा है। हिन्दू-जाति के ग़ुलामों में उत्पन्न हुई यह जाग्रति, हिन्दुओं की शोषण-प्रथा को अमर बनाने के लिए जन्म लेने वाले, मालवीय जी को काँटे की तरह खटकती है। इस जाग्रति के प्रवाह को रोकने के लिए मालवीय, मुञ्जे आदि तमाम हिन्दू नेता छटपटा रहे हैं और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मार्ग खोज रहे हैं। इन सबों में मालवीय जी की कौशलयुक्त योजना अनुपम है।

धर्म की अफ़ीम

मालवीय जी जानते हैं कि अछूतों को अब तक दाबे रखने का श्रेय मुख्यतः तीन शक्तियों को है:—राज्य-सत्ता, सामाजिक बहिष्कार और धर्म। इन तीनों में सब से अधिक महत्व का भाग धर्म का ही है। वैदिक हिन्दुओं के परमेश्वर माने जाने वाले रामचन्द्र जी ने स्वयं धुन्धर नाम के एक शूद्र को केवल इस अपराध के लिए जान से मारा था कि वह तप कर रहा था। कठिन से कठिन सामाजिक बहिष्कार तो सदा से अछूतों के लिए मौजूद था। पर धर्म ने तो अन्त्यजों को सदा उच्च वर्ण के हिन्दुओं के अङ्कुश में रखने के लिए एक बड़ी सेना का काम किया है। बुद्ध, महावीर आदि कितने ही हिन्दू सुधारकों ने अछूतों के सामाजिक बहिष्कार को मिटाने की चेष्टा की, पर हिन्दुओं ने उसे निष्फल कर दिया। इन धर्मगुरुओं को हिन्दुओं ने ख़रीद लिया, पर अछूतों की ग़ुलामी को ढीला न पड़ने दिया। अछूतों के दिमाग़ में इस बात को जमा देने के लिए कि ग़ुलामी करते रहना ही उनके लिए स्वाभाविक है, उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने किराए के टट्टू ब्राह्मणों से तरह-तरह के धार्मिक ढकोसलों की रचना कराई। उन्होंने बतलाया कि चारों वर्णों को ईश्वर ने बनाया है, और प्रत्येक वर्ण को क्या काम करना चाहिए, यह भी उसी ने निश्चित कर दिया है। अछूतों को सन्तोष कराने के लिए उन्होंने कर्म और पुनर्जन्म में पाप का फल पाने की बात फैलाई। हिन्दुओं के ये तमाम नीतिशास्त्र संसार के इतिहास में सामाजिक ठगी के प्राचीन से प्राचीन और बढ़िया से बढ़िया नमूने हैं। अत्यन्त दुःख में पड़ा हुआ मनुष्य जिस प्रकार आत्मघात कर लेता है, उसी प्रकार अनेक आपत्तियों से घिरे हुए अछूतों ने हिन्दू-धर्मगुरुओं के तैयार किए इस ज़हर के प्याले को पी लिया और अपने हाथ से अपने मनुष्यत्व का ख़ून कर डाला।

पर अब विज्ञान की खुली हुई हवा के प्रभाव से उस ज़हर का असर दूर होने लगा है और अछूत मनुष्य के अधिकार प्राप्त करने को खड़े होने लगे हैं। यह देख कर उनको फिर उसी ज़हर से बेहोश करने और हिन्दुओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक ग़ुलामी में पड़े रखने का प्रयत्न मालवीय जी ने आरम्भ किया है। परन्तु पण्डित जी भूल जाते हैं कि अब ज़माना बदल गया है और × × × अछूत इन चालों में नहीं फँस सकते।

❀ ❀ ❀

इनुकाई भी हैं, मारे गए। इन घटनाओं पर विचार करते हुए 'जापान मैगज़ीन' नामक पत्रिका ने आतङ्कवाद के विषय में कितनी ही विचारणीय बातें लिखी हैं, जिनमें से कुछ यहाँ दी जाती हैं :—

प्रधान मन्त्री इनुकाई की हत्या जापान के इतिहास का एक बहुत ही शोचनीय काण्ड है। कुछ नवयुवक अफ़सर एक अस्सी वर्ष के बूढ़े पर हमला करके उसे गोली से मार दें, यह ऐसी अपमानपूर्ण और लज्जाजनक घटना है कि जिसका उदाहरण हमारे देश के प्राचीन अथवा अर्वाचीन इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। उस वृद्ध ने अपने अन्तिम काल में बहुत ही साहस का परिचय दिया और हत्याकारियों को बुला कर अपने पास बैठाया और अपने विरुद्ध उनके विचारों को सुना। × × ×

फ़्रान्स के प्रेज़िडेण्ट तथा जापान के कितने ही प्रमुख सम्पत्तिशाली व्यक्तियों की हत्या, और शङ्घाई में जापानी नेताओं के प्राणों पर किया गया आक्रमण एक बड़े सत्य सिद्धान्त को प्रकट करते हैं। वह यह कि आजकल के राष्ट्र और गवर्नमेण्टें इस बात को नहीं समझतीं—और न इस पर अमल करती हैं—कि युद्धों का फल यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लगता है कि उसे भी अपने शत्रुओं को मार देने का उसी तरह अधिकार है, जिस तरह एक देश पर हमला करके उसे नष्ट कर देने का। यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि आजकल लोगों में यह भावना ज़ोर पकड़ती जाती है कि व्यक्तिगत युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। यही कारण है कि आजकल हत्याओं की संख्या प्रत्येक स्थान में बढ़ती जाती है। इस बुराई की जड़ शिक्षा की वर्तमान भ्रमपूर्ण प्रणाली है। कोई भी शिक्षा-प्रणाली जो मनुष्यों को सच्चे नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्रदान नहीं करती, अन्त में उनको बोलशेविज़्म और अराजकतावाद की तरफ़ प्रेरित करती है। अगर भावी पीढ़ी का पालन-पोषण ऐसे ढङ्ग से किया गया कि न्याय-अन्याय के सिद्धान्त पर उनका विश्वास न रहा, तो प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए स्वयम् ही क़ानून बनाने लगेगा, और जो उसके मन में आएगा, वही कार्य करेगा। इस प्रकार की मानसिक दशा का स्वाभाविक परिणाम युद्ध है। हर एक आदमी को अपने शत्रुओं को मार डालने का अधिकार है। पुराने ज़माने में सरकारें अपने विरोधियों को उनका सर काट कर चुप कर देती थीं। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के फैलने के साथ-साथ पाशविक बल के स्थान पर न्याय का महत्व बढ़ने लगा और लोग मानव जीवन की पवित्रता में विश्वास करने लगे। मनुष्य-मात्र परमात्मा की सन्तान हैं, और इसलिए सब परस्पर भाई-भाई हैं। आजकल के राष्ट्रीय स्कूलों में इस सिद्धान्त की शिक्षा नहीं दी जाती, और इस दशा में कोई आश्चर्य नहीं, अगर एक व्यक्ति असभ्यावस्था के 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्त का अनुकरण करने लगे। इसलिए सच्चे धर्म के विषय में अज्ञान ही संसार के समस्त कष्टों का कारण है। इसी कारणवश यूरोपीय महायुद्ध का जन्म हुआ था और तभी से समस्त संसार में कङ्गाली फैली है। वर्तमान राष्ट्र इस सिद्धान्त में न तो विश्वास रखते हैं, न उसे समझते हैं, और यही कारण है कि सभ्यता की रक्षा के लिए जो उपाय किए जा रहे हैं, उनका परिणाम निराशाजनक ही होता है। अन्धे लोग अन्धों को रास्ता दिखला रहे हैं और दोनों गढ़े में गिरते हैं।

प्रेमिका—मैं क्या कर सकती हूँ? माता को विवाह करने में उज़्र है।

प्रेमी—मैं तो तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, उनसे तो विवाह करना नहीं चाहता, फिर उनके उज़्र करने के क्या मानी हैं, और इसमें उज़्र करने का उनको अधिकार ही क्या है?

एक चपरासी ने बैरिस्टर साहब को अपने सेठ जी का लिफ़ाफ़ा लाकर दिया। बैरिस्टर साहब लिफ़ाफ़े को हाथ में लेकर चपरासी से बोले—सेठ जी ने इस पर पता भी नहीं लिखा।

चपरासी—हुज़ूर, सेठ जी इतनी जल्दी में थे कि पता तो पता, चिट्ठी में भी कुछ नहीं लिख सके।

जि जित्सू

पाठक जून मास के 'चाँद' में 'जि जित्सू' के सम्बन्ध में कई चित्र देख चुके हैं। इन पंक्तियों में इसी विषय पर प्रकाश डाला जायगा।

'जि जित्सू' जापानियों की मल्ल-विद्या है। यह क्रिकेट, टेनिस, बेसबॉल आदि की भाँति एक खेल ही नहीं है, बल्कि शरीर को स्वस्थ तथा पुष्ट बनाने की एक वैज्ञानिक विधि है। जापान के सिपाहियों, पुलिस वालों तथा नौसैनिकों को इसका सीखना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। कहा जाता है कि जितनी शक्ति और स्फूर्ति अन्य व्यायामों द्वारा १ वर्ष में प्राप्त होती है, उतनी इस व्यायाम से केवल छः सप्ताह में ही प्राप्त हो सकती है। जब १९०० ईस्वी में सारे संसार की शक्तियों ने चीन पर चढ़ाई की थी, उस समय इस बात का पता लगा था कि जापानी सैनिकों में कष्ट सहन करने की शक्ति सब से बढ़ कर थी। इसी प्रकार रूस-जापान-युद्ध में भी यही बात सिद्ध हुई थी। और इसका कारण यही है कि प्रत्येक सिपाही को जि जित्सू सिखाया जाता है।

डॉक्टर ईटो ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

"जब एक प्रतिद्वन्द्वी पीछे से मुझ पर हमला करता है, तो मैं उसका मुक़ाबला नहीं करता। परन्तु उसकी शक्ति को उसी की पराजय के लिए प्रयोग में लाता हूँ। यही सिद्धान्त 'जि जित्सू' का मूल मन्त्र है। हम जापानी लोग आत्म-समर्पण करके विजय प्राप्त करते हैं। × × ×"

इस प्रणाली का जन्म जापान में लगभग २,५०० वर्ष पूर्व हुआ था। कुछ समय पूर्व इसका प्रचार जापान की 'सामुराई' नाम की जाति में ही था, जिस प्रकार हमारे यहाँ अस्त्र-विद्या का प्रचार केवल क्षत्रियों में ही था। उस जाति की स्त्रियों में भी इसका प्रचार था। अब इसका प्रचार सर्व-साधारण में हो गया है और इसे अब वहाँ का 'राष्ट्रीय व्यायाम' समझा जाता है। इसका प्रयोग स्वस्थ शरीर बनाने के लिए अधिक किया जाता है, न कि किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए। इसका प्रचार स्कूलों और कॉलेजों में भी है और प्रत्येक बालक-बालिका को इसे अवश्य ही सीखना पड़ता है। इसके साथ ही धनुर्विद्या तथा तलवार चलाना भी सिखाया जाता है। जि जित्सू की शिक्षा क्लास के कमरों में ही दी जाती है। यह शिक्षा एक दिन में कई घण्टों तक दी जाती है।

जो इस विद्या में असाधारण प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं, उनको 'ब्लैक बैल्ट' नामक उपाधि मिलती है। जो इस उपाधि को धारण करते हैं, उन्हें पीछे से इस विद्या के अन्य भेद बताए जाते हैं, जैसे किसी आक्रमणकारी को एक घूँसे में या कहीं थोड़ा सा ही बल-प्रयोग करके मार डालना,

अथवा इस प्रकार आहत हुए व्यक्ति को स्वस्थ बना देना आदि। इन 'ब्लैक बैल्टों' को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वे इन भेदों को सिवाय जापानियों के किसी अन्य व्यक्ति पर उद्घाटन न करेंगे। इसके ऊपर की कुछ और श्रेणियाँ हैं, परन्तु उन तक पहुँचने वालों की संख्या बहुत कम होती है।

जब व्यायाम पूरा हो जाता है, तो विद्यार्थी स्नान करने तथा तैरने के लिए जाता है। जहाँ तक हो सके, जल ठण्डा हो, यदि वह सहन न हो सके, तो उसमें कुछ गर्म पानी मिलाया जा सकता है। इसके बाद एक तौलिया से शरीर को ख़ूब रगड़ा जाता है।

भारत में भी अब इस विद्या का प्रचार हो रहा है। अनेक स्त्रियाँ भी इसे सीखने लगी हैं। वास्तव में भारतीय महिलाओं को तो इसकी परम आवश्यकता है, क्योंकि आजकल की दशा में आए-दिन उन पर आततायियों के अत्याचार होते रहते हैं।

—रतन प्रेम

❀ ❀ ❀

वायु-सेवन

एक मिनट में एक व्यक्ति १६-१८ श्वासें लेता है। वह पूरे दिन में लगभग २६,००० बार श्वास लेता है और उसको इसका पता भी नहीं लगता। श्वास लेने के कार्य में लगभग १०० मांस-पेशियाँ भाग लेती हैं। प्रत्येक श्वास में हम २५-३० इञ्च वायु लेते हैं। इसका अर्थ है पूरे दिन में लगभग १६-२० सेर वायु। यह वायु फेफड़े के १५ वर्ग फ़ीट स्थान में चक्कर लगाती है। फेफड़े में यह रक्त को शुद्ध करती है—ऑक्सीजन (प्राणवायु) रक्त में चली जाती है और कारबन डाईऑक्साइड बाहर निकल आती है। फेफड़ों में सदैव १६० क्यूबिक इञ्च वायु भरी रहती है। वायु जितनी ही स्वच्छ होगी, शरीर के लिए उतना ही लाभ करेगी।

❀ ❀ ❀

नारङ्गी का रस

हाल ही में कुछ वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि दुग्ध में नारङ्गी का रस मिला देने से बच्चों के लिए अधिक पाचक हो जाता है।

आधी छटाँक रस निकाल कर आध सेर दूध में मिलाया जाता है। इस प्रकार दूध पिलाने से यह पता लगा है कि बच्चों का वज़न अधिक बढ़ता है, आँतों के रोग बहुत कम होते हैं और ख़ुराक को घटाने-बढ़ाने आदि की झञ्झट नहीं करनी पड़ती। यदि नारङ्गी खट्टी हो, तो रस कम मिलाना चाहिए, नहीं तो पेट में वायु भर जाने का डर रहता है।

—दयाशङ्कर, बी० एस-सी०

पावस-प्रवाह

[श्री० ब्रजनीनन्दन चतुर्वेदी "चन्द्र"]

प्रबल प्रचण्ड मारतण्ड ते तपित छिति, आतप मिटाय ताहि सरस बनावैगो।
"चन्द्र" सर कूप औ तड़ाग बावली के उर, पय के प्रवाह ते नवीन ओज लावैगो।
पीतम संयोग ते बुझावैगो विरह-आग, व्यथित वियोगिनि उर मोह सरसावैगो।
छावैगो वितान हरि-बेलि ते धरा पै सुख, शान्ति सरसावत सु-पावस अब आवैगो।

पाँच उँगलियों वाली नारङ्गी

जापान में एक विचित्र प्रकार का वृक्ष पाया जाता है। इस वृक्ष की लम्बाई लगभग २ गज़ होती है और इस पर उगने वाली नारङ्गियाँ पाँच उँगलियों वाली होती हैं। इसकी शाखाएँ गाँठों से भरी हुई होती हैं और वृक्ष के तने से लिपटी हुई रहती हैं। फलों की रक्षा करने के लिए इस पर नुकीले छोटे-छोटे काँटे भी होते हैं। जब मञ्जरी निकलती है, तो उसकी भीनी सुगन्ध बड़ी मनमोहक होती है। सबसे अधिक आश्चर्य की चीज़ फल होता है। इसमें मनुष्य के हाथ की भाँति एक अँगूठा और चार अँगुलियाँ होती हैं और साथ ही उन पर नाख़ून भी लगे हुए होते हैं। फलों की लम्बाई भी मनोरञ्जक है। कोई-कोई फल तो लगभग १ फ़ुट लम्बा होता है। रङ्ग इसका पीला होता है। यह जून या जुलाई में ही फलता है। फल की सुगन्धि भी बहुत तेज़ होती है। यहाँ तक कि जिधर की वायु होती है, उस ओर यह सुगन्धि एक मील तक जाती है।

❀

संसार का सबसे बड़ा होटल

न्यूयॉर्क में वाल्डॉर्फ़-एस्टोरिया नाम का एक विशाल होटल हाल ही में प्रेज़िडेण्ट हूवर ने खोला था। इसके बनाने में लगभग ८० लाख पौण्ड अर्थात् लगभग १० करोड़ रुपया व्यय हुआ था। इसमें ४६ मञ्ज़िलें हैं। और कुल २,२५३ कमरे हैं, एक अस्पताल है तथा ४ नाच-घर हैं। प्रत्येक कमरे के साथ एक-एक स्नानगृह भी है। इसमें लगाने के लिए ४,००० चित्र ख़रीदे गए हैं, जिनका निर्वाचन न्यूयॉर्क के कलाभवन द्वारा सञ्चालित विशेषज्ञों की एक कमिटी ने किया था। अनेक कमरों को भीतर से अङ्गरेज़ी ढङ्ग से सजाया गया है, ताकि अङ्गरेज़ यात्री उन्हें पसन्द कर सकें। यात्रियों की सुविधा के लिए कई कमरों के लिए एक अलग भोजनालय बनाया गया है। अपने ढङ्ग का यह संसार में एक ही होटल है।

❀

पैरिस का मूल्य

यदि पैरिस आज बिक्री के लिए बाज़ार में रक्खा जाय, तो उसका मूल्य कम से कम २२ अरब रुपए होगा—ऐसा विशेषज्ञों का ख़्याल है। इसी प्रकार लन्दन का मूल्य ३८ अरब तथा न्यूयॉर्क का मूल्य ५५ अरब लगाया गया है।

पैरिस के कैथीड्रल नौत्रदाम का मूल्य १० करोड़, ईफ़ेल टॉवर का मूल्य ८ करोड़, एलिसी के भवन का ३० करोड़, लुक्नेमबूर्ग भवन का १८ करोड़, ओपेरा का ३० करोड़, सड़कों का २ अरब, अण्डरग्राउण्ड रेलवे का ५० करोड़ तथा लूव्र के भवनों का मूल्य ६ अरब लगाया गया है।

❀

कबूतर सिपाही

युद्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार का कार्य मानव-सिपाहियों तथा मैशीनों से ही लिया जाता है, परन्तु विगत चीन-जापान युद्ध में कबूतरों ने भी युद्ध में भाग लिया था। मञ्चूरिया के जङ्गलों में होकर आवागमन के लिए कोई भी सुविधा नहीं है। इन कबूतरों का कार्य इधर से उधर सन्देश ले जाना था। जापानियों ने इनका प्रयोग अधिकतर किया था और इनके द्वारा अनेक जापानी सिपाहियों की रक्षा समय पर सम्भव हो सकी।

एक बार एक कबूतर पर मार्ग में किसी जङ्गली पक्षी ने आक्रमण किया और उसे चुटीला बना दिया। परन्तु वह कबूतर किसी प्रकार अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया और वहाँ उसका सन्देश मिल जाने पर जापानी सेना की रक्षा के लिए मोटर द्वारा अधिक सिपाही भेज दिए गए।

संसार की मोटरें

संसार के विभिन्न देशों में कितनी मोटरें प्रतिवर्ष नई रजिस्टर की जाती हैं, यह नीचे के अङ्कों से विदित हो जायगा :—

फ़्रान्स	...	...	१,७८,०००
अमेरिका	...	...	१,२६,०००
इङ्गलैण्ड	...	...	६३,०००
जर्मनी	...	...	४९,७००
कनाडा	...	...	४१,६००
इटली	...	...	२८,०००
बेलजियम	...	...	१७,७००
हॉलैण्ड	...	...	१७,०००
अफ़्रीका	...	...	१४,६००
स्वीडन	...	...	१४,३००

इस समय अमेरिका में २,६६,९१,०००; इङ्गलैण्ड में १५,५८,०००; फ़्रान्स में १५,००,०००; कनाडा में १२,१५,००० तथा जर्मनी में ६,५९,००० मोटरें हैं।

विचित्र कछुआ

अमेरिका में एक ऐसा कछुआ है, जिसके दो सिर हैं। इसका शेष शरीर अन्य कछुओं की भाँति ही है। दोनों सिर अलग हैं और वह उन दोनों से ही काम ले सकता है। परीक्षा करने पर विदित हुआ कि दोनों सिरों की रक्त की नलियाँ तथा ज्ञान-तन्तु आदि अलग-अलग हैं। यह कछुआ इस समय अमेरिका के प्राणी-विज्ञान-कॉलेज में है।

सबसे बड़ा जहाज़

संसार के भिन्न-भिन्न देशों में संसार का सब से बड़ा जहाज़ बनाने की प्रतियोगिता चल रही है। कभी जर्मनी इसमें बाज़ी मार ले जाता है, कभी इङ्गलैण्ड। इस ओर तो २०,००० टन से बड़े जहाज़ देखने को भी नहीं मिलते, परन्तु अमेरिका तथा इङ्गलैण्ड के बीच बहुत बड़े जहाज़ चलते हैं। अभी हाल में इङ्गलैण्ड में एक नया जहाज़ बनाया गया है, जिसका वज़न ७३ हज़ार टन है। उसकी चार फ़नल्स ४०-४० फ़ीट चौड़ी हैं। यह जहाज़ एक घण्टे में लगभग ५० मील चलेगा।

एक आधुनिक घड़ी

जापान की राजधानी टोकियो के ऊएनो स्टेशन के सामने की एक इमारत में एक आधुनिक घड़ी लगाई हुई है, जो संसार की सब से बड़ी घड़ी समझी जाती है। इसकी सेकेण्ड की सुई की लम्बाई ८·४ मीटर है तथा उसका वज़न ३३८ किलोग्राम है। पूरी घड़ी का वज़न ५०९० किलोग्राम है। मिनट की सुई की लम्बाई ७·६ मीटर तथा घण्टे की सुई की लम्बाई ६ मीटर है। इसके बनने के पहले न्यूजर्सी, अमेरिका की एक घड़ी को संसार की सब से बड़ी घड़ी होने का गौरव प्राप्त था। परन्तु अब वह घड़ी जापान की घड़ी के सामने नहीं ठहर सकती, इसका सञ्चालन बिजली के द्वारा होता है।

चीन की स्त्रियों में जाग्रति

[श्री० अभ्यङ्कर वर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०]

आज से कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष की तरह चीन में भी स्त्रियों की दशा बड़ी ही हीन थी। जिस तरह यहाँ के कुछ समाजों में लड़की का पैदा होना ईश्वरीय अभिशाप माना जाता है, उसी तरह वहाँ भी माना जाता था और जिस तरह हमारे देश के कुछ उच्च-वंशोद्भव क्षत्रिय आदि, शायद ससुर बनने की तौहीन से बचने के लिए, पैदा होते ही नमक खिला कर लड़कियों को मार डालते थे, उसी तरह चीन के उच्चवंशीय भी अपनी लड़कियों को जन्मते ही शमन-सदन की राह दिखा देते थे! दैवयोग से या माता-पिता की असीम अनुकम्पा से अगर कोई भाग्यवती जीवित बच जाती थी, तो उसे आजन्म अपने मायके वालों की या ससुर-गृह की ग़ुलामी करनी पड़ती थी। जिन वंशों में लड़कियों को जन्मते ही मार डालने की प्रथा नहीं थी, वहाँ भी उनका सारा जीवन पुरुषों की ग़ुलामी में ही व्यतीत होता था। छोटेपन में ही उनके पैरों में लोहे के जूते पहना दिए जाते थे, ताकि वे अधिक चल-फिर न सकें। साथ ही स्त्री का छोटा पैर होना सौन्दर्य में भी दाख़िल था।

विवाह आदि के मामले में लड़कियों को बोलने का कोई हक़ नहीं था। अभिभावक जिसे चाहते थे, अपनी इच्छानुसार कन्या-सम्प्रदान कर सकते थे। पति-गृह में भी उनकी हैसियत एक दासी की तरह होती थी। घर के बड़ों और पति की आज्ञाओं का पालन करना, बचा-खुचा खाकर जीवन यापन करना और मोटा-झोटा पहन कर लज्जा निवारण करना, उनका कर्त्तव्य था। घर के भीतरी या बाहरी प्रबन्ध में उनका कोई हाथ नहीं होता था। पतिदेव पत्नी के जानोमाल तथा इहलोक और परलोक के मालिक समझे जाते थे। उन्हें पत्नी के साथ मनमाना व्यवहार करने का मानो जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त था। यहाँ तक कि इच्छा होने पर या आवश्यकता पड़ने पर वह अपनी पत्नी को दूसरे के हाथ बेच भी सकते थे। माता को अपनी सन्तान पर कोई अधिकार नहीं होता था। पति के मरने पर उसके निकट सम्बन्धी उसकी सारी सम्पत्ति के मालिक और उसके बच्चों के अभिभावक बन जाते थे। माताएँ अपने अभिभावकता के अधिकार से भी वञ्चित थीं। स्त्रियों को पुनर्विवाह का भी अधिकार न था और न वे किसी भी हालत में अपने पतियों को छोड़ ही सकती थीं। स्त्री-शिक्षा की भी वही दशा थी, जो आज से कुछ साल पहले हमारे देश में थी। पढ़ना-लिखना स्त्रियों के लिए महापाप था। उनका वैधव्य जीवन बड़ा ही निकृष्ट था; पति के मर जाने पर उन्हें असीम दुर्गति का सामना करना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह कि गत सन् १९२५ तक चीन की स्त्रियों की दशा बड़ी ही गई बीती थी।

परन्तु सन् १९२६ में एकाएक ज़माने ने पलटा खाया। चीन में भीषण राज्य-क्रान्ति आरम्भ हुई। सारे देश में उथल-पुथल मच गया। युवकों में विचित्र जाग्रति फैल गई। पुरानी रूढ़ियों को लोगों ने बुरी तरह ठुकराना आरम्भ कर दिया। युवकों के साथ ही युवतियों में भी जाग्रति के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। इसी समय चीनी क्रान्ति के प्रधान नायक डॉक्टर सन्यात्-सेन ने स्त्रियों और पुरुषों के समानाधिकार की आवाज़ बुलन्द की। डॉक्टर महोदय की धर्मपत्नी श्रीमती सन्यात्-सेन ने भी इस कार्य में बड़े

उत्साह और लगन से भाग लिया। उनकी अनवरत चेष्टाओं ने चीनी स्त्रियों में एक नया जीवन ला दिया। स्त्रियों ने अपनी कई समितियाँ स्थापित कीं और युवकों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर देश की क्रान्ति को सफल बनाने की चेष्टा में लगीं। साथ ही उन्होंने अपनी बहिनों में जाग्रति फैलाना भी प्रारम्भ कर दिया। पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने लोगों के घरों में जा-जाकर नव-जागरण का सन्देश सुनाया। सन् १९२६ से लेकर १९३१ तक के कई वर्षों में ही चीन की महिलाओं ने अपनी आशातीत उन्नति कर ली। कहाँ तो वे लोहे के जूते पहन कर चलने-फिरने से मजबूर थीं और कहाँ अब हर एक काम में पुरुषों की समता करने को तैयार हो गईं। रूढ़ियों के ग़ुलामों ने इस जाग्रति को रोकने की भी काफ़ी चेष्टा की। स्त्रियों की उन्नति के मार्ग में ख़ूब अड़ङ्गे लगाए गए। पुराने रीति-रिवाज़ों की ख़ूब दुहाई दी गई। परन्तु स्त्रियों ने इन दक़ियानूसी विचारों पर ध्यान भी नहीं दिया। मानो इन बाधाओं ने उन्हें और भी उत्साहित कर दिया। सन् १९३१ के अप्रैल में उन्होंने घोषणा की कि आगामी अमुक तारीख़ को चीनी स्त्रियों का बड़ा जुलूस यूरोपियन पोशाक में निकलेगा, अगर किसी में रोकने का साहस हो तो आकर रोक ले। इसी बीच में उन्होंने एक 'एण्टी ओल्ड मिशन' स्थापित किया, जिसका उद्देश्य था, समस्त पुराने रीति-रिवाजों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा करना। हज़ारों स्त्रियों ने अपने बाल कटवा दिए, लोहे के जूतों को प्रणाम किया, पुराने ढङ्ग के पहनावे को उतार फेंका और घोषणा की कि अब हम अपने पतियों की ग़ुलाम नहीं, वरन् उनकी अर्द्धाङ्गिनी या धर्मपत्नी होकर रहेंगी। पुरुषों को बाध्य किया कि वे उनका अधिकार स्थायी रूप से स्वीकार करें। पुरुषों ने भी बिना ननुनच के उनकी माँगें स्वीकार कर लीं। जो लोग उनका विरोध करते थे, वे अपना सा मुँह लेकर रह गए।

अभी कुछ दिन हुए चीनी स्त्रियों की कॉन्फ्रेन्स ने घोषणा की है कि अगर पुरुष अपनी स्त्री को तलाक़ दे सकता है, तो स्त्री को भी अधिकार है कि जब चाहे पति को छोड़ दे। स्त्रियों के आन्दोलन करने पर चीन के प्रजातन्त्र ने उनका यह अधिकार स्वीकार कर लिया है कि अगर कोई पति अपनी पत्नी को अकारण छोड़ दे तो पत्नी को यह क़ानूनी अधिकार प्राप्त होगा कि वह क़ानून द्वारा अपने भरण-पोषण का ख़र्च वसूल करे।

चीन को स्वतन्त्र कराने में भी वहाँ की स्त्रियों का काफ़ी हाथ है। जिस तरह अपनी मातृभूमि को बन्धन-मुक्त करने में चीनी नवयुवकों ने अपना सर्वस्व विसर्जन कर दिया है, उसी तरह वहाँ की नवयुवतियों ने भी काम किया है। इसीलिए यह आशा की जाती है कि चीनी राष्ट्र उनकी सभी उचित माँगों को स्वीकार कर लेगा।

❦

वकील पिता—देखो स्कूल से तुम्हारे सम्बन्ध में कितनी ख़राब रिपोर्ट आई है!

पुत्र—पिता जी, ज़रा ग़ौर से देखें, रिपोर्ट कहीं जाली न हो।

❁　❁　❁

एक जन्टलमैन अपनी प्रेमिका के लिए जो साइकिल ख़रीद कर लाए थे उसकी सीट कुछ छोटी साबित हुई। आपने साइकिल वाले को लिखा—"जो साइकिल मैं आपसे ख़रीद कर लाया था वह मेरी प्रेमिका को छोटी होती है, कृपया इसे बदल कर ऊँची सीट की साइकिल भेज दें।" उत्तर मिला—"एक बार की बेची हुई चीज़ को वापस लेने का नियम नहीं है; आप अपनी प्रेमिका बदल सकते हैं।"

❦

माँ—बेटी, इतनी रात हो गई, तुम अभी तक सोईं नहीं, छोटी लड़कियों को जल्दी सोना चाहिए।

बेटी—अम्माँ, तुम्हारी बात का कोई ठीक नहीं। रात को तुम यह कहती हो और सुबह जब मैं देर तक सोती हूँ तब कहती हो कि तू इतनी बड़ी लौंठा हो गई अभी तक सो रही है, आख़िर सच-सच बताओ, मैं बड़ी हूँ या छोटी?

❁　❁　❁

प्रेमी—सच बतलाओ, तुम मेरे साथ शादी करोगी या नहीं?

प्रेमिका—नहीं, मैं शादी न करके सदा तुम्हारी बहिन ही बनी रहना पसन्द करती हूँ।

प्रेमी—हाँ, यह भी अच्छा तरीक़ा है।
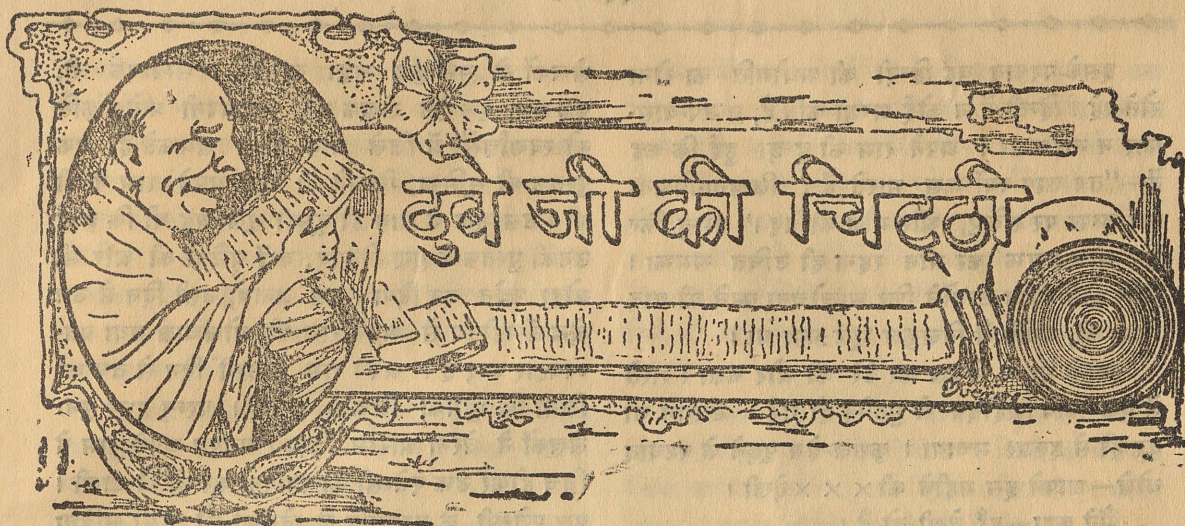
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आपको यह जान कर बहुत ही हर्ष होगा कि अपने राम ने हाल ही में एक एजेन्सी खोली है। इस एजेन्सी का अत्यन्त शुभनाम 'पुस्तक तथा लेखक आलोचन एजेन्सी' है। वह एजेन्सी क्या करेगी—यह बतलाने के पूर्व यह बता देना आवश्यक है कि इस एजेन्सी की आवश्यकता ही क्यों पड़ी। आवश्यकता आविष्कारों की जननी है, इसलिए इसकी आवश्यकता का कारण स्वयम् आवश्यकता ही है।

इन दिनों लोगों ने अपने राम की नाक में दम कर दिया था। किस प्रकार ? सुनिए ! उस दिन बाहर जाने का अवसर आया। जिस नगर में गए थे, उसी नगर में हिन्दी के एक प्रतिष्ठित लेखक रहते हैं। जी में आया कि चलो इनसे भी मिलते चलें। सो जनाब, उनके पास पहुँचे तो उन्होंने देखते ही अपना घर सिर पर उठा लिया—"आइए-आइए, दुबे जी, ख़ूब आए ! कब आए ? आपके तो दर्शन ही नहीं होते, इत्यादि, इत्यादि।" इन बातों का जवाब अपने राम ने भी वही दिया, जो कि लोग बहुधा दिया करते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने पूछा—"कहिए, आजकल क्या लिख रहे हैं ?"

अपने राम बोले—क्या सदैव कुछ न कुछ लिखते रहना आवश्यक है ?

वह बोले—बेशक ! लेखक कभी ख़ाली बैठ ही नहीं सकता। मुझी को देखिए, नित्य कुछ न कुछ लिखता हूँ। जिस दिन कुछ नहीं लिखता, उस दिन ऐसा प्रतीत होता है कि आज का दिन बिलकुल बेकार गया।

अपने राम ने कहा—तब तो आप पूरे लेखन-मशीन हैं और धन्य हैं। अपने राम में इतनी क्षमता नहीं है।

वह बोले—होनी चाहिए ! आप जैसे लोगों में क्षमता न होगी तो फिर होगी किसमें ?

अपने राम ने उत्तर दिया—आप जैसे लोगों में।

उन्होंने हँस कर कहा—नहीं, आप में भी होनी चाहिए।

कुछ देर तक इसी प्रकार की बातचीत होती रही। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी एक नई पुस्तक मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—देखिए, मेरा यह उपन्यास हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसे पढ़िएगा, आप ख़ुश हो जायँगे। मेरा अपना विचार यह है कि मेरी यह पुस्तक मेरा मास्टर-पीस है। आप इसे ध्यानपूर्वक पढ़िएगा। और यदि कष्ट न हो तो इसकी एक विस्तृत आलोचना लिख कर किसी मासिक पत्र में भेज दीजिएगा।

मैंने पुस्तक धन्यवादपूर्वक ले ली और बिना यह निश्चय किए हुए कि मैं पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ूँगा भी या नहीं, उनसे वादा किया कि आलोचना अवश्य लिखूँगा।

इसके पश्चात् वह हिन्दी की अधोगति का रोना रोते रहे। हिन्दी में न कोई अच्छा कवि है, न उपन्यास-कार न नाटककार! अपने राम की इच्छा हुई कि कह दें—"तब आप क्यों झख मारते हैं? लिखना-विखना सब छप्पर पर रखिए, और मौज कीजिए।" परन्तु फिर कुछ सोच-समझ कर मौन रहना ही उचित समझा। विदा होते समय उन्होंने फिर आलोचना करने की याद दिला दी, यद्यपि मैं बिलकुल भूल गया था।

उनके घर से निकल कर डेरे की ओर चला। रास्ते में एक कवि महोदय से मुठभेड़ हो गई। उन्होंने भी दूर ही से हल्ला मचाया। कुशल-चेम पूछने के पश्चात् बोले—आपने इस महीने की × × × देखी।

मैंने कहा—हाँ, देखी तो है।

वह—उसमें मेरी कविता निकली है, वह तो पढ़ी होगी।

अपने राम बोल उठे—हाँ, पढ़ी है।

यद्यपि मुझे यह पता तक नहीं था कि उनकी कोई कविता निकली है। उन्होंने कहा—वह आपको पसन्द आई?

मैंने कहा—भला आपकी कविता और पसन्द न आवे, ऐसा कभी हो सकता है?

वह बोले—यदि आपको पसन्द आई, तो आप उस पर एक छोटी सी आलोचना क्यों नहीं लिख डालते। जब आप जैसे लोग भी प्रोत्साहित न करेंगे, तो फिर करेगा कौन?

मुझे मजबूरन कहना पड़ा—कहते तो आप ठीक हैं—अच्छा लिखूँगा।

वादा कर लेने में अपने राम उतने ही पक्के हैं, जितने कि वादा न पूरा करने में। इसी प्रकार न जाने कितने लेखकों तथा कवियों ने अपनी पुस्तकों की आलोचना कर लेने का वादा अपने राम से ले लिया, परन्तु खेद है कि अपने राम एक भी वादा पूरा न कर सके। बहुधा लोगों ने पुनः स्मरण दिला कर आलोचना कराने की चेष्टा की। एक महोदय ने हताश होने पर यहाँ तक लिखा कि "आप किसी लेखक को आगे बढ़ता हुआ नहीं देखना चाहते।" अपने राम ने उन्हें लिखा कि मैं देखना तो सब कुछ चाहता हूँ, परन्तु अपने ही द्वारा ठेल-ठाल कर आगे बढ़ाए हुए लेखकों से मुझे कुछ शङ्का रहती है। सम्पादक जी, एक बार एक ऐसे लेखक की, जो अपनी प्रत्येक कृति को स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य समझते हैं, एक पुस्तक की भूमिका लिखने की भूल अपने राम ने की थी। उस भूल के साथ ही दूसरी भूल यह थी कि जहाँ उनकी पुस्तक के गुण दिखाए, वहाँ त्रुटियों की ओर भी थोड़ा सङ्केत कर दिया। बस जनाब, उसी दिन से उन लेखक महोदय से अपने राम की बोलचाल तथा पत्र-व्यवहार बन्द है। अपने राम ने उसी दिन से तय कर लिया कि भूमिका लिखना पाप है। परन्तु इधर पुनः लेखकों ने घेरना आरम्भ किया। अतएव अपने राम ने ज़िच होकर उक्त एजेन्सी की स्थापना कर ही तो डाली। इस एजेन्सी के प्रादुर्भाव से लेखकों को ऐसी सुविधा प्राप्त हो गई है कि कोई भी लेखक एक दिन में सब कुछ बन सकता है। इस एजेन्सी का काम यह होगा कि जो लेखक एजेन्सी के नियमानुसार फ़ीस जमा करेगा, उसकी पुस्तक की आलोचना की जायगी। प्रत्येक बात के लिए अलग-अलग फ़ीस होगी। जैसे कोई लेखक यह चाहता है कि वह यशस्वी लेखक बना दिया जाय तो उसकी फ़ीस अलग है। कोई लेखक सर्व-श्रेष्ठ लेखक की उपाधि चाहता है, कोई कविवर अथवा महाकवि बनना चाहता है, तो तुरन्त बना दिया जायगा, परन्तु फ़ीस अधिक पड़ेगी। इसी प्रकार जिस लेखक की जो इच्छा होगी, वह पूरी कर दी जायगी बशर्ते, कि वह फ़ीस जमा कर देगा। यदि वह चाहेगा तो मोपासाँ, बालज़क, रोमाँरोलाँ, पौशकिन इत्यादि का गुरु-घण्टाल बना दिया जायगा। उसकी पुस्तक पर नोबेल-प्राइज़ अथवा मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक दिए जाने की सिफ़ा-रिश एजेन्सी ज़ोरों से कर देगी—मिलना न मिलना उसके भाग्य की बात है। प्रकाशक लोगों को भी बड़ी सुविधा रहेगी। जो प्रकाशक अपने किसी लेखक अथवा पुस्तक की प्रशंसा कराना चाहेगा, वह बहुत अच्छे ढङ्ग से कर दी जायगी।

केवल इतना ही नहीं, यदि कोई व्यक्ति चाहेगा कि अमुक लेखक की अमुक पुस्तक की ऐसी आलोचना की जाय कि वह लेखक उस आलोचना के प्रकाशित होने के पश्चात् लिखना ही छोड़ दे, तो यह भी कर दिया जायगा, परन्तु यदि वह लेखक लिखना न छोड़ेगा

तो एजेन्सी ज़िम्मेदार न होगी। कोई प्रकाशक अपने किसी ऐसे लेखक को, जो कल तक सर्वश्रेष्ठ था, परन्तु आज उक्त प्रकाशक से सम्बन्ध तोड़ लेने के कारण प्रकाशक उसे नीचे गिरा कर किसी दूसरे को उठाना चाहता है, तो यह भी कर दिया जायगा। पुराने लेखक को मिट्टी में मिला कर नए को आकाश पर बिठा दिया जायगा। परन्तु यदि वह आकाश में अधिक दिनों तक टिक न सके और धड़ाम से नीचे आ गिरे, तो एजेन्सी ज़िम्मेदार न होगी।

'तू मुझे हाजी कह, मैं तुझे मुल्ला कहूँ' वाली नीति पर एजेन्सी काम न करेगी। एजेन्सी केवल "नक़्द-नारायण" सिस्टम पर काम करेगी।

सम्पादक जी, यह एजेन्सी केवल परोपकार के लिए खोली गई है। इसके द्वारा ऐसे लेखकों को भी सर्वश्रेष्ठ बनने का सौभाग्य प्राप्त हो जायगा, जो इस जन्म में तो क्या सात जन्म में भी सर्वश्रेष्ठ की उपाधि पाने के अधिकारी नहीं हैं। साथ ही जिन लेखकों को उनके शिष्यों अथवा प्रकाशकों ने ढोल पीट-पीट कर ज़बरदस्ती सर्वश्रेष्ठ बना दिया है, उनको अपनी पोज़ीशन सँभालना कठिन पड़ जायगा। एजेन्सी की कृपा से नित्य अनेक लेखक बनेंगे तथा बिगड़ेंगे। इसी प्रकार यह कार्य उस समय तक जारी रहेगा, जब तक कि सर्वश्रेष्ठ लेखक गली-गली जूतियाँ चटकाते न फिरने लगेंगे, थर्ड क्लास लेखक हिन्दुस्तान छोड़ कर चले न जायँगे और हिन्दी की इतनी पुस्तकें नोबेल प्राइज़ पाने की अधिकारिणी न समझी जाने लगेंगी कि यह तय न हो सकेगा कि उनमें से किसे प्राइज़ दिया जाय। यह अभीष्ट सिद्ध हो जाने के पश्चात् एजेन्सी का कार्य समाप्त हो जायगा।

क्यों सम्पादक जी, यह योजना कैसी है? किसी को कोई शिकायत नहीं रहेगी। न किसी का पक्षपात किया जायगा, न किसी का विरोध। जितना गुड़ डाला जायगा, उतना ही मीठा खाने को मिलेगा।

आप कृपा करके इस चिट्ठी को प्रकाशित कर दीजिए, जिससे सर्वसाधारण को इसकी सूचना मिल जाय। एजेन्सी का पता फ़िलहाल गुप्त रक्खा जाता है। जब लोग इस एजेन्सी के विरह में संखिया खाना आरम्भ कर देंगे, तब इसका पता प्रकाशित कर दिया जायगा।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

रक्षा-बन्धन

[श्री० शोभाराम जी धेनुसेवक]

वह वीरोचित शान हिन्द की तूने जब तक "राखी"।
रक्षा की हमने भी तेरी, तब तक, है जग साखी॥

बन्धन में पड़ कर भी तेरा, करते थे हम बन्दन।
आज कहाँ है बन्धु-करों में, बहिनों का वह बन्धन?

बलि होने की आज नहीं है, तेरे में वह शिक्षा।
दिखती है राखी तू सम्प्रति, दीन द्विजों की भिक्षा॥

भीरु बन्धुओं से बहिनों की आज कहाँ रक्षा है?
स्वत्वों पर हँस कर मर मिटने की किसको इच्छा है?

रोता है उर "रक्षा-बन्धन", तेरे घोर पतन पर।
वीरों के थोथे तीरों पर, पराधीन जीवन पर॥

शक्ति नहीं है लाज बचाने की जिनके हाथों में।
लगा हुआ दुखद दास्यता का धब्बा माथों में॥

क्या जानेगा वह पापी-कर, तेरी लाज बचाना।
सीखा नहीं धर्म-रक्षा पर जिसने शस्त्र उठाना॥

भारतीय कर जब स्वतन्त्रता का साधन साधेंगे।
राखी तुझको तब कर में क्या मस्तक में बाँधेंगे॥

क्या कहें अहबाब क्या कारे-नुमायाँ कर गए !
बी० ए० किया, नौकर हुए, पेन्शन मिली और मर गए !!—महाकवि 'अकबर'

'बी० ए० किया—'

'नौकर हुए—'
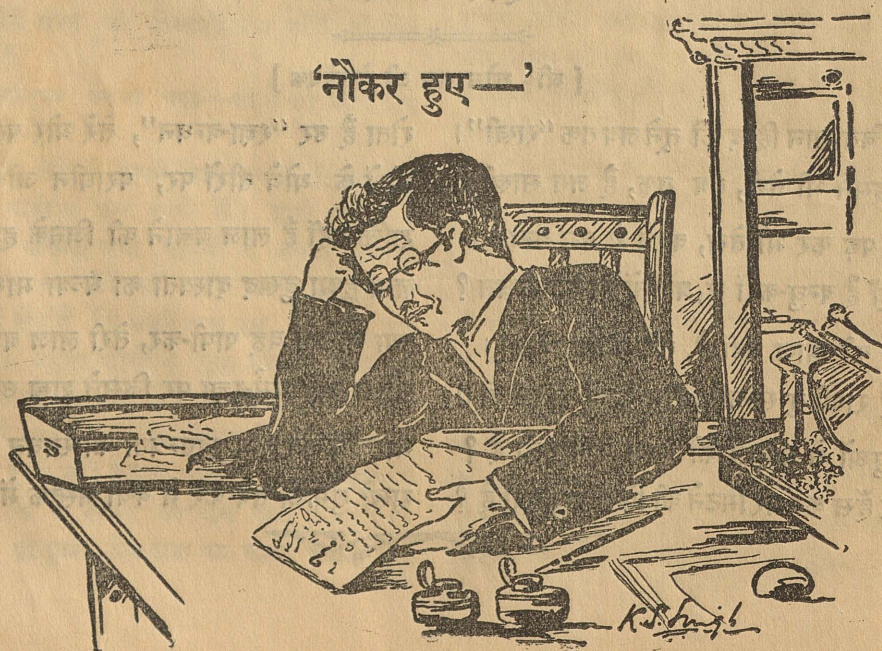
'पेन्शन मिली—'
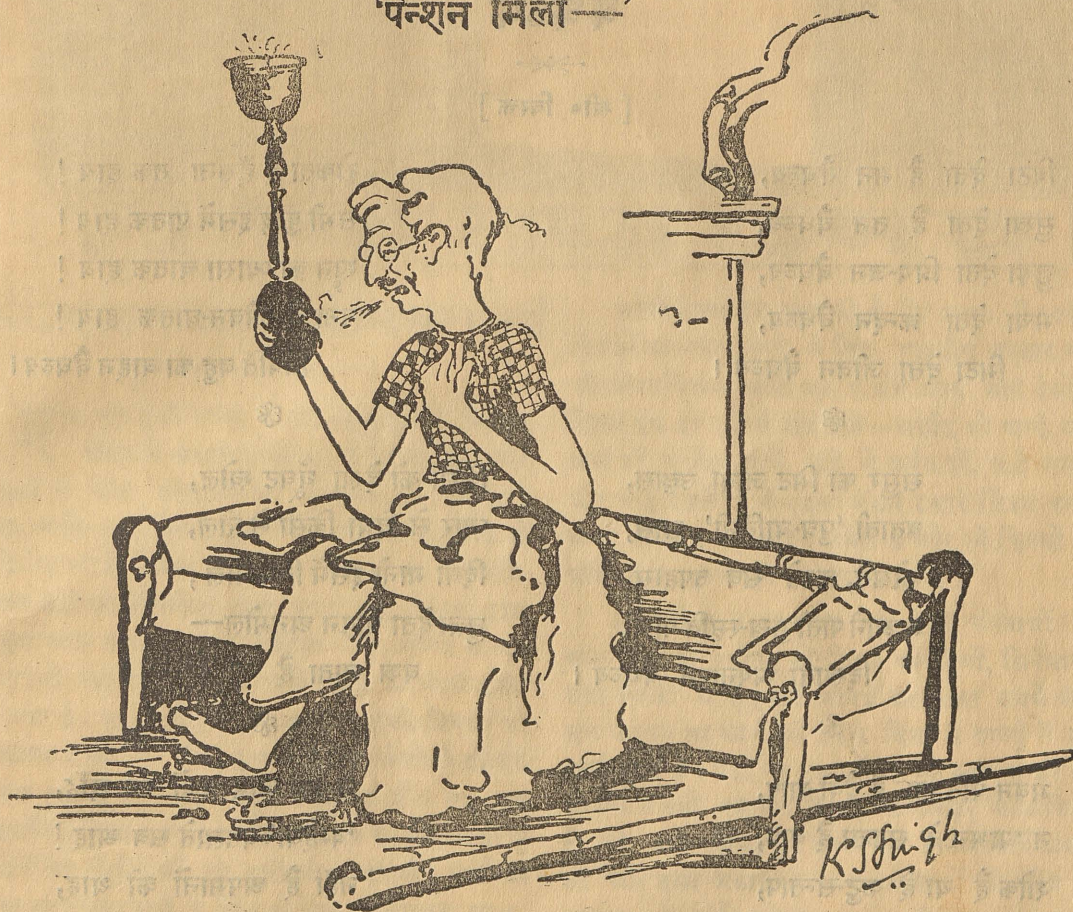
'और मर गए !!!'
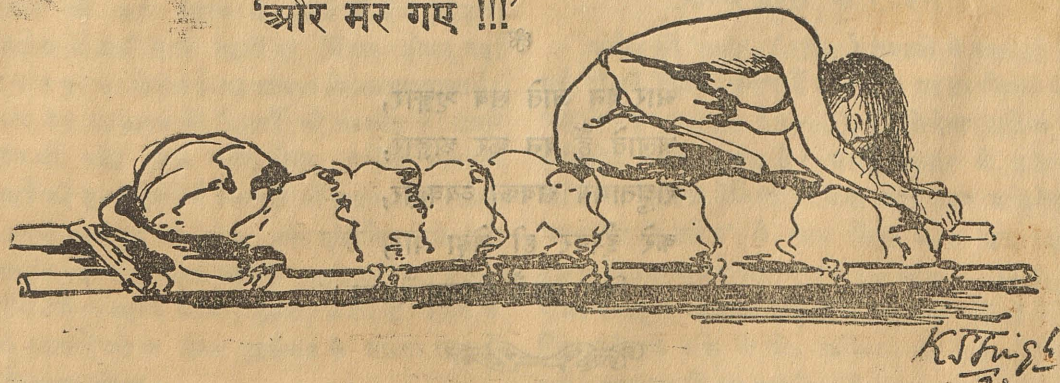
वैधव्य

[श्री० विरक्त]

बिठा देता है मन वैधव्य,
सुखा देता है तन वैधव्य,
छुड़ा देता प्रिय-जन वैधव्य,
मचा देता क्रन्दन वैधव्य,
मिटा देता जीवन वैधव्य।

❀

रोकता है हँसना तक हाय !
सभी कुछ इसमें पातक हाय !
खून का प्यासा चातक हाय !
बना है जीवन-घातक हाय !
विपति बहु का वाहन वैधव्य।

❀

ससुर का मिट जाता उल्लास,
बताती 'पुत्र-घातिनी' सास,
कोसते, करते सब उपहास,
न आने पाती सुख-स्मृति पास,
दिखाता अपनापन वैधव्य।

❀

किसी को देखा घूँघट खोल,
प्यार से दिया किसी से बोल,
दिया मानो इसमें विष घोल;
घुला देता यौवन अनमोल—
वज्र जाता है बन वैधव्य।

❀

भवन पति का है दैवी-शाप,
न आश्रय दे सकता है बाप,
शोक है या है कटु-सन्ताप,
बना जीवन का साथी पाप,
बड़ा दुस्सह बन्धन वैधव्य।

न पड़ जाए बच्चों पर छाँह,
'बन्हैया' बतलाते सब आह !
नहीं है अपमानों की थाह,
किसे है इनकी कुछ परवाह,
जलाता है प्रति-क्षण वैधव्य।

❀

भार बन जाते सब शृङ्गार,
जलाते हैं बन कर अङ्गार,
शत्रुतामय सबका व्यवहार,
करे ईश्वर ही बेड़ा पार,
चिता का है आसन वैधव्य।
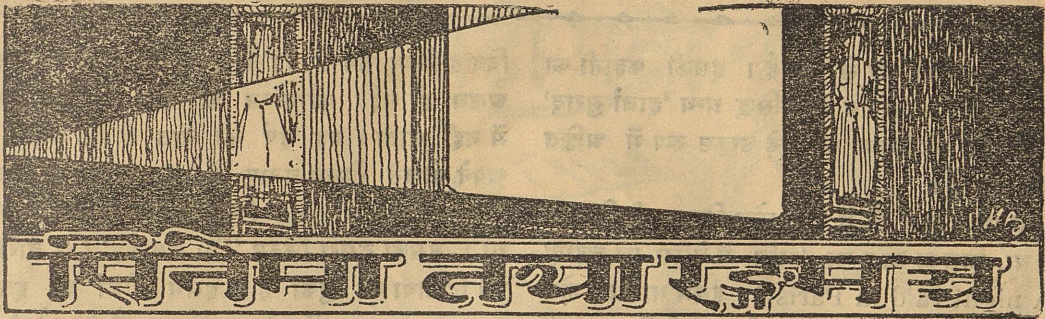
ओटावा तथा भारतीय फ़िल्म कम्पनियाँ

एक बार इसी स्तम्भ में हम लिख चुके हैं कि इङ्गलैण्ड ने अपनी कम्पनियों के फ़िल्मों का प्रचार करने के लिए 'कोटा-सिस्टम' (Quota System) का आविष्कार किया हुआ है। अर्थात् इङ्गलैण्ड के सिनेमाओं में दिखाए जाने वाले फ़िल्मों का कुछ प्रतिशत वहीं की कम्पनियों द्वारा बनाए गए फ़िल्मों द्वारा पूर्ण करना चाहिए। जो सिनेमा उस संख्या से कम स्वदेशी फ़िल्म दिखाते हैं, उन्हें दण्ड का भागी होना पड़ता है। चाहे इङ्गलैण्ड की जनता स्वदेशी फ़िल्मों को पसन्द न करे और फ़िल्म चाहे तृतीय श्रेणी के ही हों, उस संख्या को पूरा करना अनिवार्य है। यह सब इसलिए किया गया था कि इङ्गलैण्ड के सिनेमाओं में अमेरिका के फ़िल्मों की तूती बोल रही थी। अमेरिका का मुक़ाबला करने के लिए ही ऐसा किया गया था।

अब इङ्गलैण्ड भारत की ओर भी पैर फैला रहा है और अपने फ़िल्मों के लिए भारत में भी 'कोटा-सिस्टम' को जारी कराने के प्रयत्न में है। ओटावा कॉन्फ़्रेन्स में जहाँ अन्य बातों पर विचार होगा, वहाँ इस बात पर भी विचार किया जायगा कि साम्राज्यान्तर्गत समस्त देश साम्राज्य के फ़िल्मों को तरजीह दें। इससे भारत को कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि भारतीय फ़िल्मों की दूसरे देशों में बिल्कुल भी खपत नहीं। लाभ तो इससे इङ्गलैण्ड को होगा, और इसीलिए सब कुछ किया जा रहा है। भारत को तो उलटी हानि ही होगी; क्योंकि उसे मजबूरन जर्मनी, फ़्रान्स, अमेरिका आदि के अच्छे फ़िल्मों को न लेकर इङ्गलैण्ड के घटिया फ़िल्मों को दिखाना पड़ेगा।

आवश्यकता इस बात की है कि भारत में स्वदेशी फ़िल्मों का प्रचार करने के लिए भारतीय सरकार यहाँ भी कोटा-सिस्टम जारी कर दे और अन्य सारे देशों के फ़िल्म एक ही दृष्टि से देखे जावें—अर्थात् जो अच्छे तथा सस्ते हों, वे लिए जायँ, चाहे वे जर्मन हों, चाहे रूस के और चाहे इङ्गलैण्ड के। इसी प्रकार हमारे फ़िल्म बनाने वालों को और प्रोत्साहन मिलेगा और वे फ़िल्मों को और भी अच्छा बनाने का उद्योग करेंगे।

इसके लिए स्थान-स्थान पर ऐसी संस्थाओं की स्थापना होनी चाहिए, जो फ़िल्म कम्पनियों, सिनेमाओं तथा दर्शकों में सद्भाव उत्पन्न करें तथा उनके बीच एक माध्यम का कार्य करें। इस दिशा में बम्बई में कुछ कार्य हुआ है। वहाँ पर एक समिति की स्थापना हो गई है और उसकी स्थापना में कई कम्पनियों के मालिकों ने भी भाग लिया है। ईश्वर करे इसका कार्य सफल हो और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं की शीघ्र ही स्थापना हो, ताकि ओटावा भारत के साथ मनमानी-घरजानी न कर बैठे।

अन्य देशों के फ़िल्म

जर्मनी की 'ऊफ़ा' (Ufa) कम्पनी ने अङ्गरेज़ी में कई बोलते फ़िल्म बनाए हैं। उसका पहला फ़िल्म था 'ब्लू ऐञ्जल' (Blue Angel), जो सिनेमा-साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है। उसमें संसार के प्रसिद्ध अभिनेता 'एमिल जेनिंग्स' ने तथा मत्त-नयन अभिनेत्री 'मारलीन दी तरिच' ने काम किया था। 'ऊफ़ा' का दूसरा फ़िल्म 'सफ़ेद शैतान' (The White Devil) अभी बम्बई में दिखाया गया है। कला की दृष्टि से तो, चित्रकारी की दृष्टि से तो, अभिनय की दृष्टि से तो, सब प्रकार यह फ़िल्म अमेरिका के लगभग ८० प्रतिशत

फ़िल्मों से बाज़ी मार ले गया है। इसकी कहानी का आधार महर्षि टॉल्स्टॉय का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हाजी मुराद' है। कहानी को फ़िल्म पर बड़े उत्कृष्ट रूप में अङ्कित किया गया है।

बम्बई में हाल ही में एक फ्रेञ्च फ़िल्म भी दिखाया गया था, जिसका नाम था 'रात्रि में पेरिस पर चढ़ाई' (A night raid in Paris)। इसमें बातें तो फ्रेञ्च में ही होती थीं, परन्तु उनके अर्थ अङ्गरेज़ी में साथ ही साथ दिखाए गए थे, जिससे दर्शक कथानक को बराबर समझते गए। इन पंक्तियों के लेखक ने अभी तक चार फ्रेञ्च फ़िल्म देखे हैं। उनमें से सबसे पहला फ्रेञ्च फ़िल्म, जो लन्दन में दिखाया गया था 'Sur de tois de Paris' अर्थात् 'पैरिस की छतों पर होकर', वह फ़िल्म भी इङ्गलैण्ड में 'ब्लू ऐञ्जल' की भाँति ही प्रसिद्ध हो गया था और लन्दन के कई सिनेमाओं में कई मास तक दिखाया गया था। इन फ्रेञ्च फ़िल्मों की एक विशेषता यह होती है कि इनमें शब्द को वहीं स्थान दिया जाता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। शब्द का प्रयोग इनमें बड़ी ख़ूबी के साथ किया जाता है। सङ्गीत भी अनावश्यक तथा सीमा से अधिक नहीं होता। जहाँ केवल भाव-प्रदर्शन अथवा मूक अभिनय से काम चल सकता है, वहाँ फ़िल्म में न तो कोई बातचीत होती है, न सङ्गीत ही।

अमेरिका के प्रायः सभी पुराने विख्यात अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ बोलते हुए फ़िल्म बना चुके हैं, केवल चार्ली चैपलिन ने ऐसा नहीं किया। स्वर्गीय लौनचैनी पहले तो बोलते हुए फ़िल्म बनाने के बहुत ही विरुद्ध था, यहाँ तक कि उसने यह धमकी दे दी थी कि वह ऐक्टिङ्ग छोड़ कर डाइरेक्टर बन जायगा। परन्तु पीछे से वह बोलते फ़िल्म बनाने को राज़ी हो गया और अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले अपना अमर फ़िल्म 'The Unholy Three' (तीन पापात्माएँ) संसार को दे गया।

पुराने विख्यात व्यक्तियों में नौर्मा टॉल्मेज का स्थान बहुत ऊँचा है। नौर्मा, नाटाली तथा कौन्स्टेन्स; ये तीनों बहिनें किसी समय सिनेमा-संसार में हलचल मचाती रहती थीं। नाटाली ने जब से बस्टर कीटन के साथ विवाह किया, तब से वह तो इस क्षेत्र से बिलकुल ही अलग हो गई। कौन्स्टेन्स का नाम भी अब सुनने में नहीं आता। यह हर्ष की बात है कि नौर्मा ने अपने बोलते फ़िल्म बनाए हैं। उसका पहला फ़िल्म 'New-york Nights' (न्यूयॉर्क-निशा) काफ़ी अच्छा था। उसका दूसरा फ़िल्म 'Du Barry' (डू बारी) भी दिखाया जा चुका है। इसमें नौर्मा को इतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई। बात यह है कि नौर्मा की आयु अब काफ़ी हो गई है। वह 'मेकअप' करके युवती बनने की चाहे जितनी चेष्टा करे, फिर भी 'डू बारी' जैसी मादकता दिखाने में वह असमर्थ ही रहेगी। केवल मैरी पिकफ़ोर्ड ही ऐसी है, जो ४० से ऊपर होकर भी सोलह वर्ष की सुन्दरी का पार्ट बड़ी सफलता से अदा कर सकती है।

अमेरिकन फ़िल्मों में 'पूर्व' का चरित्र

अमेरिका वाले अपने फ़िल्मों में वास्तविकता दिखाने के लिए प्रसिद्ध हैं। यूरोप, अफ़्रीका आदि के विषय में वे बड़ी खोज के साथ काम करते हैं। परन्तु जब एशिया का प्रश्न आता है, तो उनके आदर्श तथा सिद्धान्त एक ओर रक्खे रह जाते हैं। एशियावालों के चरित्र का वे जिस प्रकार चित्रण करते हैं, वह लज्जाजनक है। एक बार एक फ़िल्म बना था, जिसका नाम था 'Behind that Curtain' (पर्दे के पीछे)। अभिनय आदि की दृष्टि से यह फ़िल्म बहुत सुन्दर था, परन्तु जहाँ भारत के दृश्य आते थे, वह भाग बहुत भ्रामक तथा अशुद्धियों से पूर्ण था। बाज़ारों का दृश्य ऐसा था, मानो वे फ़ारस या अरब के बाज़ार थे। अङ्गरेज़ अफ़सर की भारतीय दासी का चरित्र बहुत ही निकृष्ट दिखाया गया था। इसी प्रकार की अशुद्धियाँ भरी हुई हैं। रैमन नोवारो के नए फ़िल्म 'Son of India' (भारत-पुत्र) में, जो कुछ समय पूर्व भारत में दिखाया गया था, अब समय है कि भारत में इन बातों के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाय और अमेरिका वालों को भारतीय जीवन का सच्चा चित्र खींचने के लिए विवश किया जाय।
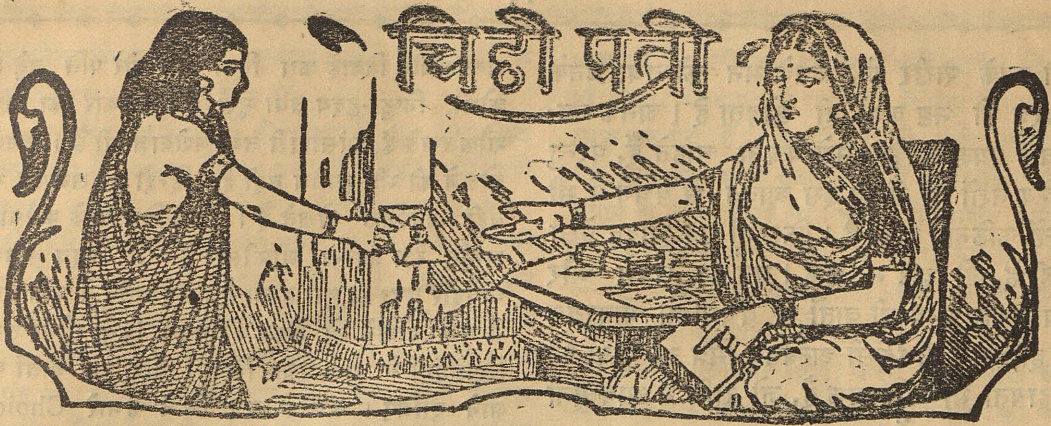
दृष्टिक्षीणता के प्रतिकार का उपाय

एक सज्जन ने लिखा है :—

आजकल नवयुवक समुदाय—विशेषतः विद्यार्थी समुदाय—बहुत थोड़ी उमर में ही अपनी आँखों की ज्योति खो बैठता है तथा जीवन-पर्यन्त चश्मे का व्यवहार करने को बाध्य होता है। आधुनिक चिकित्सक-वर्ग ने भी चश्मे को ही इस व्याधि का अन्तिम उपाय मान लिया है। परन्तु क्या चश्मे के अतिरिक्त इस व्याधि के प्रतिकार का और कोई उपाय आधुनिक या प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र में नहीं है। कुछ समय पूर्व मैंने क्षीणता के सम्बन्ध में श्री० एच० एस० गेम्बर (H. S. Gamber) की लिखी हुई एक पुस्तक पढ़ी थी। परन्तु उसमें लिखे हुए उपायों की सत्यता के बारे में डॉक्टरों से बातचीत की तो किसी ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यदि 'चाँद' के पाठकों में से किसी सज्जन ने इस सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त की हो अथवा इस व्याधि के प्रतिकार का और कोई उपाय किसी को मालूम हो तो कृपया उसे 'चाँद' में छपवा कर सुयश के भागी बनें।

[उपर्युक्त सज्जन ने निःसन्देह एक अत्यावश्यक विषय की ओर 'चाँद' के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। हमें आशा है कि इस सम्बन्ध की कुछ जानकारी रखने वाले सज्जन इस पर प्रकाश डालेंगे। इस विषय के जो लेख आदि हमारे पास आएँगे, उन्हें हम सहर्ष 'चाँद' में प्रकाशित करेंगे।

—स० चाँद]

❀ ❀ ❀

एक नवयुवक ने लिखा है :—

मैं एक निर्धन और असहाय विद्यार्थी हूँ। मेरी उम्र इस समय २१ वर्ष है। मैंने प्रायः १४ वर्ष की उम्र में ही बुरे लड़कों की सङ्गति में पड़ कर अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर डाला है। किन्तु कुछ दिनों (४ वर्ष) के बाद मुझे स्वामी शिवानन्द की "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" नाम की किताब मिली, तब से मैं सुधर गया और हस्तमैथुन जैसा बुरा अभ्यास को छोड़ तत्कथित नियमानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करने लगा। किन्तु मेरे स्वास्थ्य में कुछ परिवर्तन नहीं हो रहा है। इसका कारण है एक राक्षसी अभ्यास। उसके विषय में लिखते मुझे बहुत ही लज्जा मालूम होती है। किन्तु ३ वर्ष तक उससे दुःख उठाते हुए कोई उपाय न देख कर आज आपकी शरण में आया हूँ।

वह राक्षसी अभ्यास है निद्रितावस्था में हस्तमैथुन। मैं जिस समय सोया रहता, मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, उसी समय न जाने किस भूत या पिशाच की माया से उस कुकार्य को कर डालता हूँ। जब आँख खुलती है तो दुःख और सन्ताप के समुद्र में अपने को डूबता और उतराता पाता हूँ। इस तरह मेरा शारीरिक और मानसिक दोनों सत्यानाश हो रहा है। मैंने यथासाध्य सभी चेष्टा कर देखा है। लँगोट पहन कर सोता हूँ, परन्तु कुछ लाभ नहीं होता।

[इस प्रकार का यह पहला ही पत्र नहीं है। इस प्रकार के पत्र हमारे यहाँ बहुधा आया करते हैं। आजकल के नवयुवकों में कम से कम ५० प्रतिशत में बाल्यकाल से यही घुन लग जाता है,

जो उनके शरीर को, उनके मन को तथा उनके चरित्र को नष्ट करके ही छोड़ता है। अनेक नवयुवक प्रयत्न करके इससे बचना चाहते हैं, परन्तु अन्य नशों की भाँति इस आदत से बचने में भी उन्हें कठिनाई होती है। फिर भी यह आदत ऐसी नहीं है, जो छूट न सके। मन का संयम और व्यभिचार सम्बन्धी बातों से बचना तो आवश्यक है ही, साथ ही किसी अन्यतम मित्र या भार्या की सहायता भी आवश्यक है, जो रात्रि में सावधानी से रक्षा कर सकें।

रात को हाथ बाँध कर सोने से भी काम निकल सकता है। हाँ, यह उपाय कुछ कष्टकर ज़रूर है। इसके साथ ही यदि किसी वैद्य या डॉक्टर से मिल कर कोई औषधि ली जाय, तब भी अच्छा है। जो डॉक्टरी दवाओं के विषय में कुछ जानते हैं, वे रात्रि को सोने के पूर्व 'पोटेशियम ब्रोमाइड' १० ग्रेन खाकर सोएँ, तो उन्हें लाभ होगा। इसका सेवन अधिक दिनों तक नहीं करना चाहिए। बहुधा स्वप्नदोष पीठ के बल नरम बिछौने पर सोने से हुआ करता है। इसलिए इस रोग के रोगी को ज़मीन या काठ की चौकी पर सोना चाहिए और कमर में रीढ़ के पास एक कड़ी गेंद बाँध लेनी चाहिए, ताकि पीठ के बल सोने से बच सकें। उन्हें गरम मसाला आदि उत्तेजक चीज़ों से परहेज़ रखना चाहिए। सोने से पहले हाथ-पैर, कान और सिर का पिछला भाग पानी से धो लेना विशेष लाभदायक है। दोनों गुप्तेन्द्रियों के मध्य के स्थान पर प्रतिदिन पन्द्रह-बीस मिनिट तक ठण्ढे पानी का छींटा मारने से विशेष उपकार होता है।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक दुःखिनी बहिन लिखती हैं :—

मैं बनारस के एक प्रतिष्ठित रईस एवं ज़मींदार की पुत्री हूँ और मैट्रिक तक पढ़ी हुई हूँ। माता-पिता के देहान्त के बाद मेरे भाई ने एक सज्जन से मेरा अन्तर्जातीय विवाह करा दिया है। मेरे पति बड़े ही क्रोधी, निष्ठुर-हृदय तथा मूर्ख हैं। शिकार का बड़ा शौक रखते हैं, मांसाहारी तथा नशेबाज़ भी हैं। उनको बोलने की भी तमीज़ नहीं है, हिन्दी तो समझते भी नहीं। इङ्गलिश बोलते हैं। वे वन-विभाग के कर्मचारी अर्थात् रेञ्ज फ़ारेस्ट ऑफ़ीसर हैं। मेरे साथ इनका व्यवहार बड़ा ही बुरा होता है। कई मर्तबे वे मुझे जान से मार डालने को तैयार हो गए। किन्तु नौकर तथा सिपाहियों ने मुझे बचा लिया। ख़ैर, इन बातों को जाने दीजिए। सारांश यह कि वे हमारे Choice (रुचि) के बिलकुल उल्टे हैं। सङ्गीत-साहित्य तो जानते भी नहीं कि क्या वस्तु है। इस समय मैं दो बच्चों की माँ हूँ। मेरी अवस्था १६ साल की है। मेरे भाई की स्थिति ख़राब होने के कारण पतिदेव मुझे हमेशा खरी-खोटी सुनाया करते हैं। उनके बुरे व्यसन दिन-प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। तीन-तीन दिन ग़ायब रहते हैं, मैं घर में बीमार बच्चों को लेकर जङ्गल में अकेली पड़ी रहती हूँ। यदि मैं कुछ बोलती हूँ, तो मुझे मारते, गाली देते, और कहते हैं कि तुम्हें सौ बार ग़रज़ हो रहो, नहीं तो चली जाओ, हम ऐसे ही रहेंगे। तुम और बच्चे सब मरो, हमें क्या? भाई की ग़रीबी के कारण मायके जाने का भी साहस नहीं होता। मेरे पास रुपया-पैसा भी नहीं कि चली जाऊँ। स्त्रियों की आर्थिक कठिनाई बड़ी ही दुःखदायिनी है। आज यदि मेरे पास धन होता तो मैं एक ऐसे नीच व्यक्ति के साथ नारकीय जीवन न व्यतीत करती। कृपया मुझे उचित मार्ग बताइए। मुझे अन्य स्त्रियों की भाँति वैवाहिक जीवन पसन्द नहीं है। मैं वर्तमान हिन्दू-समाज की रूढ़ियों तथा वर्तमान 'हिन्दू-लॉ' को किसी स्थिति में मानने को तैयार नहीं हूँ। मैं अकेली विद्रोह कर सकती हूँ तथा उसकी परीक्षा से ज़रा भी विचलित न होऊँगी। हिन्दू-समाज हम स्त्रियों पर जैसा ज़ुल्म-अत्याचार कर रहा है, वैसा ही ईश्वर की दया से फल पा रहा है। जिसने स्त्रियों की मर्यादा कम की है, वह कभी भी सुखी न हुआ है, न होगा। मैं अधिक क्या लिखूँ। मैं अपने जीवन से तङ्ग आ गई हूँ। जी करता है, आत्म-हत्या कर लूँ, पर इन मासूम बच्चों पर दया आती है। जैसा कि 'चकवस्त' ने कहा है—"इनकी

तालीम का मकतब है तुम्हारा जानूँ, पास मर्दों के नहीं इनका ठिकाना हर्गिज़ ।"

आर्थिक कठिनाई के ही कारण मैं इस प्रकार कष्ट सह रही हूँ, अन्यथा मैं एक पल भी न रहती । मेरे बच्चे घर में बीमार पड़े रहते हैं । वे विशेषकर तो बाहर ही रहते हैं, पर यदि दैवात् कभी घर रहे तब भी नहीं पूछते कि बच्चों की तबीयत कैसी है । पति के इस व्यवहार से मैं अत्यन्त खिन्न तथा दुःखी रहती हूँ । मुझसे तो बोलते तक नहीं । घर आते ही सो जाते हैं या पत्र या नॉविल पढ़ते रहते हैं । आप स्वयं विचार करिए, मैं अकेली दो छोटे-छोटे बीमार बच्चों को लिए चौबीसों घण्टे कैसे व्यतीत कर सकती हूँ ? मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ । यदि मैं जाने को कहती हूँ तो कहते हैं बच्चों को छोड़ जाओ । कृपया इस पत्र को 'चाँद' में छाप दीजिए, ताकि मेरे हितचिन्तक भाई को मालूम हो जाय कि अनमेल विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह का क्या परिणाम होता है । तथा विवाह में व्यर्थ पैसा नष्ट करने के बदले यदि उस रुपए को लड़की के नाम कर दिया जाय, तो कितना अच्छा हो । कृपया 'चाँद' में मेरा नाम-पता न दीजिएगा ।

❀ ❀ ❀

एक दूसरी बहिन ने लिखा है :—

जब मेरा विवाह हुआ था, तब मेरी उमर तेरह-चौदह वर्ष की थी । उसके बाद से आज पाँच वर्ष हो गए, मैं बड़े कष्ट से अपना जीवन व्यतीत कर रही हूँ । विवाह के बाद जब मैं अपनी ससुराल आई तभी से मेरे पति न जाने क्यों मुझसे असन्तुष्ट रहने लगे और बात-बात पर मुझसे नाराज़ होने लगे । इस तरह एक साल भी नहीं गुज़रा था कि आप विलायत चले गए और दो वर्ष तक मेरी कोई खोज-ख़बर न ली । उस समय मेरे पेट में एक बच्चा भी था । उसके पैदा होने पर उसी का मुँह देख कर मैं अपने जीवन के दिन बिताने लगी । पिता का सहारा था, पर मेरी बदक़िस्मती से वे भी चल बसे ! मैं एकदम निराश्रया हो गई । इस प्रकार दो वर्ष बीतने के बाद मेरे पति ने मुझे दर्शन देने की कृपा की । साल भर तक मेरे दिन बड़े आनन्द से कटे । परन्तु इसके बाद फिर वही पुरानी बातें आरम्भ हो गईं । बात-बात पर झगड़ा होने लगा । अब तो यह हालत है कि मेरी ज़रा भी परवा नहीं करते । दिन-रात बुरे दोस्तों की सङ्गत में रहते हैं । मैं कुछ बोलती हूँ तो साफ़ कह देते हैं कि जहाँ तेरा जी चाहे चली जा । अब आप कृपा करके बताइए कि मैं क्या करूँ । मैं किस उपाय से उन्हें उनके बुरे दोस्तों से अलग करूँ और किस तरह उन्हें अपनी ओर आकर्षित करूँ ?

[ऐसे हीन-हृदय पुरुषों की हिन्दू-समाज में कमी नहीं है, जो धर्मपत्नियों पर अकारण नाना प्रकार के अत्याचार किया करते हैं । हमारी समझ में जब तक स्त्रियाँ पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी न मान ली जाएँगी और जब तक उन्हें तलाक़ देने का अधिकार न प्राप्त होगा, तब तक ऐसे अत्याचारों का प्रतिकार भी असम्भव है । इसलिए अब समय आ गया है कि स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़ी हों और वैध आन्दोलन द्वारा अपने अधिकारों को प्राप्त करें ।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

मेरी काली कहानी

एक समाज के सताए युवक ने लिखा है :—

महाशय,

अपने प्रेम की छोटी दुनिया को अन्धे समाज की कुप्रथाओं से बड़ी ही निर्दयतापूर्वक मिट्टी में मिला दी गई देख, आज आपकी याद आई है । उन पुरानी रूढ़ियों की जड़ में आहों के अङ्गारे बरसाने के लिए कृपया इसे अपने पत्र में थोड़ी सी जगह प्रदान करेंगे ।

मैं भूमिहार ब्राह्मण-कुल का एक अभागा युवक हूँ । उस दिन मेरे भाई ने पुनः प्रणय-सूत्र में बँध जाने की चर्चा चलाई थी । सुन कर अतीत-व्यथाओं की रेखा एकाएक आँखों के सामने नाच उठी । परन्तु भविष्य की भीषणता अखरी । कह दिया कि देख-भाल कर स्वीकार है ।

आख़िर घर से एक पत्र आया—सबने एक स्वर से अमुक महाशय को ज़बान दे दी है । लड़की भी पढ़ी है, बड़ी है, अच्छी है ।

मेरा निश्चय एक दूसरी ओर हो चुका था । मैंने निवेदन किया—वचन दे दिया है तो इससे क्या ?

वैवाहिक सूत्र में बँधना तो मुझे है। मैंने पूर्व ही आप लोगों को बता दिया है कि बिना मेरी सम्मति के किसी को ज़बान न दें।

इसके बाद दूसरा पत्र मिला—तुम्हारे लिखने के पूर्व ही ज़बान दे दी गई थी। बात पक्की हो चुकी है। जब एक दिन शादी करनी ही है तो हम लोगों को इस तरह बेइज़्ज़त क्यों करते हो? यदि नहीं मानोगे तो नन्हें भतीजे (८ वर्ष की आयु का) को ज़बान की रक्षा के लिए देना ही पड़ेगा।

पत्र पढ़ कर ख़ूब रोया और काँपती हुई लेखनी से पत्रोत्तर दिया—भैया! आपके इस पत्र का उत्तर हमारे सूखे दो आँसू के सिवा और क्या हो सकता है? एक नन्हें बच्चे को फाँसी पर लटकाने के बदले तो यही उत्तम है कि मैं ख़ुद ही फाँसी को गले लगा लूँ।

मेरे मित्र का ठीक इसी समय इस आशय का पत्र मिला कि जहाँ तुमने निश्चय किया है, वहाँ मैं गया था। ग़रीब घर की लड़की है, सुन्दर है, अच्छी है, पढ़ने में तेज़ है। उसके संरक्षक निठल्ले मूर्ख हैं। उसे किसी अपढ़, गँवार या अयोग्य के हाथों में सौंप देंगे। इसलिए अगर सम्बन्ध तुम्हारे साथ हो तो अच्छा है।

अब मुझे व्याकुलता ने बेचैन कर दिया था। दौड़ा गया, भैया के उन अमुक महाशय के यहाँ। उन्हें मैं भी पहचानता था। साफ़ शब्दों में कहा—महाशय, आपके यहाँ सम्बन्ध करने की मेरी इच्छा न कभी थी और न है। आप कोई दूसरा पात्र क्यों नहीं खोज लेते?

उन्होंने कहा—अब ऐसा कैसे हो सकता है? सब बातचीत पक्की हो गई है।

मैंने कहा—जिसके साथ मेरा जीवन-सूत्र ज़बरदस्ती बाँधा जा रहा है, उसे मैं एक बार देख नहीं सकता?

उत्तर मिला—कदापि नहीं।

मैंने प्रश्न किया—क्या इसमें कोई क्षति है?

वे कहने लगे—समाज के नियमानुसार भारी क्षति है। कहीं आप देख कर अस्वीकार कर दें तो हम लोग बखेड़े में पड़ेंगे। लोग अनायास ही शङ्का करने लगेंगे कि अमुक स्थान की बातचीत क्यों बिगड़ी?

मैंने कहा—जिस डर से आप आज डरते हैं, वही बात यदि विवाह के बाद हो तब?

उन्होंने कहा—प्रारब्ध का क्या इलाज है?

हाय रे अभागा समाज! जिसके साथ अपना जीवन बिताने जा रहा हूँ, उसे एक नज़र देख लेने का भी अधिकार नहीं!

अस्तु, घर आया। लोगों को अटल पाया। हार कर उस ग़रीब की बेटी को, जिससे मैंने अपना सम्बन्ध कर लेने का निश्चय किया था, इनकारी का पत्र लिख देना पड़ा!

मुझे मालूम नहीं कि वह पत्र उन्हें मिला या नहीं, पर यह पता लगा कि उस बेचारी की शादी भी एक 'कालिदास' से ही हुई है, अक्षर-ज्ञान से अभी कोसों दूर हैं। यह भी सुनने में आया था कि उस बेचारी ने भी 'प्रताप' में एक ऐसी ही चिट्ठी छपवा कर समाज को चेतावनी दी है।

मुझे जो सूर्पणखा जी मिली हैं, वह भी इस सम्बन्ध से ख़ुशी नहीं हैं। क्योंकि पड़ोस की स्त्रियों ने उनके रूप-रङ्ग की बड़ी कड़ी टीका की है। बेचारी अपने माता-पिता को कोस रही हैं।

[वास्तव में बिना देखे-सुने विवाह की यह कुप्रथा बड़ी ही भद्दी है। इससे वर-वधू आजन्म सन्तप्त और दुखी रहा करते हैं। मालूम नहीं, समाज की कब आँखें खुलेंगी और कब वह अपनी त्रुटियों को दूर करेगा!

—स० 'चाँद']

❃ ❃ ❃

नासूर की दवा

मेरठ से 'चाँद' की ग्राहिका श्रीमती शान्तिलता लिखती हैं :—

गत जुलाई मास के 'चाँद' द्वारा किसी बहिन ने नासूर की दवा दरियाफ़्त की है। उन्हें चाहिए कि सिलवर नाईट्रेट १ ड्राम (४ माशा) और स्प्रिट ईथरिस नाईट्रोसी १ औन्स (२॥ तोला) लेकर एक साफ़ शीशी में मिला लें और उसे एक पतली फुरैरी द्वारा प्रति दिन नासूर में अच्छी तरह लगा दिया करें। इससे पुराना से पुराना नासूर भी अच्छा हो जाएगा।
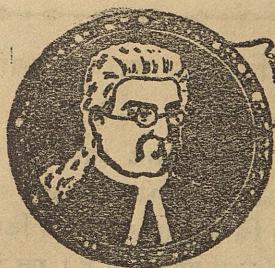
विधवा-विवाह और उत्तराधिकार

हाल में इलाहाबाद हाईकोर्ट में फ़ुलबेञ्च के सामने एक मामला पेश हुआ था, जिसमें इस बात का निर्णय करना था कि किसी हिन्दू-विधवा का क़ानून या रस्म के अनुसार पुनर्विवाह कर लेने के बाद अपने पूर्व पति की सम्पत्ति पर अधिकार रहता है या नहीं? अभियोग का सार यह है कि कौशल्या नाम की स्त्री ने, जिसके पति लक्ष्मीनारायण ऊमर का देहान्त हो चुका है और जिसने दूसरा विवाह कर लिया है, जौनपुर के एडीशनल सबॉर्डीनेट जज के इजलास में अर्ज़ी दी कि उसे अपने नाना की सम्पत्ति का, जिसका कोई भी वारिस नहीं है, उत्तराधिकार दिलाया जाय। उसके ससुर के दलालों और पति के चाचाओं ने उसके दावे का विरोध किया। उनका कहना था कि ऊमर बनियों की जाति के नियमानुसार अगर कोई विधवा पुनर्विवाह कर लेती है तो पहले पति की जायदाद पर उसका किसी तरह का अधिकार नहीं रहता। इसलिए कौशल्या अब पहले पति की सम्पत्ति की किसी तरह अधिकारिणी नहीं हो सकती। इस विषय में जज ने फ़ैसला किया कि किसी भी रस्म या क़ानून के अनुसार लक्ष्मीनारायण की सम्पत्ति पर से कौशल्या का अधिकार तब तक ख़ारिज नहीं किया जा सकता, जब तक कि वह ज़िन्दा है। उसके पुनर्विवाह कर लेने से इस अधिकार में बाधा नहीं पड़ सकती। जज के इस फ़ैसले के विरुद्ध प्रतिवादियों ने हाईकोर्ट में अपील की। पर वहाँ से भी एडीशनल जज का फ़ैसला बहाल रहा। फ़ुलबेञ्च के जजों ने निर्णय किया है कि जिन जातियों में पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित है, उनकी विधवाओं का हक़ पुनर्विवाह के बाद भी अपने पूर्व पति की जायदाद पर क़ायम रहता है।

❀

मुसलमान-बालिकाओं का अपहरण

कलकत्ते के पास एक गाँव में हसन मियाँ नामक कुली-सरदार रहता है। पास ही दूसरे गाँव में शेख़ रसूल का घर है। रसूल प्रायः हसन मियाँ के घर आया करता था। गत २१ फ़रवरी को रात के समय उसी गाँव के क़ुर्बान मियाँ ने देखा कि रसूल तथा एक और व्यक्ति हसन मियाँ की पुत्री नुरुन्निसा और भतीजी ख़ैरुन्निसा के साथ एक टैक्सी के पास खड़े हैं। जब तक क़ुर्बान टैक्सी के पास पहुँचे तब तक वह चल दी। इस पर उसने शोर मचाया और हसन मियाँ को सारा क़िस्सा बतलाया। लड़कियों की बहुत खोज की गई, पर कुछ पता न चला। छः दिन बाद ख़बर मिली कि लड़कियाँ रसूल के घर में हैं। इस पर वारण्ट निकलवा कर उसके घर की तलाशी ली गई और बालिकाओं का उद्धार किया गया। उन्होंने बतलाया कि घटना के दिन रसूल ने उनसे कहा था कि वह उनको काकिनाड़ा में बायस्कोप दिखाने ले जायगा। पहले तो उन्होंने इनकार किया, पर बाद में वे टैक्सी में रवाना हो गईं। जब उन्होंने देखा कि टैक्सी किसी दूसरी ही तरफ़ जा रही है, तो उन्होंने चिल्लाना चाहा, पर उनको छुरी दिखला कर चुप कर दिया गया। उनको एक मकान में पाँच दिन तक बन्द रक्खा गया। वहाँ पर उनके साथ अत्याचार करने की चेष्टा की गई, पर उन्होंने उसमें बाधा डाली। जब मकान के मालिक को इन बातों का पता चला तो उसने रसूल और उसके साथी को अपने यहाँ से चले जाने को कहा, इस पर रसूल उनको अपने घर ले आया और वहाँ से उनको छुड़ाया गया। लड़कियों की उम्र क्रमशः १४ और १९ वर्ष की है। दोनों अभियुक्तों पर मुक़दमा चल रहा है।

❀

विवाह का लोभ देकर ठगा

कलकत्ता के प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट की इजलास में रामनाथ नाम के मारवाड़ी ने गङ्गाराम, गोविन्दराम, शिवदयाल और बालाबख़्श नाम के चार व्यक्तियों के विरुद्ध ठगने का मुक़दमा दायर किया है। फ़रियादी का कहना है कि गङ्गाराम और गोविन्दराम उसके पास विवाह कराने वाले दलाल की हैसियत से आए। उन्होंने कहा कि शिवदयाल के दस वर्ष की एक कन्या है। अगर रामनाथ शिवदयाल को १२००) और उन दोनों को दलाली का ५००) दे तो उस लड़की का विवाह उसके छोटे भाई के साथ हो सकता है। फ़रियादी इस पर राज़ी हो गया। इसके पश्चात् उसने शिवदयाल और उसके पुत्र बालाबख़्श को १०११) तथा दलालों को १२७) दिए। इसके सिवाय १७५) के कपड़े और मिठाइयाँ आदि कन्या के घर उपहार-स्वरूप भेजे गए। पर जिस दिन विवाह होने की बात थी, उसके पहले ही शिवदयाल घर छोड़ कर भाग गया और जब रामनाथ के आदमी वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने घर को ख़ाली पाया। जाँच करने से पता चला कि गङ्गाराम आदि ने इसी प्रकार छगनलाल, सूरजलाल आदि कई अन्य व्यक्तियों को भी ठगा है। मुक़दमा चल रहा है।

❀

विवाह का रोज़गार

पाँचू उर्फ़ सुशीलकुमार बनर्जी नामक व्यक्ति ने विवाह का धोखा देकर कलकत्ते के कितने ही गृहस्थों को बुरी तरह ठगा, और अन्त में भण्डाफोड़ हो जाने पर वह गिरफ़्तार किया गया। प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट के सामने अभियोग चलने पर मालूम हुआ कि उसने अपने को कलकत्ता यूनीवर्सिटी का ग्रेजुएट और पटना कॉलेज के एक रायबहादुर प्रोफ़ेसर का लड़का बतला कर कितने ही सम्माननीय कुटुम्बों की लड़कियों से विवाह किया। इसमें उसको काफ़ी दहेज़ मिला। विवाह के पश्चात् वह ज़ेवर छीन कर लड़कियों को मार कर निकाल देता था। इस कार्य में उसकी माँ और दो रिश्तेदार उसके सहायक थे। प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट ने कुल अभियुक्तों को दोषी पाकर भिन्न-भिन्न मुद्दत की सख़्त सज़ा का हुक्म दिया। सज़ाओं के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की गई है।

अन्ध-विश्वास का कुपरिणाम

आसाम बैली का समाचार है कि वहाँ के किसी गाँव में लखन साओरो नामक व्यक्ति ज्वर से पीड़ित हुआ और उसकी बोलने की शक्ति जाती रही। लखन को सन्देह हुआ कि जम्पारा साओरो ने किसी तरह का जादू-टोना करके गूँगा बना दिया है। गत १७ दिसम्बर को वह गोरो साओरो और जिलका नामक व्यक्तियों के साथ जम्पारा के घर पहुँचा। उसके साथियों ने कहा कि 'लखन की बोलने की ताक़त लौटा दो, अन्यथा तुम्हारे लिए बड़ा बुरा फल मिलेगा।' जब जम्पारा ने इस बात से अपना सम्बन्ध होने से इनकार किया, तो वे उसे लाठी से मारने लगे और अन्त में छुरे से मार कर उसकी लाश कुँए में फेंक दी गई। कुछ लोगों ने, जो इस घटना को देख रहे थे, इसकी रिपोर्ट थाने में की और अभियुक्तों का चालान कर दिया गया। डिस्ट्रिक्ट जज की इजलास में मुक़दमा चलने पर जज और जूरी में मतभेद हो गया और मुक़दमा हाईकोर्ट भेज दिया गया। अभियुक्तों ने अपना अपराध स्वीकार किया और कहा कि चूँकि जम्पारा ने लखन पर जादू किया था, इसलिए हमने ऐसा काम किया। जजों ने तीनों अभियुक्तों को हत्या का अपराधी क़रार देकर आजन्म काले-पानी की सज़ा दी।

❀

पत्नी के चुम्बन का मूल्य

बफैलो (इङ्गलैण्ड) के सिटी कोर्ट में एक इटैलियन और उसकी पत्नी का मज़ेदार मामला पेश हुआ है। वह अपनी पत्नी के पास हफ़्ते में केवल एक बार जाता था और बच्चे के पालन-पोषण के लिए २ शिलिङ्ग तथा पत्नी को चूमने के लिए ४ शिलिङ्ग दे आता था। एक बार उसने चुम्बन के लिए ८ शिलिङ्ग दिया। इसके बाद जब पत्नी ने मूल्य बढ़ा कर १ पौण्ड कर दिया तो उसने आपत्ति की। इस पर दोनों में झगड़ा हुआ, जिसके फल-स्वरूप पत्नी ने अदालत में मारपीट की नालिश की। जज ने बच्चे की परवरिश का अलाउन्स बढ़ा कर १ पौण्ड प्रति सप्ताह कर दिया, पर चुम्बन के मूल्य के विषय में बिलकुल चुप्पी साध ली।

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?

फ़िलेडेल्फ़िया (अमेरिका) की 'गर्ल्स राइफ़िल टीम' की कुछ सदस्याएँ, जो बन्दूक़ चलाने की कला में अत्यन्त प्रवीण हैं।

चीन की नवयुवतियाँ, जो जापानी माल के बहिष्कार के लिए घोर आन्दोलन कर रही हैं। प्रस्तुत चित्र में पाठक उन्हें बहिष्कार सम्बन्धी एक सभा में भाग लेते हुए देखेंगे।

मिस निना जारविस, जो लन्दन के व्हाइट हॉल थिएटर में वेटरेस (महिला-अर्दली अथवा बाँदी) का कार्य करते हुए भी नाटक-लेखिका बनने का घोर प्रयत्न कर रही हैं ।

कुमारी सुरभि सिन्हा, बी० ए०, बी० एल्०—आप बसीन (रङ्गून) के डॉ० आर० एन० सिन्हा ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट की पुत्री हैं। आप रङ्गून की पहली बङ्ग-महिला हैं, जिन्होंने वकालत पास किया है। आप बसीन की अदालत में वकालत आरम्भ करने वाली हैं।

श्रीमती कमलादेवी गुप्ता। आप जबलपुर की महिला-सभा की दूसरी डिक्टेटर हैं। जबलपुर ज़िले की १८वीं डिक्टेटर की हैसियत से एक सभा करने के कारण आपको छः मास का कठोर कारावास का दण्ड मिला है।

नारी-स्वातन्त्र्य की मधुर कल्पना में लीन—बम्बई की एक मज़दूर-बालिका

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?

बम्बई की एक सुगृहिणी, जो सिलाई तथा सजावट आदि का कुल कार्य घर में ही करने के पक्ष में है।

हाल ही में कुछ ऐसे आविष्कार हुए हैं, जिनसे लड़ाई के मैदान में प्रयोग होने वाले भयङ्कर से भयङ्कर ज़हरीले गैस पर विजय पाई गई है। इन आविष्कारों में एक 'गैस-मास्क' (एक विचित्र प्रकार के चेहरे) भी है, जिसके लगाने से नाक, कान अथवा मुँह में ज़हरीले गैस का असर नहीं होता। इस चित्र में पाठक पोलैण्ड की सैनिकाओं को 'गैस-मास्क' लगा कर युद्ध-कला की शिक्षा प्राप्त करते हुए देखेंगे।
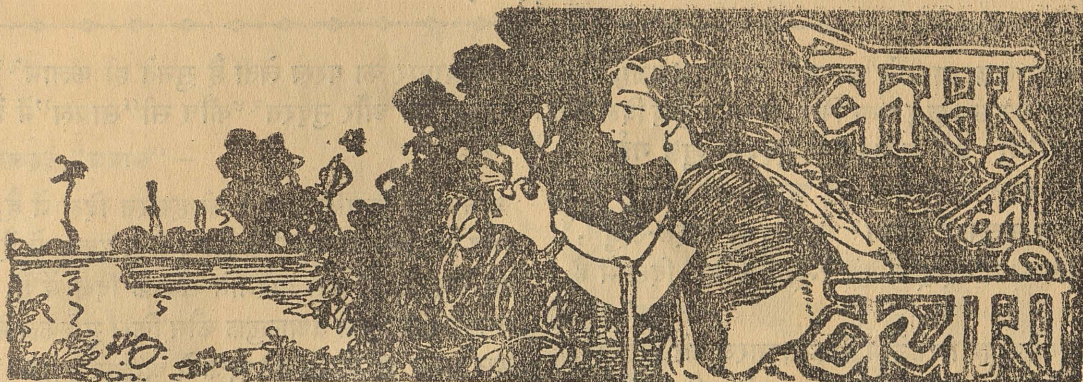
[गत १६ जुलाई १९३२ को गोरखपुर में एक अखिल भारतीय मशायरा हुआ था, जिसमें उर्दू के क़रीब १९० प्रतिष्ठित शायर पधारे थे। 'चाँद' की 'केसर की क्यारी' के सम्पादक कविवर 'बिस्मिल' भी बुलाए गए थे। आपकी रचना ने लोगों को तड़पा दिया था। उक्त मशायरे की कई चुनी हुई कविताएँ नीचे दी जाती हैं। शेष कविताएँ पाठकों को आगामी अङ्क में मिलेंगी।

—स० 'चाँद']

किसको चाहें किस तरह हम, किसको देखें किस तरह ?
एक आलम है नज़र में, एक दुनिया दिल में है !
आप परदे में छुपे बैठे हैं किस दिन के लिए ?
रूबरू अब आइए, दुनिया बड़ी मुश्किल में है !!

रुबाई

दावा नहीं मुझको कि सख़ुनवर हूँ मैं,
बेहतर नहीं है क़ौल कि बेहतर हूँ मैं।
लेकिन शरफ़े[1] "नूह" मेरे नाम में है,
माने कोई इसको तो पयम्बर[2] हूँ मैं।

क़िता

ख़याले ख़ातिरे अहबाब से मसरूर[3] आ पहुँचे,
मुबारक थी कशिश ऐसी, कि इतनी दूर आ पहुँचे।
जनाबे "नूह" को देखो फिर इनके जोश को देखो,
लिए भरपूर इक तूफ़ान गोरखपुर आ पहुँचे !

—'नूह' नारवी

क़िता

कश्तिए शेरोसख़न को लाए गोरखपुर में,
ग़ैर-मुम्किन है कि चक्कर खाए गोरखपुर में।
कह रहा है हर तरफ़ उठ-उठ के तूफ़ाने-कलाम,
"नूह" के हमराह[4] "बिस्मिल" आए गोरखपुर में।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

१—बुज़ुर्गी, २—पैग़म्बर, ३—ख़ुश, ४—साथ।

इस तरह या, उस तरह, दम हर तरह मुश्किल में है,
तीर में है दिल मेरा, या तीर मेरे दिल में है !
ख़ञ्जरे ख़ूँख़्वार चल कर अब नई मुश्किल में है,
कुछ तुम्हारे हाथ में है, कुछ हमारे दिल में है।
ख़ारे-सहरा[1] ख़ुद कफ़े-पा[2] से अलग हो जाएँगे,
आप वह काँटा निकालें, जो हमारे दिल में है !
कुछ अदब[3] का इक़्तिज़ा[4] भी, कुछ तुम्हारा ख़ौफ़ भी,
ला नहीं सकते ज़बाँ तक, हम उसे जो दिल में है !
किसको चाहें किस तरह हम, किसको देखें किस तरह,
एक आलम है नज़र में, एक दुनिया दिल में है।
घर से बाहर का निकलना बन्द हो सकता नहीं,
दिल में रख लें हम किसी को, यह इरादा दिल में है।
रफ़्ता-रफ़्ता मिट गए वह सब हमारे ज़ौक़ो[5] शौक़,
इन्तिहा[6] यह है कि अब हसरत की हसरत दिल में है।
जिस तरफ़ उट्ठीं निगाहें, उस तरफ़ मन्ज़र[7] नया,
एक तुम्हारी शक्ल सौ शक्लों से मेरे दिल में है।

१—जङ्गल के काँटे, २—तलवा, ३—सभ्यता, ४—तक़ाज़ा, ५—उमङ्ग, ६—अन्त, ७—दृश्य।

अल्ला-अल्ला दास्ताने आरज़ू[१] का सिलसिला,
कह गए सब कुछ मगर फिर भी बहुत कुछ दिल में है।
पुरसिशे[२] दर्जे मुहब्बत से मुहब्बत खुल गई,
मेरे दिल ही में नहीं यह आपके भी दिल में है।
क्यों न तूफ़ाने-सख़ुन[३] से शाद हों अहले-सख़ुन,[४]
एक नया पहलू जनाबे "नूह" के हर दिल में है।

—"नूह" नारवी

क्या ख़बर निकले,न निकले,आरज़ू जो दिल में है,
हाँ तमन्ना की झलक सी ख़ञ्जरे क़ातिल में है।
उससे अशवा[५]है जो पहली चर्ख़[६]की मञ्ज़िल में है,
जाँ-नवाज़ो[७]दिल-गुदाज़[८]एक शै कफ़े-क़ातिल[९] में है।
पूछते क्या हो तमन्नाए दिले पुरआरज़ू,
जो उदू[१०]के दिल से बाहर है, वह मेरे दिल में है।
कुछ लिया होता सबक़ दिल-सोज़ियों[११]का इससे भी,
अश्क[१२] रेज़ाँ शम्आ[१३] महफ़िल आपकी महफ़िल में है।
आज वह बेड़ा तेरा, कश्ती वह डूबी इश्क़ की,
मुन्दरिज[१४] एक-एक ख़बर हर मौजए[१५] साहिल[१६] में है।
घर ख़ुदा का है, महल[१७]है हिर्स[१८]का,एवाने[१९]-ग़म,
इतनी वसअत,[२०]इतनी गुञ्जाइश दो-हरफ़ी दिल में है।
शम्आ की लौ ने दिखाया मञ्ज़रे शादियो[२१] ग़म,
यानी एक ख़ामोश महफ़िल,बोलती महफ़िल में है।
तीर की दूँ दाद या दिल को सराहूँ तीरज़न[२२],
तीर में है दिल मेरा, या तीर तेरा दिल में है।

१—अभिलाषा की कहानी, २—पूछ-ताछ, ३—कविता की बाढ़, ४—कविगण, ५—छेड़छाड़, ६—आकाश, ७—जी बहलाने वाला, ८—दिल पिघलाने वाला, ९—हाथ, १०—दुश्मन, ११—दिल जलाना, १२—आँसू, १३—दीपक, १४—लिखा हुआ, १५—लहरें, १६—किनारा, १७—मौक़ा, १८—लालच, १९—महल, २०—समाई, २१—.ख़ुशी, २२—तीर चलाने वाला।

शैरो शायर का परख लेता है सुनते ही कलाम[२३],
शायरी की और क़ुदरत[२४]कौन सी "सायल" में है।

—"सायल" देहलवी

जीने वाले किसलिए जीने की हसरत दिल में है,
मौत के हाथों अजल[२५] से ज़िन्दगी मुश्किल में है।
गो समझते हैं, मेरा अरमान सब के दिल में है,
उनको इससे क्या तआल्लुक़ कौन किस मुश्किल में है।
इस तरफ़ भी हो निगाहे लुत्फ़ ऐ आलम-नवाज़[२६],
एक जहाने आरज़ू आबाद मेरे दिल में है।
आप परदे में छुपे बैठे हैं किस दिन के लिए,
रूबरू अब आइए दुनिया बड़ी मुश्किल में है!
चल रहे हैं चलने वाले अपनी-अपनी राह पर,
कौन यह किसको बताए कौन किस मञ्ज़िल में है।
एक तरफ़ ज़ौक़े परस्तिश[२७],एक तरफ़ शौक़े-सजूद[२८]
साथ काबे के सनमख़ाना[२९]हमारे दिल में है।
यह अँधेरी रात, यह बहरे[३०] ग़मे उल्फ़त का जोश,
ख़ैर से कश्ती हमारी दामने साहिल में है।
ग़ैर के आगे न पूछो इसमें है एक ख़ास राज़[३१],
फिर बता दूँगे तुम्हें, जो कुछ हमारे दिल में है।
जब बगूला दश्त[३२] में उठ कर ज़रा ऊँचा हुआ,
क़ैस[३३] यह समझा कि बस लैला इसी महमिल[३४] में है।
आह करता मैं तो होता और भी रुस्वाए[३५]ख़ल्क़,
यह ग़नीमत है कि दिल का राज़ मेरे दिल में है।
इससे बढ़कर और क्या हो तेरा[३६] क़ातिल का लिहाज़
वह तमन्ना भी है बिस्मिल जो दिले "बिस्मिल" में है।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

२३—कविता, २४—.ख़ूबी, २५—आदि, २६—संसार पर कृपा करने वाले, २७—पूजा करना, २८—सिजदा करना, २९—मन्दिर, ३०—ग़म का समुद्र, ३१—भेद, ३२—जङ्गल, ३३—मजनूँ का असली नाम, ३४—परदा, ३५—संसार से बुरा, ३६—तलवार।
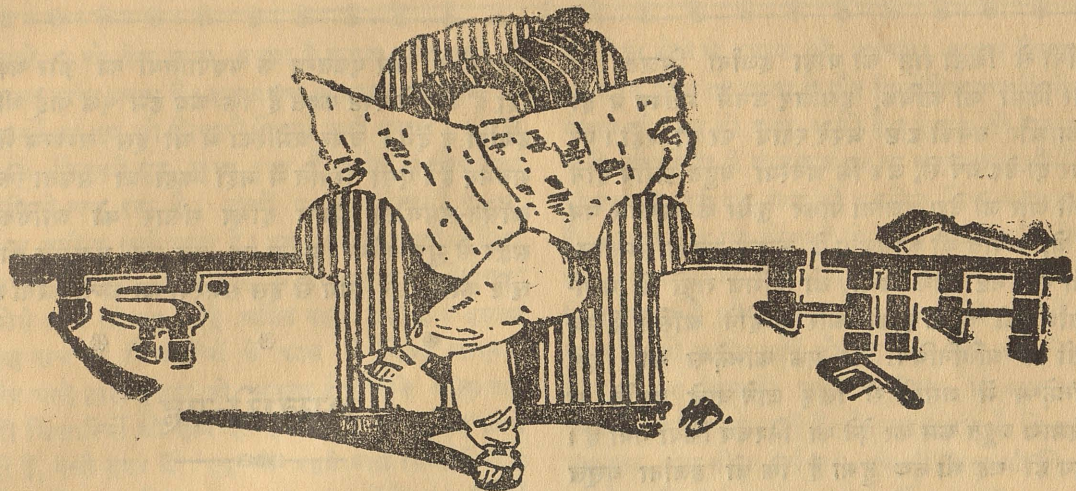
संसार-व्यापी अर्थ-सङ्कट

वर्तमान समय में संसार ऐसे भीषण आर्थिक सङ्कट में होकर गुज़र रहा है, जिसकी मिसाल गत कई सौ वर्षों के इतिहास में नहीं मिल सकती। वैसे तो पूँजीवादी पद्धति, जिसका इस समय संसार में बोल-बाला है, स्वभाव से ही ऐसी है कि उसके फल-स्वरूप सम्पत्ति का बटवारा अत्यन्त विषम रूप धारण कर लेता है और एक के बाद दूसरी आर्थिक हलचल उत्पन्न होती रहती है। पर गत महायुद्ध में जर्मनी के परास्त हो जाने और उससे खर्बों रुपए हर्जाने के स्वरूप में लेने से परिस्थिति और भी विकट हो गई है और तमाम संसार की दौलत अमेरिका तथा फ़्रान्स के पास इकट्ठी होती जाती है। इस समय जब कि अमेरिका के पास ३ अरब १९ करोड़ और फ़्रान्स के पास ३ अरब २० करोड़ का सोना है, तब इङ्गलैण्ड और जर्मनी के सुवर्ण-भण्डार का मूल्य क्रमशः ६६ करोड़ और १९ करोड़ ही है। इसका प्रभाव अन्य देशों की आर्थिक स्थिति पर बहुत बुरा पड़ा है और उनका व्यापार-व्यवसाय नष्ट होता जाता है। इसके फल-स्वरूप सभी देशों में करोड़ों व्यक्ति बेकार बैठे हुए हैं और उनका भरण-पोषण सरकारों को करना पड़ता है। कितने ही विचारशील व्यक्तियों का कथन है कि यदि इस दशा में सुधार न हुआ तो शीघ्र ही यूरोप का सर्वनाश हो जायगा। भारत के भूतपूर्व अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकट ने हाल ही में एक भाषण देते हुए कहा है :—

"हम सुन रहे हैं कि केवल दस-बारह वर्ष के भीतर यूरोपियन सभ्यता का उसी प्रकार नाश हो जायगा, जैसा किसी समय रोमन सभ्यता का हुआ था। साधारण लोग इस कथन को कोरी कल्पना मानते हैं। पर मेरा विश्वास है कि निश्चय ही एक बहुत बड़ा ख़तरा हमारे सामने मौजूद है, और पिछले दस-पाँच वर्षों में हमने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जितनी बुद्धिमत्ता प्रकट की है, अगर अब उसकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्ता से काम न लिया गया तो निश्चय ही हमको विपद में पड़ना पड़ेगा। सभ्यता का यह नाश, चाहे जिस ढङ्ग से हो, पर यह निश्चित है कि वह किसी अनपेक्षित मार्ग से होगा, और सम्भवतः वह शीघ्र नहीं होगा। सर्व-नाश होने से पहले हम कितनी ही बार ऊपर-नीचे जायँगे और प्रत्येक बार थोड़ा-थोड़ा नाश के निकट पहुँचते जायँगे।"

इस भयङ्कर विपद से बचने के लिए यूरोपियन राष्ट्र कितने ही समय से भिन्न-भिन्न प्रकार की योजनाएँ तैयार कर रहे हैं और कितनी कॉन्फ़्रेन्सें भी हो चुकी हैं। उनका मुख्य उद्देश्य यही रहा है, कि हर्जाने के प्रश्न का निर्णय किसी प्रकार स रीति से किया जाय कि जर्मनी की आर्थिक दशा सँभली रहे। अन्यथा एक बड़े देश में आर्थिक गड़बड़ी फैले रहने से उसका कुप्रभाव समस्त देशों पर पड़ना अवश्यम्भावी है। पर चूँकि

जर्मनी से किसी राष्ट्र को थोड़ा हर्जाना मिलता था और किसी को अधिक, इसलिए उनमें मतैक्य न हो सका और उनकी दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही रही। पर इधर दो-डेढ़ वर्ष से, जब कि अवस्था बहुत ख़राब होने लगी और जो देश हर्जाना पाकर कुबेर के भण्डार बन रहे थे, सम्पत्ति की अधिकता के कारण उनका समतोलपना भी नष्ट होने लगा, तो विभिन्न राष्ट्रों के कर्ता-धर्ताओं की आँखें खुलीं और उन्होंने लॉसेन में सब देशों के प्रतिनिधियों की एक कॉन्फ़्रेन्स की। इस कॉन्फ़्रेन्स में जर्मनी से लिए जाने वाले हर्जाने का परिमाण बहुत कम कर देने का निश्चय किया गया है। साथ ही यह भी तय हुआ है कि जो हर्जाना वसूल होगा, वह मध्य यूरोप के दुर्दशाग्रस्त राष्ट्रों की रक्षा में व्यय किया जायगा। इस योजना के महत्व को बतलाते हुए इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० रामज़े मैकडॉनल्ड ने हाउस ऑफ़ कॉमन्स में कहा था :—

"लॉसेन कॉन्फ़्रेन्स के फल से हर्जाना-सम्बन्धी उन प्रश्नों का निबटारा हो सकेगा, जो किसी न किसी रूप में उन तमाम आर्थिक सङ्कटों के कारण रहे हैं, जो महायुद्ध के पश्चात् संसार को सहन करने पड़े हैं। इन्हीं के फल से प्रत्येक देश का वार्षिक बजट असलियत को खो बैठा है और यूरोप के मध्य में एक ऐसा देश उत्पन्न हो गया है, जिसकी आर्थिक दशा समस्त संसार के लिए भयजनक है। जब तक ये हर्जाने क़ायम रहेंगे, तब तक उद्योग-धन्धों का पुनरुद्धार कदापि नहीं हो सकता। इन हर्जानों के विषय में जो मूर्खता की गई थी, उसके सम्बन्ध में अनेक योजनाएँ बनाई गईं और बहुत सी कॉन्फ़्रेन्सें हुईं। अब आशा है कि लॉसेन कॉन्फ़्रेन्स इस सम्बन्ध में अन्तिम होगी।"

पर अभी यह समझौता पक्का नहीं हुआ है। क्योंकि अमेरिका ने, जिसके यूरोपियन राष्ट्र क़र्ज़दार हैं और जोकि हर्जाने की रक़म का एक बड़ा अंश पाता है, इसमें भाग नहीं लिया है और न उसने यह स्वीकार किया है कि वह अपना क़र्ज़ा छोड़ देगा। अगर अमेरिका ने अपना क़र्ज़ा न छोड़ा तो यूरोपियन राष्ट्र भी जर्मनी से हर्जाना लेना बन्द नहीं कर सकते। पर इस समझौते के सिवाय और भी कितनी ही शक्तियाँ इस सम्बन्ध में कार्य कर रही हैं। जर्मनी में हिटलर के अनुयायियों और एकतन्त्र के पक्षपातियों का ज़ोर बढ़ रहा है और वे स्पष्ट कहते हैं कि अब हम एक पाई भी हर्जाना न देंगे। उधर अमेरिका में भी इस सम्बन्ध में मतभेद है। ऐसी स्थिति में नहीं कहा जा सकता कि लॉसेन-समझौता सफल होकर संसार को आर्थिक सङ्कट से मुक्त करेगा अथवा वह एक नए महायुद्ध की सृष्टि करके दूसरे मार्ग से इस समस्या का अन्त करेगा।

❀ ❀ ❀

भिखारी-गृह

हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े नगरों और तीर्थ-स्थानों में भिखारियों की संख्या आजकल निरन्तर बढ़ती जाती है, और देश के विचारशील व्यक्तियों का ध्यान इस तरफ़ आकर्षित हो रहा है। इन भिखारियों के कारण आर्थिक हानि तो होती ही है, साथ ही उनका दृश्य दर्शकों के हृदय में घृणा उत्पन्न करता है और उनके कारण रोग फैलने की भी सम्भावना रहती है। क्योंकि कोढ़ी और अन्य छूत वाले रोगों में ग्रसित भिखारियों को जो पैसे दिए जाते हैं, वे उनसे जीवन-निर्वाह की सामग्री ख़रीदते हैं, और डॉक्टरी मत के अनुसार ऐसा होने से उन रोगों के कीटाणु दूसरे लोगों तक पहुँचने की आशङ्का रहती है। इन कारणों से कितने ही लोग समय-समय पर भिखारी-गृहों की स्थापना का प्रस्ताव किया करते हैं, जहाँ पर इन लोगों को सुरक्षित रूप से रक्खा जाय और जिनसे हो सके उनसे यथाशक्ति काम भी कराया जाय। सन्तोष का विषय है कि उटाकमाण्ड की म्युनिसिपैलिटी ने इस सम्बन्ध में आगे क़दम बढ़ाया है। उसके सदस्यों ने रेवरैण्ड थियोबाल्ड के प्रस्ताव पर निश्चय किया है कि उटाकमाण्ड की सड़कों और गिर्जे के रास्ते आदि में जो भिखारी भीख माँगते रहते हैं, उनमें से उपयुक्त लोगों को इस 'गृह' में भेज दिया जाय। रेवरैण्ड थियोबाल्ड ने अपने भाषण में यह भी बतलाया था कि इस प्रकार का भिखारी-गृह कोलम्बो में वर्तमान है। वहाँ भिखारियों की परवरिश की जाती है और उनसे काम भी कराया जाता है। जो लोग काम करना नहीं चाहते,

उनको या तो जेल जाना पड़ता है अथवा कोलम्बो से निकल जाना पड़ता है। इस प्रबन्ध के कारण कोलम्बो की सड़कों पर एक भी भिखारी दिखाई नहीं पड़ता। तञ्जोर में भी भिखारी-गृह खुला हुआ है, जो सन्तोषजनक रीति से चल रहा है। उसमें हरएक भिखारी पर छः रुपए मासिक ख़र्च पड़ता है। इन सब उदाहरणों से सिद्ध होता है कि यदि अन्य नगरों में भी इस प्रकार के 'गृह' खोले जायँ तो यह कोई कठिन बात नहीं है। इसका कुछ ख़र्च तो भिखारियों के काम से निकल आएगा, शेष चन्दे द्वारा इकट्ठा हो सकता है। चूँकि लोग अब भी भिखारियों को दान देते हैं और वे अपना पेट भरते ही हैं, ऐसी दशा में 'गृह' में रहने वाले भिखारियों के लिए भी चन्दा मिल जाना असम्भव नहीं है। इन लोगों का भार अब भी समाज पर है और उस दशा में भी समाज पर रहेगा। पर तब कम से कम उनकी एक व्यवस्था रहेगी और वे जनसाधारण को न तो तङ्ग कर सकेंगे न ठग सकेंगे, जैसा कि आजकल प्रायः देखने में आता है।

* * *

स्कूली रीडरें

इधर कई वर्षों से स्कूली किताबों के सम्बन्ध में बड़ी गड़बड़ी देखने में आ रही है। प्रति वर्ष नई किताबें बदली जाती हैं, और एक ही समय कई प्रेसों की किताबें मञ्ज़ूर की जाती हैं। इसके फल-स्वरूप ग़रीब विद्यार्थियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। अब से पचीस-तीस वर्ष पहले जब यह 'परिवर्तन' का रोग नहीं था, लड़के प्रायः अपने भाइयों, मित्रों या सहपाठियों से पुरानी किताबें माँग कर काम चला लेते थे। अथवा आधे या तिहाई दाम में दूसरों से पुस्तकें ख़रीद लेते थे। पर जब से शिक्षा का 'प्रचार' बढ़ने लगा है और विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है, तब से इस व्यवसाय में चार पैसे की आमदनी देख कर अनेक प्रेस वालों, प्रकाशकों और लेखकों की लार टपकने लगी है। वे लोग अपने परिचित टैक्सट् बुक कमिटी के मेम्बरों अथवा अन्य उच्च-पदस्थ लोगों द्वारा कोशिश कराके अपनी-अपनी पुस्तकों को मञ्ज़ूर कराने की चेष्टा करते हैं। ऐसा होने से पुस्तक की उत्तमता अथवा निकृष्टता का प्रश्न गौण हो जाता है और सिफ़ारिश तथा वैयक्तिक प्रभाव की बात ही मुख्य रहती है। हमारा तो अनुमान है कि गवर्नमेण्ट ने जान-बूझ कर या कुछ स्वार्थी लोगों ने चालबाज़ी द्वारा इस प्रथा को प्रचलित किया या कराया है। इसका फल यह होता है कि कुछ चलते-पुर्ज़े लोगों और प्रेस वालों को बड़ी-बड़ी रक़में कमाने का अवसर मिल जाता है और उसका भार उन ग़रीब लोगों पर पड़ता है, जो भरपेट खाने को भी नहीं पाते और जिनके लिए दो-एक रुपए की पुस्तकें ख़रीदना भी बड़ा भारी काम है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या कारण है कि पहले दस-दस, बीस-बीस वर्ष तक एक ही तरह की किताबें पढ़ाई जाती थीं, पर अब हर साल बिना बदले काम नहीं चलता? पहले 'हिन्दी शिक्षावली' और मौलाना मुहम्मद इसमाईल-कृत उर्दू की किताबें लगातार बरसों तक स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं, और जहाँ तक हम समझते हैं वे आजकल की रीडरों की अपेक्षा किसी प्रकार निकृष्ट न थीं। इतना ही नहीं, कितने ही पुराने अनुभवी शिक्षक तो उनको हर प्रकार से श्रेष्ठ बतलाते हैं। तब उनके स्थान में आजकल नई पुस्तकें जारी करने की क्या आवश्यकता थी? यदि थोड़ी देर के लिए इन पुरानी किताबों की बात छोड़ भी दें तो हम यह जानना चाहते हैं कि एक वर्ष जो पुस्तक मञ्ज़ूर की जाती है, दूसरे वर्ष उसमें ऐसा कौन सा दोष उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण उसका बदलना आवश्यक हो? यदि यह कहा जाय कि नवीन पुस्तकें पुरानी पुस्तकों की अपेक्षा उत्तम होती हैं, तो यह भी ग़लत है। यदि ऐसा होता तो बीसियों बार के परिवर्तन के फल से अब तक ये रीडरें निश्चय ही उन्नति के शिखर पर पहुँच गई होतीं। पर ऐसी कोई बात देखने में नहीं आती, वरन् प्रत्यक्ष में तो यही मालूम हो रहा है कि पुरानी दो-चार रीडरों के लेखों को संग्रह करके और उसमें दस-पाँच मासिक पत्रों के लेख जोड़ कर नई रीडर बना दी जाती है। यह बात भी जाँच करने लायक़ है कि जिन लोगों का नाम लेखक की हैसियत से इन रीडरों पर छपता है, वे हिन्दी के कितने बड़े विद्वान हैं और उन्होंने इसके पहले हिन्दी के किन-किन ग्रन्थों की रचना की है? मामला यहीं ख़त्म नहीं हो जाता। वास्तविक रहस्य,

जोकि अब जनता से अप्रकट नहीं है, यह है कि जिन लोगों का नाम लेखक की हैसियत से इन रीडरों पर छपता है, वे उनमें हाथ भी नहीं लगाते। वे उनको किसी बहुत साधारण व्यक्ति से सौ-पचास रुपया देकर संग्रह करवा लेते हैं। उनको जो लिखाई या गहरा पुरस्कार मिलता है वह प्रायः रीडरों के लिए नहीं होता, वरन् उनको मञ्जूर कराने में परिश्रम करने का होता है।

इस प्रकार हमारे बालकों को शिक्षा-विज्ञान-विहीन, भाषा-ज्ञान-शून्य और तीन कौड़ी के लेखकों द्वारा निर्मित सारहीन पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। यदि शिक्षा-विभाग का उद्देश्य सचमुच यही है कि बालकों के लिए उत्तम से उत्तम श्रेणी की पुस्तकें तैयार कराई जायँ, तो क्या यह उचित न होगा कि हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों की एक कमिटी नियत करके रीडरें तैयार कराई जायँ और फिर उनको दस-बीस वर्ष तक लगातार प्रचलित रक्खा जाय। ऐसा करने से बालकों के लिए श्रेष्ठ साहित्य भी तैयार हो सकेगा और ग़रीब लड़कों को शिक्षा प्राप्त करने में सुभीता भी होगा। हमें आशा है कि शिक्षा-प्रेमी व्यक्ति इस सम्बन्ध में ध्यान देंगे और शिक्षा-प्रचार के मार्ग में पड़ने वाली इस बड़ी बाधा को दूर कराने का प्रयत्न करेंगे।

❀ ❀ ❀

समाचार-पत्रों की कठिनाइयाँ

कुछ समय पहले लाहौर के 'फ़्री प्रेस' द्वारा समाचार-पत्रों को सूचना दी गई थी कि उतमानज़ई गाँव में फ़्रण्टियर-गाँधी ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ का घर सरकारी सेना ने जला डाला। बाद में पता चला कि यह अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ कोई दूसरे व्यक्ति हैं, जिनका मकान उमरज़ई नामक गाँव में है। सरकार ने 'फ़्री प्रेस' के एडीटर श्री० पी० दत्त और कई अख़बार वालों पर झूठी ख़बर भेजने और छापने का अभियोग चलाया। श्री० दत्त ने इस भूल के लिए खेद-प्रकाश किया, पर सरकार ने मुक़दमा जारी ही रक्खा। परिणाम-स्वरूप श्री० दत्त को दोषी ठहराया गया और १००) जुर्माना अथवा एक मास की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। इस मुक़दमे की कार्रवाई पर ध्यान देने से स्पष्ट जान पड़ता है कि वास्तव में आजकल समाचार-पत्रों का कार्य बड़ा कठिन और भयपूर्ण हो गया है। जिस समय की यह घटना है, उस समय सीमा-प्रान्त में एक प्रकार से सेना का ही शासन था और वहाँ से लोगों का न आ सकना या वहाँ जा सकना एक प्रकार असम्भव हो गया था। चिट्ठी और तारों पर कड़ा सेन्सर था। ऐसी दशा में सिवा विश्वासपात्र व्यक्तियों द्वारा समाचार प्राप्त कर सकने के कोई साधन न था। पर उन लोगों को भी लुक-छिप कर तथा अपनी जान ख़तरे में डाल कर यह कार्य करना पड़ता था। मुक़दमे में कितने ही प्रतिष्ठित लोगों ने गवाही में बतलाया था कि सरकारी सेना और पुलिस ने उक्त गाँव और आस-पास के स्थानों में सैकड़ों घरों को बिना कारण जला दिया था। उनमें ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ के लालकुर्ती वालों के क्वार्टर भी थे। ऐसी परिस्थिति में अगर यह ख़बर फैल गई कि ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ का घर जला दिया गया तो इस पर विश्वास कर लेना स्वाभाविक ही था। पर मैजिस्ट्रेट ने इन बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया और उसने अपने फ़ैसले में लिखा है कि "अभियुक्त ने देश की राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए इस सम्बन्ध में पता लगाने की जो चेष्टा की, वह समुचित नहीं थी, और उसने इस विषय में उतना उद्योग नहीं किया, जितना किसी मनुष्य के लिए सम्भव था।" आश्चर्य की बात है कि यह मानते हुए भी कि उस समय सीमा-प्रान्त से पत्र-व्यवहार कर सकने या वहाँ आने-जाने का कोई साधन न था, मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्त पर इस तरह का दोषारोपण किया। यह स्पष्ट है कि अख़बार वाले प्रत्येक मामले की जाँच ख़ुद मौक़े पर जाकर नहीं कर सकते। उनको अपने सम्वाददाताओं और प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा भेजे हुए सम्वादों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यदि उनमें कभी किसी तरह की भूल हो जाय तो न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह इस बात का पता लगावे कि भूल जान-बूझ कर की गई है या अनजान में। यदि अख़बार वाले का उस सम्वाद के प्रकाशित करने में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है और उसने केवल अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए उसे प्रकाशित किया है तो उसे दोषी नहीं माना

जा सकता। पर आजकल शासकों ने समाचार-पत्र वालों को विशेष रूप से अपना लक्ष्य बना रक्खा है, और इसलिए साधारण भूलों के लिए भी उनको दोषी ठहरा दिया जाता है। यह प्रश्न केवल 'फ़्री प्रेस' का ही नहीं है, वरन् समस्त समाचार-पत्रों से इसका सम्बन्ध है। इसलिए चेष्टा की जानी चाहिए कि इसकी अपील की जाय और उपरोक्त दण्ड को दूर कराके पत्रों के एक अधिकार की रक्षा की जाय।

❀ ❀ ❀

स्वदेशी पर कुदृष्टि

स्वदेशी और खद्दर-प्रचार राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रधान अङ्ग हैं। देशोन्नति के लिए स्वदेशी के महत्व से कोई व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता। और तो क्या, गवर्नमेण्ट भी इसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सकती, और कम से कम प्रत्यक्ष में तो इसका समर्थन ही करती है। क्योंकि आजकल भारतवासियों को जो कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं, उनका मूल कारण यहाँ की आर्थिक दुर्दशा है, और इसका सुधार अधिकांश में स्वदेशी द्वारा ही सम्भव है। इससे देश का करोड़ों रुपया, जो शौक़ीनी की अथवा कम लागत होने पर भी अधिक मूल्य वाली वस्तुओं के लिए, बाहर चला जाता है, वह देश में ही बच रहेगा। इस प्रकार लोगों को जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर सकने में सुभीता होगा। यह एक ऐसी आवश्यक बात है कि भारत ही नहीं, संसार का प्रत्येक देश इस नीति का अनुसरण कर रहा है। ख़ास इङ्गलैण्ड में इन दिनों स्वदेशी-प्रचार पर बहुत अधिक ज़ोर दिया जा रहा है।

यह सब होने पर भी यहाँ के कितने ही ऐङ्गलो-इण्डियन पत्र इस उपकारी आन्दोलन के प्रति शत्रुता का भाव रखते हैं और समय-समय पर इस पर ऐसे दोषारोपण किया करते हैं, जिससे सरकार इसमें हस्तक्षेप करे। हाल ही में बम्बई के 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' ने इस सम्बन्ध में ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय दिया था। उसने कॉङ्ग्रेस और स्वदेशी पर आक्षेप करते हुए लिखा था :—

"कॉङ्ग्रेस की योजना यह है कि स्वदेशी आन्दोलन से अपने कार्यों को छिपाने में सहायता ले। इसके द्वारा उसके कार्यकर्ताओं को यह कहने का मौक़ा मिल जाता है कि वे केवल खद्दर बेचते हैं अथवा स्वदेशी-प्रचार करते हैं। इस उपाय से कॉङ्ग्रेस यह भी आशा करती है कि ऐसे लोगों की सहानुभूति भी, जो स्वदेशी को राजनीति से अलग समझ कर उसमें सम्मिलित होते हैं, उसके साथ हो जायगी। इसको आशा है कि न तो 'स्वदेशी ख़रीदो' आन्दोलन के नेता और न गवर्नमेण्ट कॉङ्ग्रेस-सञ्चालकों की इस चाल से धोखा खाएँगे।"

इसका स्पष्ट आशय यह है कि स्वदेशी-प्रचार का आन्दोलन कॉङ्ग्रेस ने सरकार को धोखा देने के लिए चलाया है, और सरकार को चाहिए कि उस पर कड़ी नज़र रक्खे। यह हो सकता है कि कुछ लोग ऐसे हों, जो कॉङ्ग्रेस में भी काम करते हों और स्वदेशी आन्दोलन में भी। पर इसके आधार पर इस समस्त आन्दोलन को कॉङ्ग्रेस की कार्यवाहियों का आवरण बतलाना कहाँ का न्याय है? स्वदेशी-प्रचार एक शुद्ध आर्थिक आन्दोलन है और कॉङ्ग्रेस का सम्बन्ध होने पर भी उसे दूषित अथवा आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता।

❀ ❀ ❀

सनातनधर्मी ध्यान दें!

रोम के पोप ने, जो संसार के करोड़ों रोमन कैथलिक ईसाइयों के सब से बड़े धर्मगुरु हैं, हाल में एक अनुकरणीय कार्य किया है। उन्होंने आदेश दिया है कि रोम के गिर्जाघरों में मूर्तियों के सम्मुख मोमबत्तियाँ न जलाई जायँ। क्योंकि इससे गिर्जाघरों की सुन्दरता अथवा स्वच्छता की तो वृद्धि होती नहीं, वरन् धुएँ से उनकी दीवालें काली हो जाती हैं। रोम के जिन गिर्जाघरों के सम्बन्ध में यह आज्ञा दी गई है, उनमें क़रीब एक हज़ार वर्षों से मूर्तियों के आगे बत्तियाँ जलती आई हैं और कितने ही लोग इसे एक महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य मानते हैं। पर पोप ने इन बातों पर ध्यान न देकर एक हानिकारक प्रथा को एकदम बन्द करा

दिया। आशा की जाती है कि संसार के अन्य तमाम रोमन कैथलिक गिर्जाघर भी इस आदेश पर अमल करेंगे और इस प्रकार लाखों रुपए, जो बत्तियों में ख़र्च होते थे, अन्य उपयोगी कार्यों में ख़र्च किए जा सकेंगे। साथ ही गिर्जाघर भी पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छ रहेंगे। यह एक ऐसी घटना है, जिससे हमारे देश के कट्टर सनातनधर्मी, जो अपनी ख़ूबी पुरानी लकीर को पीटने में ही समझते हैं, बहुत लाभ उठा सकते हैं। ईसाइयों का रोमन कैथलिक सम्प्रदाय भी सनातन-धर्मियों के समान ही पुराण-पन्थी है, उन्हीं के समान वह मूर्तिपूजक भी है, और उसके पोप का रहन-सहन तथा स्थिति भी अनेकांश में हमारे यहाँ के आचार्यों और महन्तों से मिलती-जुलती है। पर इतना होने पर भी वे समय की गति को दृष्टि से ओझल नहीं होने देते और समय-समय पर अपने सम्प्रदाय में ऐसे सुधार करते रहते हैं, जो लाभदायक हों। पर हमारे यहाँ की हालत बिल्कुल उल्टी है। कई वर्ष पहले जब खद्दर का आन्दोलन आरम्भ हुआ था, तो मन्दिर वालों से कहा गया था कि वे विलायती वस्त्र त्याग कर ठाकुर जी को खद्दर के कपड़े पहिनाया करें। यह कोई युग-परिवर्तनकारी प्रस्ताव नहीं था, पर इसे भी उन लोगों ने लकीर से हट जाना समझा और अस्वीकार कर दिया। उनमें से कुछ लोगों ने जवाब दिया कि हमारे ठाकुर जी का शरीर बहुत कोमल है, उनको खद्दर के वस्त्र पहिनने से कष्ट होगा। यही हालत अछूतों के सम्बन्ध में है। सनातनधर्मियों से कहा जाता है कि जब कोई अछूत मुसलमान या ईसाई बन कर तुम्हारे कुएँ से पानी भर सकता है या तालाब में नहा सकता है, तो तुम उसे हिन्दू रहते हुए ही ऐसा करने की इजाज़त क्यों नहीं देते। पर इस दलील की सचाई को मानते हुए भी लकीर मिट जाने के भय से वे ऐसा करने को तैयार नहीं हैं। ये और इस तरह की अन्य सैकड़ों बातें प्रकट करती हैं कि हमारे सनातनी भाई या तो समय की गति पर दृष्टि नहीं रखते या उनकी बुद्धि ताले में बन्द है। अगर वे पोप के उपरोक्त उदाहरण से कुछ शिक्षा ग्रहण करें, तो उनका और देश का बहुत-कुछ कल्याण हो सकता है।

❀ ❀ ❀

भारत की आर्थिक दुरवस्था

भारतवर्ष की ग़रीबी और कङ्गाली संसार में मशहूर है। यहाँ के लोगों की औसत आमदनी दुनिया के तमाम देशों के निवासियों की औसत आमदनी की अपेक्षा कम है। अन्न-वस्त्र के अभाव से अनगिनती लोग प्रतिवर्ष प्राण खोते हैं। यहाँ के शिक्षित लोगों की दुर्दशा देख कर रोने को जी चाहता है। बेचारे किसी प्रकार मर-खप कर स्कूलों और कॉलेजों की परीक्षाएँ पास करते हैं और बाद में बीस-पचीस रुपए की नौकरी के लिए भी गिड़गिड़ाते फिरते हैं।

देश की ऐसी भयङ्कर आर्थिक अवस्था है, पर सरकार उसके सुधारने की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं देती। इसके विपरीत वह ऐसी आर्थिक नीति से काम लेती है, जिससे यहाँ की बची-खुची सम्पत्ति भी लुट रही है और व्यवसाय-वाणिज्य का नाश हो रहा है। इस नीति की आलोचना करते हुए कलकत्ते के इण्डियन चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स ने थोड़े दिन पहले भारत-सरकार के पास एक पत्र भेजा था, जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सरकार इस देश के निवासियों की अपेक्षा विलायत वालों के हित का ही ख़्याल पहले करती है, और उसी के फल से यहाँ की स्थिति सुधरने के बजाय दिन पर दिन ख़राब होती जाती है। कलकत्ते के चैम्बर ने और अन्य भारतीय व्यापारिक संस्थाओं ने समय-समय पर सरकार की इस नीति का विरोध किया है और स्थिति को सुधारने के उपाय सुझाए हैं, पर अधिकारियों ने दो-चार मीठी-मीठी बातें कह देने के सिवा उन पर कभी अमल नहीं किया। गत ६ जून को भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर जॉर्ज शुस्टर ने भारतीय चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स-प्रेज़िडेण्ट को एक पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था कि वे परिस्थिति की गम्भीरता को भली-भाँति समझते हैं, और अच्छी तरह जानते हैं कि वस्तुओं का भाव गिर जाने से देश के सम्मुख बड़ी भीषण समस्या उत्पन्न हो गई है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि स्थिति को सुधारने का असली उपाय यही है कि सोने के मूल्य को घटा कर चीज़ों का भाव उचित स्थान पर पहुँचा दिया जाय। यद्यपि अर्थ-सदस्य ने इस प्रकार भारतीय व्यापारिक

संस्थाओं की अधिकांश बातों को स्वीकार कर लिया, पर उनमें से एक भी कार्यान्वित न हो सकीं। भारत की अर्थ-नीति का नियन्त्रण अब भी 'व्हाइट हॉल' (इङ्गलैण्ड की सरकार) द्वारा हो रहा है और भारतीयों की पुकार की बिल्कुल उपेक्षा की जा रही है।

सरकारी अर्थ-नीति का एक फल यह हुआ है कि पिछले आठ-दस महीनों में सत्तर करोड़ रुपए से अधिक का सोना विदेश चला गया है। इस सम्बन्ध में भारतीय प्रतिनिधियों ने सरकार से बार-बार आग्रह किया कि सोने का इस प्रकार देश से निकल जाना बड़ा अमङ्गल-जनक है और उसका कर्तव्य है कि वह स्वयं सोने को बाज़ार-दर पर ख़रीद कर ख़ज़ाने में रक्खे। यद्यपि इङ्गलैण्ड और अन्य तमाम देश इसी नीति का अनुसरण करके अपने देश के सुवर्ण की रक्षा कर रहे हैं, पर भारत-सरकार ने अभी तक इस सम्बन्ध में कोई भी कार्यवाही नहीं की है।

सोने की इस निकासी का प्रभाव देश के व्यापार पर बहुत बुरा पड़ा है। आरम्भ में तो चीज़ों का दाम कुछ चढ़ा, पर बाद में और भी गिर गया। पिछले नौ महीनों में ये भाव किस प्रकार बढ़े और घटे हैं, उसका विवरण इस प्रकार है। इससे प्रकट होता है कि सौ रुपए के माल की क़ीमत में कितनी घटी हुई है :—

	अनाज	दाल	चाय	तेलहन	तेल	जूट
सितम्बर १९३१	७३	९१	६३	७८	६५	५४
अक्टूबर ,,	७७	९१	६८	८८	६४	६२
नवम्बर ,,	७६	९६	७५	८०	६५	६०
दिसम्बर ,,	७८	१०८	६८	८०	.६५	५८
जनवरी १९३२	७६	१०६	६१	८१	६५	५२
फ़रवरी ,,	७२	९५	६२	८४	६५	५१
मार्च ,,	७०	८६	६०	७२	६१	४६
अप्रैल ,,	६६	८३	५९	७१	६४	४५
मई ,,	६६	८७	५७	७२	५७	४२

इसका प्रभाव भारत के आयात और निर्यात पर भी पड़ा है। अब तक इस देश में जितना माल विदेशों से आता था, उसकी अपेक्षा अधिक रुपयों का माल यहाँ से जाता था। पर चूँकि अब यहाँ से सोना बाहर जा रहा है, इसलिए उसके बदले में विदेशी माल अधिक परिमाण में यहाँ आने लगा है। गत अप्रैल मास में २ करोड़ और मई में २ करोड़ ४६ लाख रुपए का माल निर्यात की अपेक्षा अधिक आया है।

इन तमाम बातों का सारांश यही है कि देश की वर्तमान आर्थिक दुरवस्था का सुधार करने की कुञ्जी सरकार के हाथ में ही है, और यह कार्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब कि शासकगण इङ्गलैण्ड के हानि-लाभ की अपेक्षा भारत के हानि-लाभ का ख़्याल पहले करें। सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि रुपए का सम्बन्ध पौण्ड से न रक्खा जाय और न उसके विनिमय की दर को कृत्रिम रीति से १ शिलिङ्ग ६ पेन्स नियत किया जाय। यदि भारत के सिक्के का अस्तित्व स्वतन्त्र हो जाय और यहाँ के सुवर्ण-भण्डार की उद्योगपूर्वक रक्षा की जाय, तो दुर्दशा की वृद्धि रुक सकती है और धीरे-धीरे परिस्थिति का सुधार भी हो सकता है।

❀ ❀ ❀

राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स खटाई में

यद्यपि म० गाँधी के आन्दोलन आरम्भ कर देने के बाद राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स से जनता को कुछ भी आशा न थी, पर देश में ऐसे कितने ही छोटे-छोटे राजनीतिक दल मौजूद हैं, जो इस अवस्था में भी उसमें सम्मिलित होने को उत्सुक थे। उनमें से कुछ तो समझते थे कि वहाँ पर लड़-झगड़ कर हम कुछ न कुछ महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेंगे और कुछ केवल विलायत वालों के सामने बढ़िया व्याख्यान देने की ही कामना रखते थे। पर अचानक भारत-मन्त्री सर सैमुअल होर की घोषणा ने, कि अब राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स न होगी, वरन् उसकी कार्यकारिणी कमिटी ही बचा-खुचा कार्य पूरा कर लेगी, रङ्ग में भङ्ग कर दिया। इस घोषणा से वैसे तो कॉङ्ग्रेस के सिवा अन्य तमाम राजनीतिक दलों के लोग असन्तुष्ट हैं, पर लिबरलों ने इस अवसर पर ख़ास तौर पर सरगर्मी

दिखलाई है। श्री० सप्रू और श्री० जयकर और अन्य लिबरल सदस्यों के कमिटी से स्तीफ़ों ने सरकार को चौंका सा दिया है। व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि भी नवीन नीति के घोर विरोधी हैं। इन लोगों ने चेष्टा करके समस्त देश में इस सम्बन्ध में काफ़ी जोश उत्पन्न कर दिया है। इङ्गलैण्ड और भारत की सरकारों को सम्भवतः लिबरलों की तरफ़ से इस अप्रत्याशित विरोध की आशङ्का न थी, और इस कारण वे कुछ चिन्तित हो

जापान के माल पर कर-वृद्धि

भारतीय व्यापारी कितने ही समय से जापान की प्रतिद्वन्द्विता के कारण बड़े चिन्तित थे। जापान इधर कुछ दिनों से सस्ता माल बनाने में पूर्व समय के जर्मनी का मुक़ाबला करने लगा था और उसकी चीज़ों की खपत देश में दिन पर दिन बढ़ती
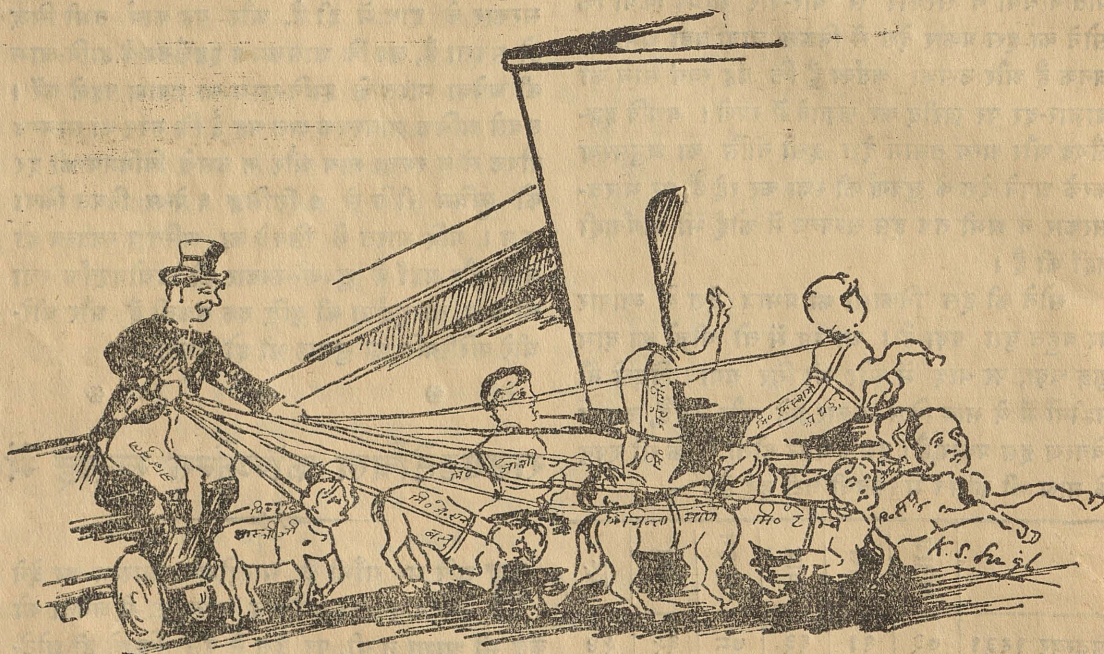
मि० जॉनबुल—(गोलमेज़-रूपी अस्तबल का बन्द फाटक देख कर भड़के हुए घोड़ों से) आह ! मेरे प्यारे टट्टुओ, घबराओ नहीं, तुम्हारे लिए नया अस्तबल बहुत जल्द तैयार हो रहा है।

उठी हैं। सर सैमुअल होर ने बाद में दो-तीन बार चिकनी-चुपड़ी बातें बना कर इस विरोध को ठण्डा करने की चेष्टा की है, पर फल कुछ नहीं निकला। क्योंकि वे अपनी नीति को त्यागने को तैयार नहीं हैं, केवल समझा-बुझा कर काम चलाना चाहते हैं। अभी यह कशमकश चल रही है और जान नहीं पड़ता कि अन्तिम परिणाम क्या होगा।

❀ ❀ ❀

जाती थी। इसके सिवाय उसका माल प्रायः उसी श्रेणी का होता है, जिस श्रेणी का भारतीय मिलें बनाती हैं। इसलिए इस देश के मिल-मालिकों को अङ्गरेज़ी कपड़े से भी अधिक भय जापानी कपड़े से रहता है। इधर जापान में सिक्के की दर एकदम गिर जाने से उसके माल का दाम बहुत ही घट गया और भारतीय बाज़ार में जापान के कपड़े की बाढ़ सी आ गई। यह दशा देख

(शेष मैटर ४६० वें पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)
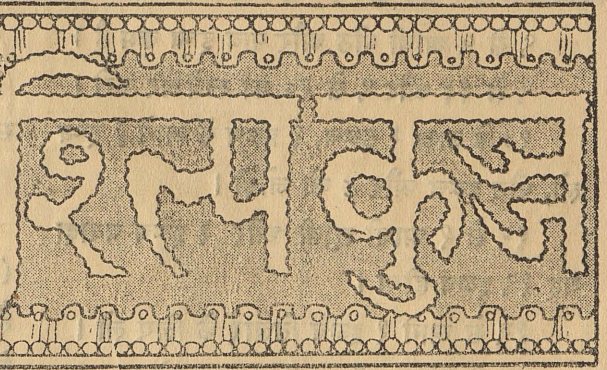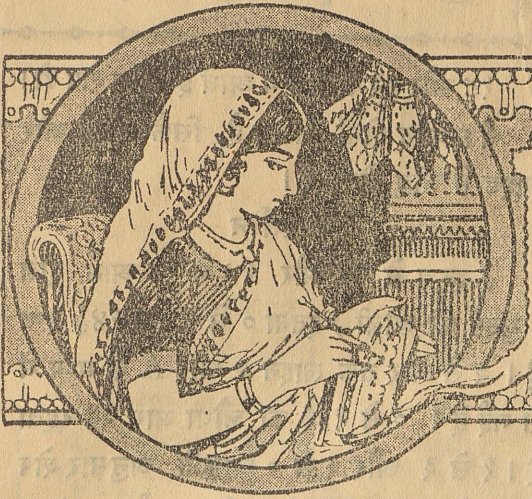
जम्पर कटिङ्ग

जम्पर—हिप लाइन (कमर के नीचे का हिस्सा) के नीचे ३ इञ्च तक लम्बा काटा जाता है। फ्रन्ट पार्ट (सामने के हिस्से) में बटन के भाग के पास मज़बूती के लिए अन्दर कपड़े की पट्टी लगाते हैं। साधारणतया इसमें बटन नहीं भी होते हैं, शर्ट सरीखा यह पहना जाता है। हिप पर शोभा के लिए बकल लगा हुआ बेल्ट होता है। इसके घेरे में दूसरे प्रकार के घेरे की पट्टी होती है। इसमें दो जेटेड पॉकेट होते हैं। नीचे एक काट का नमूना बतलाया जा रहा है। उसी के अनुसार भिन्न नाप के जम्पर काटे जा सकते हैं।

नाप—छाती ३६" कमर २८" सीट ४०" कमर की लम्बाई १५" आधी पीठ ६¼" आस्तीन २०" आड़ी छाती ८" गला १३½" (इञ्चों में)।

काटकोन करने की लाइन ० से १ तक स्केल का चौथा भाग + ३ इञ्च अधिक ठीक ७½ इञ्च।

२ से ० कमर लम्बाई १५ इञ्च।

३ से २ हिप लाइन ७ इञ्च।

४ से ० पूरी लम्बाई २५ इञ्च।

०, १, २, ३, ४ इन सबको स्क्वेअर करो।

५, ० और ए का मध्य है।

६, ५ और ऐ का मध्य है।
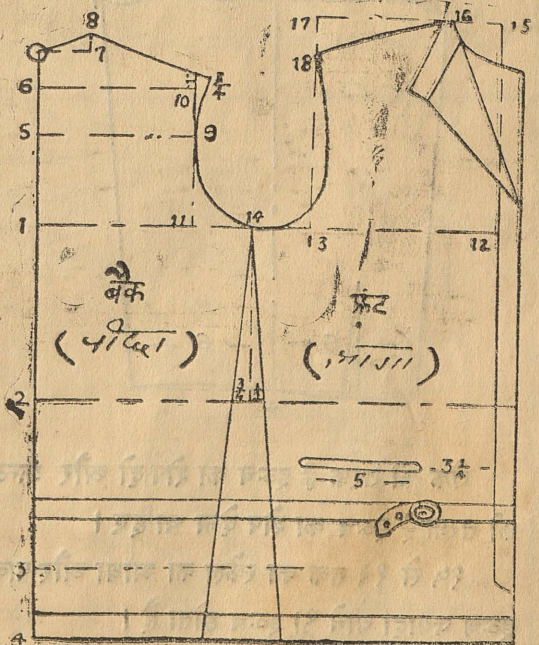
७ से ० स्केल का छठा हिस्सा और आधा इञ्च कम याने २॥ इञ्च होता है।

८ से ७ का अन्तर पौन इञ्च है।

९ से ५ आधी पीठ और पाव इञ्च कम है।

९ से ११ और ९ से १० का स्क्वेअर करो।

१० के ऊपर १ इञ्च, १ इञ्च के आगे ३/४ इञ्च लो, पौन इञ्च और ८ को जोड़ो।

१२ से १ आधी छाती और १ इञ्च ज्यादा यह १९ इञ्च होगा।

१२ से आगे १ इञ्च ढिलाई के लिए लो।

१२ से १३ आड़ी छाती ८ इञ्च लो।

११ और १३ का बीच १४ इञ्च है।

१४ के नीचे स्क्वेअर बनाओ।
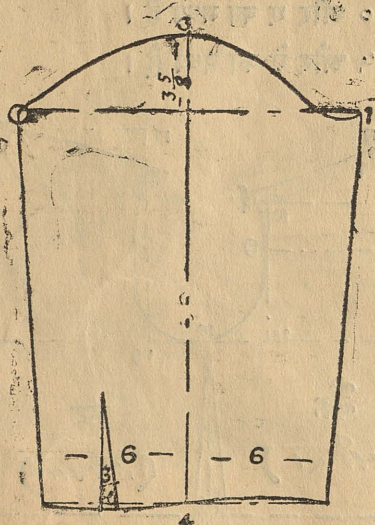
बैक की तरफ़ ३/४ इञ्च का शेप दो और फ्रन्ट की तरफ़ १/२ इञ्च का शेप देना चाहिए।

१५ से १२ तक का स्केल का आधा और पाव इञ्च ज्यादा याने ९। इञ्च होता है।

१६ से १५ स्केल का छठा भाग आध इञ्च कम।

१७ और १६ का तीसरा भाग १७ से १८ रक्खो।

१८ और १३ के बीच में आधे इञ्च का शेप दो।

बैक फ़्रन्ट दोनों सलङ्ग है, सिर्फ़ दोनों ओर साइड में जोड़ होता है।

आस्तीन

१/२ इञ्च से १४ और १४ से १८ आर्म होल (मुण्डे की खोली) इतना ० से १ तक १४१/२ इञ्च है। ३ से चार तक लाइन ० और A के मध्य में से गई है। ० से १४१/२ का चौथा भाग ३५/८ रहता है। १ से ३ और ३ से ० आकृति अनुसार शेप है। ३ से ४ आस्तीन की पूरी लम्बाई २० इञ्च है। बीच की लाइन के दोनों तरफ़ ६-६ इञ्च होना चाहिए। एक ओर ३/४ इञ्च का डाट होना चाहिए।

—गजराजसिंह वर्मा, एफ़० सी० डी०, टेलर एण्ड कटर्स (ऑनर्स), लण्डन

❁ ❁ ❁

(४१८वें पृष्ठ का शेषांश)

कर बम्बई और अहमदाबाद के मिल ओनर्स एसोसिएशनों ने फिर हाय-तोबा मचाई और इस बार मालूम होता है कि उनकी पुकार व्यर्थ नहीं जायगी। भारत-सरकार ने टेरिफ़ बोर्ड को आज्ञा दी है कि हाल में कपड़े की क़ीमत में जो कमी हुई है, उसकी जाँच करके बहुत जल्द रिपोर्ट पेश की जाय। यद्यपि जापानी कपड़े के व्यापारी और जापान को रुई भेजने वाले इस कर-वृद्धि का विरोध कर रहे हैं, पर रङ्ग-ढङ्ग से जान पड़ता है कि इस बार भारतीय मिल वालों को सफलता मिल जायगी। पर हमको इसमें सरकार की विशेष उदारता नहीं जान पड़ती। क्योंकि जापान के माल से भारतीय मिलों के साथ ही इङ्गलैण्ड की मिलों को भी धक्का पहुँचता है, और सम्भवतः इसी कारण सरकार ऐसी तत्परता से काम ले रही है। कुछ भी हो, विदेशियों का व्यापार किसी तरह घटे और उसको रोकने की कोई व्यवस्था हो, यह भारत के लिए हितकर ही है।

'शिल्प-कुञ्ज' नामक पुस्तक के दो सुन्दर नमूने [चित्रकार—श्री० एच० बागची
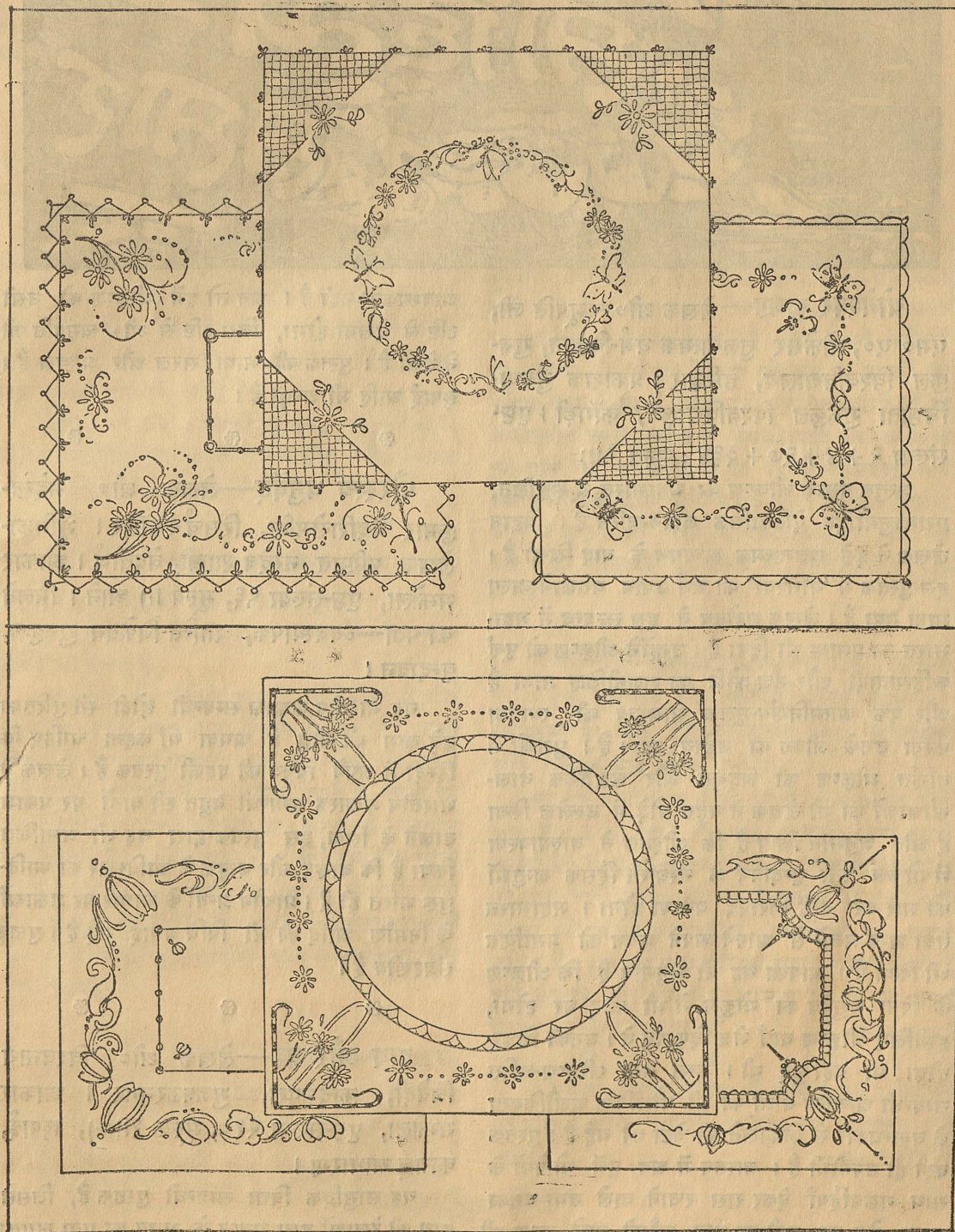
योगेश्वर कृष्ण—लेखक श्री० चमूपति जी, एम० ए०, प्रोफ़ेसर तुलनात्मक धर्म-विज्ञान, गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार; प्रकाशक मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी। पृष्ठ-संख्या २+४+२७+३६४; मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक श्रीकृष्ण का महाभारत से सङ्कलित, पुराणानुमोदित ऐतिहासिक जीवन-चरित है। विद्वान लेखक ने इसे तुलनात्मक अध्ययन के बाद लिखा है। इस पुस्तक में 'योगेश्वर' का अर्थ उपाय बतलाने वाला माना गया है। लेखक महोदय ने इस सम्बन्ध में महाभारत का प्रमाण भी दिया है। उन्होंने श्रीकृष्ण को पूर्ण अहिंसावादी और उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ माना है और एक आत्मनिर्णय-मूलक साम्राज्य की स्थापना करना उनके जीवन का उद्देश्य माना है। पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण की अद्भुत और अलौकिक बाल-लीलाओं का भी लेखक ने बहुत थोड़े में उल्लेख किया है और अनुमान किया है कि श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में गोकुल और वृन्दावन के नरघाती हिंसक जन्तुओं को मार कर उन्हें निरापद बनाया होगा। महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों से आपने अपने कथन को प्रमाणित भी किया है। आपका यह भी अनुमान है कि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का गोकुल में भी कोई घर होगा, इसीलिए श्रीकृष्ण वहाँ भेज दिए गए थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी। इसी तरह श्रीकृष्ण-चरित सम्बन्धी अन्यान्य बातों को भी पौराणिक अलौकिकता के घनान्धकार से निकालने की चेष्टा की गई है। पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। वास्तव में अब हमें गोपियों के साथ गलबहियाँ देकर रास रचाने वाले तथा उनका रास्ता रोक कर दही का दान माँगने वाले कृष्ण की आवश्यकता नहीं है। अब तो हमें श्रीकृष्ण को उसी दृष्टि से देखना होगा, जिस दृष्टि से श्री० चमूपति जी ने देखा है। पुस्तक की भाषा सरल और प्राञ्जल है। छपाई आदि भी अच्छी है।

❀ ❀ ❀

पौरस्त्य धनुर्वेद—लेखक श्री० महेन्द्रकुमार वेदशिरोमणि, रिसर्च-स्कॉलर। भूमिका-लेखक पण्डित नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या ९६, मूल्य ॥) आने। मिलने का पता—व्यवस्थापक, शान्ति-निकेतन गुरुकुल, वृन्दावन।

यह भारतीय शस्त्रास्त्र सम्बन्धी छोटी सी पुस्तिका बड़े काम की चीज़ है अथवा यों कहना चाहिए कि हिन्दी में अपने विषय की पहली पुस्तक है। लेखक ने भारतीय शस्त्रास्त्र सम्बन्धी बहुत सी बातों पर प्रकाश डालने के सिवा, इस पुस्तक द्वारा यह भी प्रमाणित किया है कि बारूद और बन्दूक़ के आविष्कार का आदि-गुरु भारत ही है। प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर शस्त्रों के निर्माण आदि की भी विधि बताई गई है। पुस्तक संग्रहणीय है।

❀ ❀ ❀

हाथ और ग्रह—लेखक श्री० विश्वनाथ त्रिवेदी, कुन्दनपुरा, मुज़फ़्फ़रनगर। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २१०, मूल्य १॥=), छपाई, काग़ज़ साधारण।

यह सामुद्रिक विद्या सम्बन्धी पुस्तक है, जिससे हाथ की रेखाओं द्वारा मनुष्य के भाग्य का पता लगता

है। लेखक की आज्ञा है कि—'अपने हाथों पर विश्वास करो!' फलतः पुस्तक भी ऐसे विश्वासियों के लिए ही है।

❀ ❀ ❀

आँधी—लेखक बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद', प्रकाशक पुस्तक-मन्दिर बनारस, पृष्ठ-संख्या २१६; मूल्य २)

यह पुस्तक 'प्रसाद' जी की ग्यारह कहानियों का संग्रह है। 'आँधी' नामक पहली और 'दासी' नामक तीसरी कहानी अन्य नव कहानियों से बड़ी हैं। अन्तिम कहानी 'पुरस्कार' हिन्दी की अच्छी कहानियों में से एक है। 'मधुआ', 'बेड़ी', 'ग्राम-गीत' और 'घीसू' नामक कहानियाँ भी अच्छी हैं।

'प्रसाद' जी की भाषा में कवित्व, वर्णन-शैली में प्राचीन भारतीय संस्कृति की झलक और चरित्र-चित्रण में पात्रानुकूल स्वाभाविकता है।

❀ ❀ ❀

धूप-दीप—लेखक पण्डित विनोदशङ्कर व्यास, प्रकाशक पुस्तक-मन्दिर बनारस, मूल्य ।॥)

यह पुस्तक पं० विनोदशङ्कर व्यास की पाँच कहानियों का संग्रह है।

इस संग्रह की पहली कहानी 'शीर्षकहीन' है और अन्त की पाँचवीं कहानी का शीर्षक है "३०२"! पहली कहानी में एक क्रान्तिकारी युवक के जीवन की पहेली और अन्तिम कहानी में एक ग्रेजुएट ख़ूनी के जीवन का कच्चा चिट्ठा है। दूसरी कहानी का शीर्षक है "स्वराज्य कब मिलेगा?", तीसरी का है "और अब?", चौथी का है "उलझन"। तीसरी में देश की साधारण प्रजा की मनोवृत्ति प्रकट होती है। चौथी में गोरखधन्धा होने पर भी मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़ी स्वाभाविकता और वास्तविकता है।

❀ ❀ ❀

'प्रेमा' (श्रृङ्गार-रसाङ्क)—सम्पादक, साहित्याचार्य पण्डित लोकनाथ सिलाकारी, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, जबलपुर शाखा। वार्षिक मूल्य ४॥) और इस अङ्क का मूल्य ।॥)

'प्रेमा' ने काव्य के नवरसों पर विशेषाङ्क निकालने का आयोजन कर रक्खा है। तदनुसार इससे पहले हास्य-रसाङ्क और शान्त-रसाङ्क निकाल भी चुकी है। प्रस्तुत श्रृङ्गार-रसाङ्क इस सम्बन्ध का तीसरा विशेषाङ्क है। सम्पादक जी ने उपयुक्त सामग्री एकत्र करने में सफलता प्राप्त की है। सभी लेख विषयानुकूल और अच्छे हैं। कई कविताएँ भी अच्छी हैं। कुमारी हरदेवी मलकानी ने अपने "श्रृङ्गार रस में महिलाओं की दुर्दशा" शीर्षक लेख में पहले तो कुछ अच्छी और खरी बातें कही हैं, परन्तु अन्त में उन्होंने 'चाँद' पर अत्यन्त धृष्टतापूर्वक आक्रमण किया है और इसके उद्देश्यों के सम्बन्ध में 'प्रेमा'-प्रेमियों को भ्रम में डालने का घृणित प्रयत्न किया है। समाज में प्रचलित कुरीतियों का भण्डाफोड़ करना, आँख में उँगली डाल कर समाज के स्त्री-पुरुषों को उनके दोषों का दिग्दर्शन कराना और विशेष योग्यता प्राप्त करने वाली स्त्रियों का चित्र छापना उपर्युक्त कुमारी जी जैसी काण्ड-ज्ञान-शून्य स्त्रियों की दृष्टि में ही दोषावह हो सकता है, बुद्धिमानों की दृष्टि में नहीं।

❀ ❀ ❀

प्रजामित्र—साप्ताहिक समाचार-पत्र, आकार १०×१५; पृष्ठ-सं० १२; वार्षिक मूल्य साधारण संस्करण ३) और राज-संस्करण १०); सम्पादक श्री० श्रवणप्रसाद मिश्र 'श्रवणेश'।

यह पत्र अभी हाल में ही झाँसी से प्रकाशित होने लगा है। इसके पहले भाग की ग्यारहवीं संख्या हमारे सामने है। हिन्द-राजस्थान, रियासत, और सौराष्ट्र आदि की तरह देशी राज्यों की प्रजा के स्वत्वों की रक्षा, देशी नरेशों को कर्तव्यरत बनाना 'प्रजामित्र' का प्रधान उद्देश्य है। हम नए सहयोगी का सहर्ष स्वागत करते हैं और हमारी यह आन्तरिक कामना है कि वह अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करे। —'चक्रधर'

❀ ❀ ❀

[सूचना—समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ, अन्यथा समालोचना न हो सकेगी। —स० 'चाँद']

पीनस

ऊँट की लेंड़ी कड़ुवे (सरसों के) तेल में पका कर छान ले। इसी तैल का नास ले और बर्बरी (बन-तुलसी) की पत्ती की टिकिया बना कर शिर के तालू में रक्खे तो पीनस के कीड़े गिर कर रोग अवश्य आराम हो जाता है।

❀

मृगी

उत्तम असली हींग एक-एक रत्ती सुबह-शाम जल के साथ निगलते रहने से अपस्मार (मृगी) अवश्य एक वर्ष में आराम हो जाती है।

❀

दस्त

धाय के फूल, सफ़ेद राल, मोचरस, बेल का गूदा सम भाग, महीन पीस कर चूर्ण बना ले। मात्रा ४-४ माशे, सायं-प्रातः सेवन कर लोहे से बुझा पानी ऊपर से पिए। दस्त बन्द हो जायँगे।

❀

आतशक

इन्द्रायण की जड़ और फल दोनों एक-एक पाव पीस कर चार सेर पानी में मिला दे, फिर उसी पानी को किसी बर्तन में रख कर उसी बर्तन में खड़ा होकर पैरों को मलता रहे। जब तक मुँह में कड़ुवापन न आ जाय, तब तक बराबर मलता रहे। इसी प्रकार चार-पाँच दिन करने से उपदंश रोग अवश्य आराम हो जाता है।

ख़िज़ाब

मुर्दाशङ्ख दो तोले, सूखा चूना १ तोला, खड़िया-मिट्टी २ तोले को बारीक पीस कर सफ़ेद बालों पर लेप कर दे। फिर दो घण्टे बाद धोकर सरसों का तेल लगा दे तो सफ़ेद बाल काले होंगे।

❀

गर्भकारक

गुलाब का फूल एक माशा, और गाय का घी दो माशा लेकर दोनों को पत्थर पर ख़ूब रगड़े, जब काजल के समान हो जाय, तब ऋतुस्नान की हुई स्त्री इसी का नास ले। तीन रोज़ तक यदि इसी दवा का नास बाईं नाक से ले तो पुत्र और दाहिनी नाक से ले तो कन्या जन्म लेती है।

❀

अर्श

बैल के सींग का जमा हुआ कल्ला तोड़ कर बबूल के कोयलों की आँच में रख कर मस्सों को धूनी दे तो बादी बवासीर शर्तिया तीन दिन में आराम हो जाती है।

—उत्तराकुमारी वाजपेयी, अजगैन

❀

बिना मूल्य मृगी रोग की औषधि

एक जैन साधु की कृपा से प्राप्त श्रीमान सेठ गोपीलाल जी जैन पैंची (मालवा) निवासी की ओर से "श्रीजैन-सेवा-मण्डल, धूलियागञ्ज, आगरा" द्वारा वितीर्ण की जाती है। दवा मिलने का समय प्रातः ६ बजे से ९ बजे तक है।

ईमानदारी का फल

किसी ज़माने में कहीं एक राजा रहता था। वह शिकार खेलने का बड़ा प्रेमी था। दूसरे-तीसरे बराबर शिकार खेलने जङ्गलों में जाया करता था। एक दिन सन्ध्या को जब वह शिकार खेल कर अपनी राजधानी की ओर लौट रहा था, तो देखा कि जङ्गल के पास एक पेड़ के नीचे एक लड़का बैठा हुआ बाँसुरी बजा रहा है। राजा का घोड़ा थक गया था, इसलिए वह भी थोड़ी देर के लिए उसी पेड़ के नीचे ठहर गया और लड़के से बातचीत करने लगा। लड़का था तो छोटा सा, परन्तु बातें बड़ी बुद्धिमानी की करता था। राजा उसकी बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला कि अगर तुम मेरे साथ चलो तो मैं तुम्हें बड़े आराम से रक्खूँगा; पहनने को अच्छे-अच्छे कपड़े और खाने को अच्छी-अच्छी चीज़ें दूँगा। राजा की बातें सुन कर लड़के ने उसके साथ चलना स्वीकार कर लिया।

राजा ने अपने घर ले जाकर लड़के को बड़े आराम से रक्खा। उसे पहनने को साफ़ कपड़े दिए और खाने को भी अच्छे-अच्छे पदार्थ दिए, इसके साथ ही, उसे पढ़ाने के लिए एक गुरु जी को नौकर रख लिया। लड़का बड़ा परिश्रमी और मेधावी था। गुरु जी का दिया हुआ पाठ बड़ी जल्दी याद कर लेता था। इसलिए कुछ दिनों में ही वह पढ़-लिख कर पण्डित हो गया। तब गुरु जी ने राजा से कहा कि लड़का पढ़-लिख कर होशियार हो गया। राजा ने लड़के की परीक्षा लेकर उसका नाम वीरसिंह रख दिया और उसे अपने ख़ज़ाने का दारोग़ा बना दिया।

दारोग़ा के ओहदे पर पहुँच कर भी वीरसिंह अपने को न भूला। वह बड़ी ईमानदारी से अपना काम करता, सबसे अच्छा और भद्रता का व्यवहार करता और किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचाता। इसलिए लोग उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। राजा भी उसके कामों से खुश था और उसका यथोचित आदर करता था। परन्तु यह बात राजसभा के लोगों को अच्छी नहीं लगती थी। एक गड़ेरिए के बालक का इतना मान देख कर उन लोगों के मन में डाह पैदा हो गई और वे उसे नीचा दिखाने की चेष्टा करने लगे। यहाँ तक कि एक दिन लोगों ने राजा से उसकी बड़ी निन्दा की। परन्तु राजा सब कुछ जानता था, उसने निन्दकों की बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

संयोगवश राजा की मृत्यु हो गई और उसका बेटा राजगद्दी पर बैठा। परन्तु वह पहले राजा की भाँति बुद्धिमान नहीं था। कानों का कच्चा था। वीरसिंह के शत्रुओं को अच्छा अवसर मिल गया और वे उसके विरुद्ध नए राजा के कान भरने लगे। एक दिन सब दरबारी राजा के पास गए और कहने लगे कि वीरसिंह बड़ा बेईमान आदमी है, वह राज्य के ख़ज़ाने से रुपए लेकर हड़प कर जाता है। उसे किसी का डर नहीं है। यह सुन कर राजा आगबबूला हो गया और उसने वीरसिंह को बुला कर आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन के अन्दर ख़ज़ाने का हिसाब हमें दिखाओ।

वीरसिंह बड़ा बुद्धिमान और मेहनती था। आज का काम वह कल पर नहीं छोड़ता था। उसने ख़ज़ाने

की चाबियाँ कमर से निकाल कर राजा के सामने रख दीं और कहा कि धर्मावतार, पन्द्रह दिन की क्या बात है, श्रीमान् अभी चल कर ख़ज़ाने की जाँच-पड़ताल कर लें।

राजा ने ख़ज़ाने की जाँच की तो एक पाई का भी फ़र्क़ नहीं निकला। कौड़ी-कौड़ी का हिसाब मौजूद था और बाक़ी रुपया भी ख़ज़ाने में मौजूद था। परन्तु राजा को इतने से सन्तोष नहीं हुआ, उसने सोचा कि राजसभा के इतने बड़े-बड़े सरदार क्या झूठ बोलेंगे। एक बार वीरसिंह का घर भी देख लेना चाहिए। उसने वीरसिंह से कहा कि अपना घर दिखाओ। वीरसिंह राजा को अपने घर ले गया। घर में साधारण व्यवहार की चीज़ों के सिवा और कुछ न था। राजा यह देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने महल की ओर लौटना ही चाहता था कि एक चुग़लख़ोर सरदार ने एक पिटारी की ओर इशारा किया। पिटारी में एक मामूली ताला लगा हुआ था। राजा ने पूछा—उसमें क्या है? वीरसिंह ने उत्तर दिया—उसमें मेरी सम्पत्ति है।

राजा के मन में फिर सन्देह हो गया। उसने पिटारी को खुलवा कर देखा तो उसमें एक बाँसुरी, कुछ फटे-पुराने कपड़े, एक भेड़ों को हाँकने वाली लकड़ी और एक भेड़ की खाल रक्खी थी। राजा इन तुच्छ वस्तुओं को इस प्रकार सुरक्षित भाव से रक्खा हुआ देख कर अचम्भे में पड़ गया और पूछा—यह क्या है?

वीरसिंह ने उत्तर दिया—श्रीमान, यह मेरी असली हालत का सामान है।

इसके बाद उसने अपने यहाँ आने, पढ़ने-लिखने और दारोग़ा के पद पर पहुँचने का सारा क़िस्सा राजा को सुनाया। और अन्त में यह भी कहा कि मैं ऊँचे पद पर पहुँच कर अपनी असली स्थिति को भूल न जाऊँ, इसीलिए इन चीज़ों को इतने यत्न से रक्खा है। इसके सिवा मैंने इन्हें इसलिए भी रख छोड़ा है कि जब कभी श्रीमान् को मेरी ज़रूरत न रहे, तो मैं अपने पुराने सामान के साथ यहाँ से चला जाऊँ और फिर अपना पुराना धन्धा आरम्भ कर दूँ।

राजा यह बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और वीरसिंह को अपना राज-मन्त्री बना लिया। चुग़लख़ोर अपना सा मुँह लेकर रह गए।

सच है, जो ऊँचा पद पाकर भी अपनी पहली दशा को नहीं भूलते, वे सदैव सुखी रहते हैं।

—कमलकिशोर श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

मदारी मियाँ के खेल

काग़ज़ की नाव का पानी पर दौड़ना

एक नाव ऐसे काग़ज़ की बनानी चाहिए, जो अधिक देर तक पानी में रह सके। इसके बाद उस नाव के नीचे कपूर का एक बड़ा ढेला फँसा देना चाहिए। कपूर के बाहरी अंश को ऐसी छुरी से काटना चाहिए, जिसमें चिकनाई बिल्कुल न लगी हो। फिर नाव को पानी पर छोड़ देना चाहिए। बस, वह अपने आप इधर-उधर दौड़ने लगेगी।

पानी में आग लगाना

एक लम्बे गिलास में थोड़ा सा इथर (Ether) डाल दे, इसके बाद एक मटर के दाने के बराबर सोडियम (Sodium) या पोटाशियम (Potassium) छोड़ दो। बस, इसके बाद गिलास में पानी डालते ही उसमें से धुआँ और आग की लपटें निकलती दिखाई पड़ेंगी।

सुई का नाच

एक काँसे (फूल) की थाली लेकर उसे धो-पोंछ कर साफ़ कर लो। फिर उसमें एक लोहे की सुई रख दो और थाली को बाएँ हाथ से उठा लो। दाहिने हाथ में लौह-चुम्बक लेकर थाली के नीचे घुमाना आरम्भ कर दो। बस, जिधर-जिधर थाली के पेंदी के नीचे का चुम्बक जायगा, उधर-उधर थाली के अन्दर की सुई भी दौड़ती फिरेगी।

—मदारी मियाँ

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

यह बात बावन तोले पाव रत्ती ठीक है कि बङ्गाल के स्वनामधन्य मुस्लिम लीडर सर हलीम ग़ज़नवी की छठी में हिज़ होलीनेस को भूरि भोजन का निमन्त्रण नहीं मिला था। परन्तु चूँकि आप इतिहास-प्रसिद्ध महमूद ग़ज़नवी के वंशज हैं, इसलिए हिज़ होलीनेस आपके नामेनामी से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं।

❀

इसके अतिरिक्त गम्भीर ऐतिहासिक गवेषणा के बाद हिज़ होलीनेस इस तथ्य पर भी पहुँच गए हैं कि जब उक्त महमूद इस देश से 'हलाल' की रक़म बटोर कर अपनी जन्मभूमि की ओर प्रस्थान करने लगा होगा तो अपनी अमर सुकीर्ति की स्मृति में सर हलीम बहादुर के पूर्वजों में से किसी को यहाँ छोड़ गया होगा। क्योंकि सुकीर्ति की रक्षा का प्रबन्ध कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।

❀

सो जनाब, हमारे ये हलीम बहादुर भी दिलोजान से अपने आबाए-माजिद की सुकीर्ति की रक्षा में तत्पर रहते हैं और अवसर पाते ही हाथ से नहीं, बल्कि मुँह से ही—कमबख़्त कुफ़्र के दो-चार बाल नोच डालने को उद्यत हो जाते हैं। आख़िर, आपकी रगों में जो ग़ज़नवी-वंश का जोशीला रक्त मौज-ज़न है, वह भला, शान्त कैसे रह सकता है?

❀

'क़द्र गौहर शह बेदानद या बेदानद जौहरी' के अनुसार हमारी परम गुणग्राहिनी गोरी सरकार ने भी आपके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर आपके सर पर एक और 'सर' रख देने की उदारता दिखाई है! वल्लाह, उसी दिन से आपकी ज़बान भी अवसर पाते ही मानो खूँटा तुड़ा कर सरपट दौड़ने लगती है।

❀

इस ज़बान को लगाम से कोई सरोकार नहीं, जब चलने लगती है तो कतरनी को भी मात कर देती है! और, ख़ासकर जब कभी गौराङ्ग महाप्रभुओं के महाप्रसाद अर्थात् 'डिनर' का टेस्ट पा जाती है, तब तो मानो उस पर सान चढ़ जाता है और कमबख़्त 'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति' का नमूना बन जाती है।

❀

ख़ैर, अपने राम इस वक़्त सर हलीम की जन्मपत्री लिखने नहीं बैठे हैं, क्योंकि वह तो शैतान की आँत की नानी और भाँड़ की पगड़ी की लकड़दादी है और इधर हिज़ होलीनेस का चौथापन! लेहाज़ा कोई आशा नहीं, कि वह इस संसार की अल्पकालिक स्थूल स्थिति में समाप्त हो सके।

❀

आज तो हमें सिर्फ़ यही दिखाना है कि यथा नामो तथा गुणः के अनुसार हमारे हलीम बहादुर भारतीय स्त्रियों के परम हितैषी हैं और कृपण की कौड़ी की तरह उन्हें सात तह वाली 'मेड इन ग़ज़नी' नाम्नी पिटारी से क्षण भर के लिए भी निकालना पसन्द नहीं करते।

❀

आपकी शुभ सम्मति है कि भारतीय स्त्रियों को 'वोटाधिकार' बिलकुल नहीं मिलना चाहिए, अन्यथा अल्लाह मियाँ की यह बा-मुशक़्क़त तैयार की हुई ख़ुदाई एकदम तहस-नहस हो जायगी और वे बेचारे (यानी बूढ़े अल्ला मियाँ) बेमौत मर जायँगे या इसी शोक में ज़हर खा लेंगे!

❀

उर्दू के एक शायर (हलीम साहब की तरह 'ग़ज़नवी' ही रहा होगा) ने लिखा है कि—'मगस

को बाग़ में जाने न दीजे, कि नाहक़ ख़ून परवानों का होगा !' अर्थात् मधुमक्खी को बाग़ में न जाने दो, क्योंकि वह वहाँ से फूलों का रस लाएगी, उससे अपने मोमी-छत्ते की पुष्टि करेगी। मोम की बत्तियाँ बनेंगी। वे जलाई जायँगी, जिनसे पतिङ्गे जलेंगे !

❀

तदनुसार अगर औरतों को वोट देने का अधिकार मिल जाएगा तो वे घर-गृहस्थी का काम और बच्चे देना छोड़ कर दिन-रात 'वोट' ही दिया करेंगी ! बस, कुछ दिनों में या तो अल्लाह मियाँ की सारी ख़िलक़त ही चौपट हो जायगी या .ख़ुदा न करे, यह जनन-कार्य सर हलीम जैसे बुज़ुर्गों के सिर आ पड़ेगा ! सचमुच बड़ी क़बाहत होगी !

❀

दाढ़ी को बचा कर, ज़रा सावधानी से चूल्हा फूँक लेना कोई बड़ी बात नहीं। हर होलीनेस के बिगड़ बैठने पर अपने राम आसानी से यह काम कर सकते हैं। आयुष्मान लल्ला को सौंचा कर उसकी आँखों में काजल कर देना—यहाँ तक भी ग़नीमत है । मगर—मगर वह 'प्रसव की पीर !' या बाबा शाहमदार, इस ज़हमत से तो बचाए ही रखना !

❀

ऐसी दशा में स्त्री-वोटाधिकार-विरोधी सज्जनों की दूरन्देशी की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करने को अपने राम बाध्य हैं। बेटा जिए, सर हलीम ग़ज़नवी साहब का ! सरकार एक 'सर' देकर उन्हें 'त्रिशिरा' बना दे ! स्त्रियों के वोटाधिकार का विरोध करके आपने अपने हम-जिन्सों का असीम उपकार किया है। अरी बावरी बुढ़िया ग़ज़नी, अभी भी तेरी झोली में ऐसे-ऐसे लाल पड़े हुए हैं !!!

❀

विषय प्रतिपादन-पटु ग़ज़नवी साहब जब बोलने लगते हैं, तो बेतहाशा बोलते हैं—विषय का बखिया उधेड़ कर रख देते हैं ! अथवा यों कहिए कि 'हिज़ मास्टर्स वॉयस' को भी मात कर देते हैं। आपकी राय है कि अगर स्त्रियों को वोटाधिकार प्राप्त हो जायगा, तो इससे उनका कोई लाभ न होगा। क्योंकि 'शरीफ़ाएँ' तो परदे में रहेंगी और देश भर की 'अवाञ्छिता' स्त्रियाँ कौन्सिलों में पहुँच जाएँगी।

❀

हमें तो मालूम होता है कि भारतीय मातृ-जाति के प्रति यह असीम श्रद्धा अल्लाहताला ने अपने दस्त-मुबारक से ही ग़ज़नवी साहब के अन्दर ठूँस दिया है ! भारत की शिक्षिताएँ—श्रीमती सरोजिनी देवी, श्रीमती कमला देवी, श्रीमती अरुणा देवी आदि विदुषियाँ, जो भावी शासन-सभाओं में भारतीय स्त्री-समाज का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं, वे चूँकि 'काफ़िरानियाँ' हैं, इसलिए हलीम मियाँ जैसे धृष्ट मुसलमान की दृष्टि में 'अवाञ्छिता' हो सकती हैं। क्योंकि देवमूर्त्ति पर टाँग उठा कर × × × कर देने वाले जन्तु-विशेष से देवता के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन की आशा विडम्बना के सिवा और कुछ नहीं हो सकती !

❀

परन्तु श्रीमती शाहनवाज़ ख़ाँ, कुमारी .ज़ुबैदा ख़ातून, श्री० ज़किया सुलैमान और मिस शीराज़ ख़ाँ आदि सैकड़ों मुस्लिम विदुषियाँ भी क्या अवाञ्छिताएँ हैं ? लाहौल विलाक़ूवत, इल्ला-बिल्ला ! अरे भई, हज़रत ग़ज़नवी के कथन का आशय यह है कि देश की स्त्रियाँ अगर मताधिकार प्राप्त कर लेंगी तो अवाञ्छिता स्त्रियों को ही चुन-चुन कर कौन्सिलों में भेज देंगी। क्योंकि कोई वाञ्छिता थोड़े ही उनके पास वोट माँगने आएगी !

❀

हमारी राय है कि कम से कम मुस्लिम रमणियाँ तो इस सभ्यतानुमोदित अपूर्व उक्ति के लिए अवश्य ही ग़ज़नवी मियाँ को दाद दें। क्योंकि आपने उन्हें एक नई पदवी प्रदान करके उनके प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा का प्रदर्शन करने के साथ ही उनकी भी इज़्ज़त अफ़ज़ाई कर डाली है।

❀

एक बात और भी मियाँ हज़रत की खोपड़ी शरीफ़ा में ज़बरदस्ती घुसी चली आ रही है, और वह यह है कि इस मुल्क के काफ़िरों में ऐसे बहुत से अक़्ल के पीछे लट्ठ लेकर दौड़ने वाले मौजूद हैं, जो स्त्रियों के मताधिकार के समर्थक हैं। ऐसी दशा में अगर ग़ज़नवी साहब इस बात का विरोध नहीं करते, तो वल्लाह, उनका ख़ास

ग़ज़नी में पैदा होना ही व्यर्थ हो जाता। क्योंकि काफ़िर जिस बात के समर्थक हों, उसका विरोध कर देना अहले ग़ज़नी का लाज़िमी फ़र्ज़ है।

❃

इतिश्री स्कन्दपुराणे रेवा खण्डे ग़ज़नवी-गपोड़ा नाम पर्वाध्याय की समाप्ति के पश्चात् थोड़ी सी इधर-उधर की भी मुलाहिज़ा हो। क्योंकि बरसात का मौसिम है और चिकित्सा-शास्त्रियों का कथन है कि इस मौसिम में अजीर्ण का प्रकोप अधिक रहता है। ऐसी दशा में एक-आध पुड़िया कोई चटपटा 'चूरन' या बीकानेर की स्वादिष्ट गोलियों का, अगर आप सेवन न करेंगे तो श्रीजगद्गुरु के उपर्युक्त लट्ठ से फ़तवों को हज़म करना ज़रा कठिन हो जायगा। क्यों, समझ गए न?

❃

गत शीतकाल की शारदी वृष्टि के सम्बन्ध में तो इन्द्रदेव कञ्जूसी कर ही गए थे, इधर आषाढ़ से लेकर आधे श्रावण तक के डेढ़ महीने को भी एकदम सूखा ही टरका दिया! भक्तों ने बमभोला बाबा को नाक तक गङ्गाजल में डुबाया, कर्मकाण्डियों ने कितने ही यज्ञ कर डाले और बेचारे बच्चों ने 'रामजी, रामजी, पानी दो' की टेर से आकाश गुँजा दिया! परन्तु हज़रत टस से मस न हुए! मानो कानों में तेल डाल कर अथवा वैशाखी शिवरात्रि के मेले में घोड़ा बेच कर सो गए थे।

❃

लोग 'त्राहि-त्राहि' पुकार ही रहे थे कि इतने में बुन्देलखण्डवासिनी सखी 'प्रेमा' ने अपना शृङ्गार-रसाङ्क निकाल डाला! अब भला परम रसिक, परियों के अखाड़े के नायक महाराज इन्द्रदेव कैसे चुप रह सकते थे। झख मार कर बरसना पड़ा! इधर हिन्दी-साहित्य 'रस' से सराबोर हो उठा और उधर पृथिवी माता ने अपने करोड़ों बाल-गोपालों के साथ तृप्ति की साँस ली!

❃

'देह गेह सब सन तृन तोरे' अथवा 'तापस वेष विशेष उदासी' या 'उदासिनी', निराभरणा और गैरिक-वसना (हाथ में एक त्रिशूल की नितान्त आवश्यकता थी) योगिनी की भाँति सखी का यह दोनों हाथों से 'दौलते-हुस्न' लुटाना देख कर, क़सम ख़ुदा की, अपने राम की तबीयत एकदम फड़क उठती है। मालूम होता है, चिरसञ्चित रस-राशि लुटा कर कोई वियोगिनी किसी निर्जन वन में धूनी रमाने के लिए चल पड़ी है!

❃

बिहारी, देव, मतिराम, पजनेस और पद्माकर की अपूर्व कीर्त्ति-कौमुदी छायावाद का अमानिशा के घनान्धकार में विलीन हो रही थी। ऐसे समय में जो है सो जाकर करकों, "अभ्युत्थानम् धर्मस्य × × × सम्भवामि युगे-युगे" के अनुसार परम रसवती श्रीमती 'प्रेमा' ने प्रकट होकर सरस रस-वर्षण द्वारा सारी कलुष-कालिमा को धो बहाया! धन्योसि बाले! बस—

बना रहे अहिवात तुम्हारा,
जौ लौं गङ्ग-जमुन की धारा!

❃

हिज़ होलीनेस को इस बात का दुःख है कि हिन्दी-साहित्य-संसार में मृतवत्सा रोग बहुत बुरी तरह फैल रहा है! बेचारी प्रसूतियों की सारी प्रसव-पीड़ा व्यर्थ चली जाती है। कितने ही बच्चे माताओं के गर्भ-गह्वर से निकलते ही—'केहाँ-केहाँ' करके—काल-कवलित हो जाते हैं! डिप्लोमेड धात्रियों की देख-रेख में, बकरी का दूध आदि सेवन करके जो आयु के दो-चार महीने व्यतीत कर ले जाते हैं, वे भी अन्त में अन्नाभाव वश चल बसते हैं!

फूल तो दो दिन बहारे जाँ फ़िज़ाँ दिखला गए!
हसरत उन ग़ुञ्चों पे है जो बिना खिले कुम्हला गए!!

❃

'जागरण', 'लोकमत', 'रँगीला' और 'पतित-बन्धु' एक से एक सुन्दर, होनहार, मनोहर आए और अपनी शिशु-सुलभ सौन्दर्य-छटा दिखा कर काल के गाल में समा गए! लेहाज़ा प्रसव-पटु गुल्फश्मश्रु-समन्विता मनचलियों से हिज़ होलीनेस की विनम्र प्रार्थना है कि ऋतु-स्नान के समय किसी ज्योतिषी से शुभ मुहूर्त दिखवा लिया करें। साथ ही अगर कुछ मङ्गलानुष्ठान की व्यवस्था हो सके तो और भी अच्छी बात है।
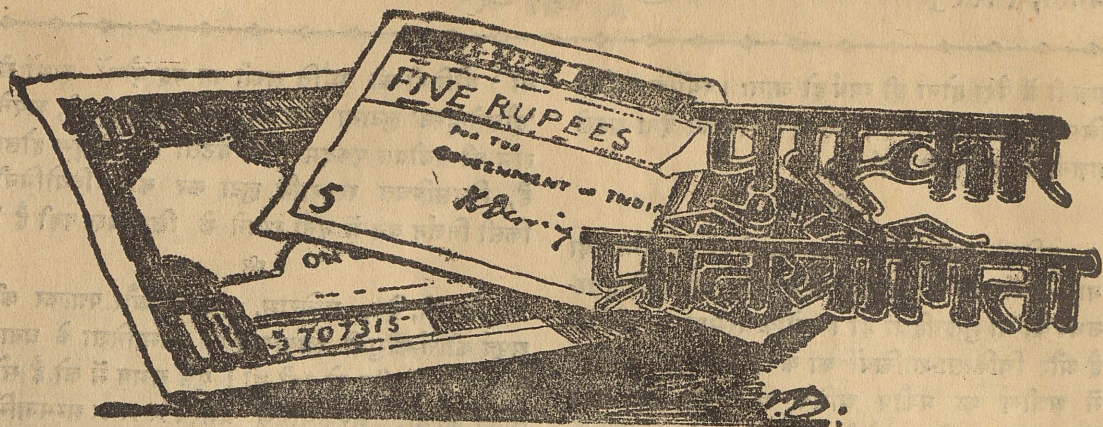
इस मास की पहेली

नियम :—

१—यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठकों के लिए है। कूपन पर ग्राहकों को ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिए। प्रत्येक ग्राहक जितने चाहे उत्तर भेज सकता है। एक उत्तर तो निःशुल्क होगा, परन्तु उसके बाद प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना आवश्यक होगा। जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें पहले उत्तर के लिए ।।।) का टिकट तथा बाद के उत्तर के लिए ।) का टिकट भेजना चाहिए।

२—इसमें भाग लेने वालों को नीचे के खानों की पूर्ति करनी है। सहायता के लिए नीचे तालिका दी हुई है। उदाहरणार्थ, सीधा चलने वाला नम्बर १ पहले खाने से काले खाने तक है और नीचे चलने वाला नम्बर बारहवें खाने से अठारहवें तक है।

३—खानों को भर कर उत्तर नीचे लिखे पते पर भेजिए :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग
चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

या—The CHAND Puzzle Deptt.,
The Chand Press, Ltd., Allahabad.

४—उत्तर हमारे पास ता० ५ सितम्बर तक आजाना चाहिए। इसके बाद उत्तर भेजने वालों के उत्तरों पर कोई विचार न किया जा सकेगा, चाहे वे उत्तर ब्रह्मा या आसाम-निवासियों के ही क्यों न हों।

५—उत्तर सादा काग़ज़ या पोस्टकार्ड पर भी भेजा जा सकता है। परन्तु उसके साथ कोई पत्र नहीं रखना चाहिए।

६—कृपया उत्तर की नक़ल अपने पास रख लीजिए। कटा-छटा या संशोधित उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जायगा।

७—जिसका उत्तर हमारे उत्तर से मिल जायगा, उस ग्राहक को २५) नक़द या 'चाँद' ५ वर्ष के लिए मुफ़्त दिया जायगा। जो ग्राहक नहीं हैं, उनको 'चाँद' दो वर्ष तक मुफ़्त मिलेगा। यदि कोई भी उत्तर सही न होगा, तो सब से कम अशुद्धियों वाले ग्राहक को 'चाँद' तीन वर्ष तक मुफ़्त दिया जायगा और जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें 'चाँद' एक वर्ष तक मुफ़्त मिलेगा। निर्णय का सारा अधिकार सम्पादक को है। यदि एक से अधिक उत्तर ठीक होंगे, तो पुरस्कार उत्तरदाताओं में बराबर बाँट दिया जायगा।

तालिका

सीधे चलने वाले (Across) :—

१—एक संख्या

३—एक पुरुष का नाम

६—एक क्रिया का आज्ञावाची रूप।
८—जो धोखे से माल ले लेते हैं।
९—एक छोटा पक्षी
११—स्वर्ग
१३—बोझ का एक परिमाण
१५—पति
१७—एक फूल का नाम
१८—हिन्दी का एक प्रसिद्ध प्राचीन कवि
१९—एक प्रकार का वस्त्र

नीचे चलने वाले (Down) :—

१—एक संख्या
२—एक पौधा
४—बालकों का एक गुण
५—शहर
७—प्राचीन काल के नगरों में सबसे धनी व्यक्ति
९—'जुगल मनोहर दोषी' के प्रथम अक्षर (Initial)
१०—एक आभूषण
१२—दिशा का एक सङ्केत
१४—पुष्प
१६—वह ही
१७—गीत का एक भाग

कूपन

१	२		■	३	४	५
६		■	७	■	८	
	■	९		१०	■	
■	११					■
१२	■	१३			■	१४
१५	१६	■		■	१७	
१८			■	१९		

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

देवी जी थिएटर देख कर बहुत देरी से घर पहुँची थीं। आपने पति देवता से कहा—तुम समझते होगे, मैं कहीं खो गई!

पति—नहीं प्यारी, मैं ऐसा सौभाग्यशाली नहीं हूँ।

पति—कुछ भी हो, मनुष्य को अपने घर से ज़्यादा आराम कहीं नहीं मिल सकता।

पत्नी—मालूम होता है, क्लब में किसी से लड़ाई हो गई है।

❀ ❀ ❀

मित्र—इसमें शक नहीं तुम्हारी नौकरी बड़ी ही ख़राब है। कोई तुम्हारी सूरत तक नहीं देखना चाहता।

महाजन का मुनीम—जी, सो बात नहीं है। मैं जिस किसी के पास जाता हूँ, वही कहता है कि फिर कभी आइएगा।

एक मित्र—क्यों जी, तुमने अपने इकलौते लड़के को हवाई जहाज़ के बेड़े में क्यों दाख़िल करा दिया?

दूसरा मित्र—सिर्फ़ इसलिए कि ज़मीन का कुछ बोझ तो हलका हो।

[सम्पादक—श्री० नीलू बाबू]

राग भीमपलाश्री

[शब्दकार तथा स्वरकार—श्री० जितेन्द्रनारायण राय चौधरी (नीलू बाबू के शिष्य)]

ताल शूल मात्रा १०

स्थायी—शङ्कर शिव हर हर,
बम महादेव तव नाम ।
अन्तरा—देवेश सुरेश महेश त्रिपुरारी,
जय जय गौरीपति जय सन्तन हितकारी ।

स्थायी

×		०		१		२		०	
क			क					क	
न	—	ध	न	प	—	म	ध	ग	म
शं	ऽ	क	र	शि	व	ह	र	ह	र
		क				क		क	
प	सं	न	ध	प	म	ग	र	ऩ	स
ब	म	म	हा	दे	व	त	व	नां	म

अन्तरा

×		०		१		२		०	
		क			क				
म	प	ग	म	प	न	सं	—	—	सं
दे	ऽ	वे	ऽ	श	सु	रे	ऽ	ऽ	श
		क			क		क		
सं	रं	गं	रं	सं	न	ध	न	प	—
म	हे	ऽ	श	त्रि	पु	रा	ऽ	री	ऽ
		क				क			
म	प	ग	म	प	सं	न	ध	प	—
ज	य	ज	य	गौ	ऽ	री	ऽ	प	ति
		क				क		क	
म	प	ग	म	प	म	ग	र	ऩ	स
ज	य	सं	ऽ	त	न	हि	त	का	री

तबले का बोल :—

धा	आ	त	त	धा	तित	धा	तिट	गदि	गन

नोट :—यह गाना ख़ूब विलम्बित लय में गाना चाहिए ।

निम्न-लिखित नए ग्राहकों का चन्दा हमें जून तथा जुलाई मास में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२०५८४	मेसर्स यशराज अनन्तचन्द्र घनेराव, (मारवाड़)	११)
२०५८५	सेक्रेटरी, प्रेम-प्रचारक समिति, पो० भाऊपुर, (कानपुर) ...	५)
२०५८६	श्रीयुत जगदीशप्रसाद, पो० हवेली खड़गपुर, (मुँगेर) ...	२)
२०५८७	श्रीयुत हरिश्चन्द्र, शेखपुरा ...	३॥)
२०५८८	श्रीयुत शम्भुनाथ शाह, पो० रानीखेत, (अलमोड़ा)	६॥)
२०५८९	पण्डित दुर्गाप्रसाद गौड़, सेक्रेटरी नागरी प्रचारक पुस्तकालय, बाँदा, यू० पी०	,,
२०५९०	श्रीयुत ब्रह्मप्रसाद गुप्त, ८ ए० न्यू-मारकेट, पटना	,,
२०५९१	मेसर्स हरिहरलाल बलदेवलाल, मु० अखारपुर, पो० राजहाट, ज़िला गया	,,
२०५९२	ठाकुर प्रतापसिंह, मु० भावरानी, पो० मोकलसर, जोधपुर ...	,,
२०५९३	श्रीयुत रूपनारायण क़ानूनगो, नवसारी (बरोदा स्टेट) ...	,,
२०५९४	देई साहबा रम्भाकुमारी, नरेन्द्रनगर	,,
२०५९५	मेसर्स छोगालाल जयनारायण, मऊ	,,
२०५९६	मुन्शी बाबूलाल कुर्म क्षत्री, पो० खजुवा, फ़तेहपुर ...	,,
२०५९७	बाबू प्रह्लादसिंह, रिटायर्ड क्लर्क गुड्सशेड ई० आई० आर०, (गया) ...	३॥)
२०५९८	सी० पी० सुब्राह्मण्य अय्यर ट्रीकव पोनानी, (साउथ मालाबार)...	३)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२०५९९	मिस्टर एस० डी० रमन, मु० गढ़या सिकन, पो० मलावाँ, ज़ि० एटा ...	३॥)
२०६००	मिसेज़ टी० एन० कपूर (ओवरसियर) पो० सलीन, जि० मिन्बू (अपर बर्मा)	६॥)
२०६०१	मिस सुशीला हठवालनी, मलकापुर, (बरार)	,,
२०६०२	बाबू हीरालाल अग्रवाल, मु० पो० मौरानीपुर, झाँसी ...	,,
२०६०३	श्रीमान ठाकुर साहब दीपसिंह, मु०-पो० सरथल (राजपूताना) ...	,,
२०६०४	पण्डित दयाराम तिवारी, कोंच ...	३॥)
२०६०५	बाबू हरचरण, दतिया, सी० आई० ...	६॥)
२०६०६	श्री० एस० एम० जैन, खिचून, पो० फालोदी, मारवाड़ ...	७)
२०६०७	श्रीयुत देवीप्रसाद मिश्र, कासगञ्ज, यू० पी०	३॥)
२०६०८	डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, १० लूकरगञ्ज, इलाहाबाद ...	६॥)
२०६०९	मिसेज़ चन्द्रदेवप्रसाद मानपुरा, पटना	३॥)
२०६११	श्रीयुत गोपालदास, कराची ...	५)
२०६१२	श्रीयुत बैजनाथ शर्मा, कालपी, जालौन	३॥)
२०६१३	पं० दौलतराम दिक्षित, सराफ़ा बाज़ार, झाँसी	३॥)
२०६१४	श्रीयुत गजानन्दसिंह जी, क्रिमेन डाईन, रङ्गून	६॥)
२०६१५	श्रीयुत राघव जी एम० गनात्रा भाट बाज़ार बम्बई नं० ३ ...	,,
२०६१६	सेक्रेटरी, महाजन लाइब्रेरी खरगौन, सी० आई०	,,
२०६१७	श्रीमती बालदुलारी बली, बलीनिवास कॉलेज रोड, रावलपिण्डी ...	२॥)
२०६१८	दी हेड क्वार्टर्स सेक्रेटरी सेवा समिति, अमृतसर	५)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२०६१९	मेसर्स विज्ञराज जी मुरलीधर पुरोहित, बुलदाना	६॥)
२०६२०	मेसर्स रामेश्वर बाबूलाल, दुमका (सन्थाल परगना) ...	,,
२०६२१	मेसर्स गङ्गाराम बसन्तलाल, हिसार	,,
२०६२२	मिस्टर जयनारायण, चौमुखा पुल, मुरादाबाद	,,
२०६२३	श्री० राजबिहारी लाल, कटरा मनराज, बरेली	,,
२०६२४	लाईब्रेरियन, गुरवती मित्र लायब्रेरी, ललना	५)
२०६२५	पं० रामबहादुर शर्मा, पो० मारवन, मुजफ़्फ़रपुर	२)
२०६२६	बाबू चतुर्भुज सहगल, कलकत्ता ...	६॥)
२०६२७	कप्तान ठाकुर नारायणसिंह, पटियाला	,,
२०६२८	असिस्टेण्ट मैनेजर मेसर्स गणेशीलाल एण्ड सन्स, जोधपुर ...	,,
२०६२९	ऑनरेरी सेक्रेटरी इण्डियन रेलवे इन्स्टीट्यूट, हुबली ...	,,
२०६३०	प्रसिद्ध कवि पं० जगतदिवाकर सिङ्गापुर (S. S.)	८॥)
२०६३४	हेड मास्टर मिडिल स्कूल, हंसराजपुर, पो० एकमा, जि० सारन ...	६॥)
२०६३५	श्री० दिलकिशोर प्रसाद सिंह, गया	३)
२०६३६	श्रीमती कमला देवी, गढ़मुक्तेश्वर ...	६॥)
२०६३७	हेडमास्टर, सनातनधर्म स्कूल, पो० मोगा, फ़िरोज़पुर	,,
२०६३८	मिस आर० एस० लालपुरी, श्रीनगर (काश्मीर)	,,
२०६५९	ठाकुर रणधीरसिंह पो० बक्स नं० ४६, लातौका, फ़िज़ी, ...	१३।)
२०६६२	मिसेज़ लाजपतराय, मन्डाले (बर्मा)	६॥)
२०६६३	श्री० हरीकिशन दास, सहारनपुर ...	,,
२०६६४	श्री० गणेशलाल शर्मा, जलगाँव, ईस्ट ख़ानदेश	,,
२०६६५	श्री० बालमुकुन्द मारवाड़ी, मु० पो० जयनगर, दरभङ्गा ...	,,
२०६६६	मिस्टर मथुराप्रसाद, पो० सारथ, सन्थाल परगना	,,
२०६६७	श्री० बी० एन० लक्ष्मण राव, ३७, के रोड, जमशेदपुर ...	६॥)
२०६६८	सेक्रेटरी, बालमित्र लायब्रेरी, एलिचपुर कैम्प	,,
२०६६९	श्रीयुत शङ्करलाल सिनहा, पो० बक्स नं० १००७, रङ्गून ...	,,
२०६७०	सेक्रेटरी, हिन्दू नवयुवक सङ्गठन-सभा धर्मशाला, मेमयो ...	,,
२०६७१	श्री० व्रजकिशोरप्रसाद दुरद, पो० गिरिडिह, हज़ारीबाग़ ...	,,
२०६७२	बाबू कन्हैयालाल बी० सराफ़, पूना	,,
२०६७३	सेठ किशनचन्द, शिकारपुर, सिन्ध	,,
२०६७४	बाबू कन्हैयालाल, रतलाम ...	,,
२०६७५	सेक्रेटरी जेनरल लायब्रेरी, बरधा ...	,,
२०६७६	बाबू रघुनन्दनसिंह, मु० काजीगाँव, पो० डिम्पापुर, सन्थाल परगना ...	,,
२०६७७	श्री० डी० एन० वर्मा पो० धुली, मुजफ़्फ़रपुर	,,
२०६७८	सेक्रेटरी तरनतारन आर्य-समाज, तरनतारन, अमृतसर ...	,,
२०६७९	मैनेजिङ्ग प्रोप्राइटर दी रोलर फ़्लावर मिल्स, पटियाला ...	,,
२०६८०	श्री० रामनारायण प्लीडर, माण्टगोमरी	३॥)
२०६८१	डॉक्टर शङ्करलाल गर्ग, लश्कर, ग्वालियर	,,
२०६८२	मेसर्स सुलतानचन्द सिलचर, (कछार)	,,
२०६८३	श्री० एस० जी० श्रीकण्डे, बालाघाट	३॥)
२०६८४	श्री० पी० डी० खन्ना, दादर, बम्बई	,,
२०६८५	सब-पोस्टमास्टर मार्फ़त राधेश्याम प्रेस, बरेली	,,
२०६८६	श्री० रामचन्द्र तिवारी, पो० हाजीपुर मुजफ़्फ़रपुर	५)
२०६८७	बाबू कपिलदेवप्रसाद, पो० पूसा, (दरभङ्गा)	४॥)
२०६८८	श्री० मोतीराम मितल, शिमला	२)
२०६८९	बाबू जगदीशप्रसाद सिंह, पो० रेवटीथ, जि० सारन	३॥)
२०६९०	मिस्टर जी० राय एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट नैनी, इलाहाबाद ...	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०६९३	श्री० के० एन० शर्मा, लश्कर, ग्वालियर	६॥)
३०६९४	कुमारी बालाबाई, पूना सिटी ...	„
३०६९५	पं० चन्द्रदत्त, एम० ए०, एल्-एल् बी० प्लीडर, बिलासपुर ...	„
३०६९६	श्री० सोहनलाल बगरी, पो० पञ्चगनी, जि० पूना ...	३॥)
३०६९७	मिस्टर बालकृष्ण वशिष्ट, मोहल्ला पेटपारा, धौलपुर	६॥)
३०६९८	श्रीयुत बाबूलाल झा, पो० सारठ ...	„
३०६९९	श्रीयुत वेदप्रकाश ढियर पो० बक्स नं० २०३७ कलकत्ता ...	„
३०७००	मिसेज़ भगवानदास, बालटरगञ्ज, यू० पी०	३॥)
३०७०१	श्रीमती मोहनी देवी लोहट, ग्राम पगी	६॥)
३०७०२	श्री० आर० के० निगम, १७ मेडिकल होस्टल, इन्दौर ...	३॥)
३०७०३	श्री० मिट्ठूलाल बगरी, (मारवाड़)	६॥)
३०७०५	लाला रामानुजदयाल वैश्य, गाज़ियाबाद, यू० पी०	५)
३०७०६	श्री० के० एस० काश्यपा, मैसूर ..	३॥)
३०७०७	प्रेसिडेण्ट मथुराप्रसाद वृषनलाल वैश्य, रिडिङ्गरूम, बरेली ...	६॥)
३०७०८	श्री० शम्भूप्रसाद पाँडे, पडरोना, गोरखपुर	„
३०७०९	जेनरल सेक्रेटरी ई० बी० रेलवे इण्डियन इन्स्टीट्यूट, सन्ताहर ...	„
३०७१०	बाबू जगन्नाथप्रसाद जी, जमशेदपुर, सिंहभूम, ...	६॥)
३०७११	श्रीमती सुकुमार देवी, मिठापुर, पटना	„
३०७१२	देवी सत्यवती, लाहौर ...	„
३०७१३	ठाकुर नाथूसिंह, जलगाँव, (बेरार)	„
३०७१४	श्रीमती शान्तिदेवी भार्गव, मुज़फ़्फ़रनगर	३॥)
३०७१५	श्रीमती मिथिलेशलक्ष्मी देवी, पो० महेन्द्रू, पटना	„
३०७१६	मटुकधारी लाल, पो० झरिया मानभूम	„
३०७१७	श्री० आर० के० सरकार, दिघवारा, सारन	६॥)
३०७१८	श्री० सीताराम, दीनापुर कैण्ट ...	६॥)
३०७१९	पण्डित वेदप्रकाश शर्मा, शाहजहाँपुर	„
३०७२०	श्री० जगन्नाथसिंह, पो० सिरसी, बस्ती	६॥)
३०७२१	श्री० त्रिलोकीनाथ शुक्ल, हरीतैला, इटावा	३॥)
३०७२२	श्री० डो० जी० धुरेल बुढ़ानपुर, सी० पी०	६॥)
३०७२३	श्री० जी० एन० गोडसे हलीयाल, ज़िला नार्थ कनारा ...	„
३०७२४	मेसर्स कनजी वीरजी, पो० बक्स, नम्बर ७९, पुसुम्बुरा ...	८॥)
३०७२५	भोगिन्द्रराय सी० व्यास, (केनिया कलोनी)	७॥=)
३०७२६	पण्डित अवधबिहारी, परतावगढ़ (अवध)	६॥)
३०७२७	एकज़ीक्यूटिव ऑफ़िसर, म्युनिसिपल बोर्ड, बदायूँ	४॥=)
३०७२८	श्री० सुमित्रादेवी, जोधपुर ...	६)
३०७२९	श्री० एम० के० हरुराय, मन्दसोर, ग्वालियर स्टेट	६॥)
३०७३०	मिसेज़ आर० एन० एस० परमार, पो० नजिबाबाद, जि० बिजनौर ...	„
३०७३१	मिस्टर मेदिनीप्रसाद, पो० धनिया, भागलपुर	„
३०७३२	पण्डित कपिलदेव पाठक, मु० सैसड़, पो० धनसोई (शाहाबाद) ...	„
३०७३३	श्री० राधोप्रसाद गारू, पलामू ...	„
३०७३४	श्रीयुत रामानाथ झा, आदमपुर भागलपुर	„
३०७३५	श्री० पो० डडेल, हेड मास्टर मुरहू, जि० राँची, (बिहार-उड़िसा) ...	„
३०७३६	हेड मास्टर आर मिश्र एच० ई० स्कूल, देवघर	„
३०७३७	मिसेज़ मिश्र, गऊघाट इलाहाबाद...	„
३०७३८	श्रीयुत श्रीनन्दनप्रसाद शर्मा, पटना...	„
३०७३९	श्रीयुत सुब्बा समरनाथ बहादुर पो० रुपई डिहा, बहराईच ...	„
३०७४०	सेक्रेटरी आर्य-पुस्तकालय, पो० महराजगञ्ज, सारन... ...	५)
३०७४१	श्री० श्यामानन्द क्योली पर, बाकरगञ्ज, पटना	„
३०७४२	श्री० लक्ष्मीनारायण मो० और पो० भारतगञ्ज, इलाहाबाद ...	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२०७४३	श्री० प्रभावतीबाई, पो० माधवनगर उज्जैन (मालवा) ...	६॥)
२०७४४	श्री० आर० के० दुबे, ग्वालियर स्टेट	,,
२०७४६	श्री० विरेन्द्रप्रसाद, पो० जशवन्त-नगर, इटावा	,,
२०७४७	श्री० भुवनेश्वरप्रसाद राय, पो० चकई	,,
२०७४८	श्री० रामविलास महता, पो० बहेरी, दरभङ्गा	३॥)
२०७४९	श्री० वी० आर० चन्द्रपाल नायडू, पो० कोवूर	,,
२०७५०	श्री० आलमसिंह पो० देवीधूरा, अलमोड़ा	,,
२०७५१	पण्डित गिरजाप्रसाद पाण्डेय, मु० पाँडेहाता, गोरखपुर ...	६॥)
२०७५२	बाबू गौरीशङ्कर अग्रवाला, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता	११)
२०७५३	ऑनरेरी सेक्रेट्री श्री० सज्जन मिल्स लि० क्लब, रतलाम ...	६॥)
२०७५४	बा० बद्रीदास बगला, कालबादेवी, बम्बई	३॥)
२०७५५	बाबू चन्द्रेश्वरप्रसाद, मोतीहारी ...	,,
२०७५६	श्री० श्रीकृष्ण शर्मा, पो० जनार्दनपुर, दरभङ्गा	,,
२०७५७	मिसेज़ वी० पी० वर्मा, पो० भभुवा, (शाहाबाद)	६॥)
२०७५८	श्री० आर० एस० पालडीवाल सेक्रेटरी योतमल, बेरार... ...	,,
२०७५९	बाबू गनेशदास भाटिया, कलकत्ता ..	,,
२०७६०	बाबू पूनमचन्द बोहरा, रतलाम, ...	,,
२०७६१	बाबू हजारीलाल जैन, करौली स्टेट (राजपूताना) ...	३॥)
२०७७०	मैनेजर विश्रामभवन, माउन्ट आबू (राजपूताना)... ...	,,
२०७७२	मिसेज प्रभूदयालसिंह, प्रतापगढ़ ...	६॥)
२०७७३	श्रीमती गिरीशकुमारी देवी मो० कैथो टोला, विसवा, सीतापुर ...	६॥)
२०७७४	श्रीमती विदुषीदेवी, मुज़फ़्फ़रपुर ...	,,

गत तारीख़ २८-६-३२ से लेकर जुलाई मास के अन्त तक हमें बहुत से पुराने ग्राहकों के चन्दे प्राप्त हुए हैं। स्थानाभाव के कारण इस अङ्क में उनकी सूचना नहीं दी गई। अगले अङ्क में प्रकाशित की जायगी।

निम्नलिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों को सितम्बर १९३२ का अङ्क पहले सप्ताह में वी० पी० द्वारा भेजा जाएगा। आशा है, वी० पी० स्वीकार कर कृतार्थ करेंगे।

७६४ ११५९ १५०७ १५९९ १६०१ १६०९ १६११
१६१२ १६२३ १६७० २०२१ २०७० २५८९ २५९९
२६११ २६१४ २६२० २६२३ २६२९ २६५५ २६५७
२७७७ २६७९ २६८१ २६८६ २७१७ २७५० ३५००
४१३४ ४१३७ ४१३९ ४१४० ४१४३ ४२२० ४२३३
४२३४ ४२६३ ४२७१ ४२९७ ४३०४ ४३१२ ४३१४
४३१९ ४३२७ ४३४३ ५७०९ ६४९७ ६५२४ ६५७०
६५७३ ६५९९ ६६०२ ६६१३ ६६१७ ६६१८ ६६२०
६६२६ ६६३७ ६६४३ ६६४४ ६६७६ ६६८४ ६६८७
६६८८ ६६९६ ६६९८ ६७१० ६७३० ६७५९ ६७६३
६७७४ ६७७६ ६७७९ ६७८० ६२३८ ८१८१ ८२४७
१०२९४ १०३१२ १०३३३ १०३३६ १०३३८ १०३३९
१०३५३ १०३५६ १०३५७ १०३६० १०३६६ १०३९१
१०३९२ १०३९६ १०४०४ १०४४१ १०४६२ १०४६३
१०४७३ १०४८२ १०४८८ १०४८९ १०५२२ १०५२३
१०६५१ १०६६५ १०६८७ १०६९१ १०६९२ १२७३४
१३९८९ १४००१ १४००९ १४०१० १४०१३ १४०१४
१४०२१ १४०४६ १४०५२ १४१५३ १४१८० १०४९४
१४१८१ १४२१९ १४२२७ १४२३७ १४२४० १४२४२
१०४९५ १४२४८ १४२५७ १४२६१ १४३१५ १४३४०
१४३५१ १४३६४ १४३७२ १४३७५ १४३७६ १४३८२
१४४०८ १४४१९ १४४१८ १४४२६ १४४३३ १४४५३
१४४५७ १४४५८ १४४६१ १४४७१ १४५०८ १४५०९
१४५२० १४५२१ १४५२३ १४५२४ १४५५९ १४५७८
१४६१९ १४६६१ १४८१८ १४८२२ १४९५६ १५४१७
१६७११ १६८८५ १६८८६ १६९७९ १७८३४ १७८४५
१८१९७ १८४०३ १९०५३ १९०५८ १०४८७ २९०५१
१९०६३ १९०९९ १९१०० १९१०३ १९१६० १९१६६
१९१७७ १९१७८ १९२७३ १९२८३ १९३०५ १९३३२
१९३३९ १९३४१ १९३४२ १९३४६ १९३५१ १९३५४
१९३५६ १९३६८ १९३९७ १९४०१ १९४०३ १९४०५'ए'
१९४११ १९४१८ १९४१९ १९४२६ १९४७३ १९४७७
१९४७९ १९४९५ १९४९६ १९५१४ १९५१५ १९५२०
१९५२१ १९५२२ १९५२८ १९५२९ १९५३३ १९५३५
१९५६४ १९५६८ १९५६९ १९५७२ १९५७४ १९५७६
१९५७७ १९५८५ १९५८८ १९५९१ १९५९२ १९५९५
१९६०४ १९६०७ १९६०९ १९६२३ १९६२४ १९६२९
१९६३० १९६३१ १९६३३ १९६३६ १९६४० १९६६५

१९६९५ १९७०० १९७०१ १९७१६ १९७२२ १९७२४
१९७२५ १९७३० १९७४३ १९७४६ १९७५२ १९७५५
१९७५६ १९७५८ १९८०३ १९८०९ १९८११ १९८१६
१९८२० १९८३२ १९८३८ १९८४७ १९८४९ १९८५०
१९८५१ १९८५३ १९८७१ १९८७३ १९८७४ १९८७७
१९८७९ १९८८६ १९९६९ १९९७१ १९९९४ २००००
२००९५ २००९८ २०१०० २०११२ २०११३ २०११६
२०१६७ २०२०० २०२०१ २०२०२ २०२०४ २०२१८
२०२१९ २०३५२ २०४४१ २०४९० २४५५८ २४६१०
२४७६० २४८६६ २५३६१ २५४७७ २६३८५ २६४१८
२६४३१ २६५७९ २६५८८ २६५९० २६५९२ २६६०९
२६६१९ २६६२१ २६७३८ २६६३९ २६६४० २७८१७
२८३२१ २८५११ २८८४३ २८९१८ २८९६२ २८९६३
२८९८८ २८९८९ २८९९० २८९९१ २८९९२ २८९९३
२८९९४ २८९९५ २९००६ २९००७ २९००८ २९०१०
२९०११ २९०१२ २९०३२ २९०३३ २९०३६ २९०३७
२९०४० २९०४१ २९०४३ २९०४५ २९०४६ २९०५०
२९०५२ ।

निम्न-लिखित ग्राहकों के पते बदले गए हैं :—

२९४८७ २९९३४ २१२४६ १२२२५ ७२७७
२८९१७ ३००९९ १९०२१ २२४१७ २९६२० २४६२८
२१५८७ ३००६० ३०३२५ ३०६५३ ५७५४ २९७१६
२९३७९ २७५५२ २७८३८ २६३९६ ४०१८ २७८८५
२६२२७ ५५२४ १२३२४ २२४९६ २९६०४ २३०५८
२४३३४ १९२१० १६६११ १५३८४ १३२५० २०७४५
२२९९१ २९८४५ १४४७१ २९८४१ १७६९८ २६१५५
१५५८९ २८६२० १०८४१ २६०६२ २९५२५ २६९५३
९८०८ १६९५३ २९९३७ २६८२६ २२३४२ २३३६६
२८९०४ १७३५४ १६२०३ २१०३७ १७६८४ १३८५४
२९१७५ ३००२५ ३०००७ १२७८१ २७३८१ २२६८९
२२६८७ २८४१२ २७२९१ २८५८३ २९४८१ २६७४०
१३०१९ २७३१८ २८३४६ १७२५२ २६२६३ २२४३५
८८८१ २९८१० ३०२७८ २९५४९ २५९६९ १८०९६
७७११ २९९६६ २८२७७ १२०७२ १६२०१ २९३६६
२९४१२ २५७१२ २५८७५ १९३२ २९४६१ २१०५
२४३३५ ३०५१५ २९१०६ ३०४७४ ३०१६५ २८७७७
२५९७७ २९०६७ ३०४६६ २२०४५ ।

निम्न-लिखित अङ्क ग्राहकों को दुबारा भेजे गए हैं।

अप्रैल १९३२ :—

२४८१३ ९७२४ २०१६० २८०१८ २६६०९ २८४१४
१८६२९ १५३८९ २८९१३ २६८१२ २९९५३ ।

मई १९३२ :—

२८१९४ २८०१८ २८४१४ २१८२४ २२०९० २०२८५
१९९०१ १५५६१ २१२०४ २४१६७ २५६८३ ३०१२२
२८७७२ २०५२७ ३०३५८ २२५९० २११७४ १२२४४
२८९१३ ४१८२ २००७४ ५३७९ २४८१३ १४२५७
१९९१३ २९३४३ ३०१७५ २३९६३ २८९०२ २९२३५
२०१६० २३२९९ २१७३२ २९६१० २१३७९ २९१६२
२७९७५ १९२१० ३०११५ ।

जून १९३२ : –

२९२३२ १०४०४ १०३९१ ५७६९ २३४०३ २४७१५
३००३३ २१३९७ २९४९६ २७८१७ १४६१९ १४८०६
२८०५२ २०८३८ १९९५१ २९६६७ २९८७५ २९३४७
२९२६४ १८१३२ २६१९४ २५२३८ ७८२६ ९३१०
८९५० ३०२७३ २१४०८ २२०४५ २३२७४ २३७५९
२६७४० २९४८१ २७३१८ १२२४४ २८४६३ १३९५५
२८२५८ २८६८९ २९३५४ ६३९ २६८१२ २९२०१
२९४८७ २७८९७ १४६०३ २००४४ २५१२५ ३०११५
२१२४६ ११०८२ ४९०१ १६१६६ १८७०२ ३०२७१
२६४६४ २७८५० २१५०२ २७४३७ २७८९७ ३००६२
१९८३२ ३०२४५ २१०४७ १९८६६ १४२६१ २९७८९
३००८५ १९२८५ १३५९० २७५५२ १२३२४ २३१५५
२१२४३ १४२३२ ३०३८३ २५६४६ २७२७४ २५७२५
२९८५८ २६८२१ १७८६५ ।

जुलाई १९३२ :—

१८२९० १३२५० २३१५५ १६६०६ १६१६३ ३०१७२
१३९६० २१८२२ २१३१० १७८६५ ३००१७ २६८२६
२९६३१ २६७०० २६८३० ३०१४८ २९९०० २४१९९
१५७६३ २९५११ २९५४६ २९००७ ६२४ २९९९५
३०२०४ २५०९६ २२१०३ २३९५१ २३१०४ २७८९७
३०३१३ २८५६२ २५०२३ ३०२१० ३०२९५ ६६३६
२६१२६ ३०३०४ २९८०६ २७९६१ २१६०३ ३००८५
१९२८५ ९९६१ ३०४३५ ।

सूचना

ग्राहकों को चाहिए कि कार्यालय में किसी व्यक्तिगत नाम से मनिआर्डर तथा रजिस्ट्री पत्र आदि न भेजें। ऐसी दशा में यदि कुछ गड़बड़ी होगी तो कार्यालय ज़िम्मेवार न होगा। जो कुछ भेजना हो, 'जनरल मैनेजर, चाँद प्रेस, लिमिटेड' के पते से भेजना चाहिए।

—मैनेजर

२० बहिनों को 'चाँद' मुफ़्त

गत जून मास के 'चाँद' में श्रीमती श्यामादेवी जी के दिए हुए दान से 'चाँद' पढ़ने की इच्छुक निस्सहाय बहिनों को आवेदन-पत्र भेजने के लिए एक सूचना छपी थी। उसके उत्तर में लगभग ५,००० ग़रीब बहिनों के प्रार्थना-पत्र आए; किन्तु दान केवल २० बहिनों के लिए ही निश्चित था। हमें खेद है, शेष प्रार्थियों को 'चाँद' जारी करने में हम असमर्थ हैं। हम देश के धनी तथा दानी सज्जनों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर प्रार्थना करते हैं कि इन बहिनों की ज्ञान-पिपासा को सन्तुष्ट करने के लिए श्रीमती श्यामादेवी जी का पदानुसरण करें और विद्यादान के पुण्य के भागी बनें। जिन २० बहिनों तथा संस्थाओं को 'चाँद' उपरोक्त देवी जी के दान से एक वर्ष के लिए जारी किया गया है, उनके नाम ग्राहक-नम्बर सहित नीचे दिए जा रहे हैं।

१—३०६३९ श्रीमती रामझारी देवी, रामगढ़वा, चम्पारन

२—३०६४० श्रीमती कौशिल्या देवी, झाँसी सिटी

३—३०६४१ श्रीमती दुबराजी, प्रतापपुर, सुल्तानपुर

४—३०६४२ श्रीमती रामकली देवी, सनडेण्डरी, कानपुर

५—३०६४३ श्रीमती चन्द्रकला बाई, उज्जैन

६—३०६४४ श्रीमती बासुमती देसाई, बेज़वादा, बड़ौदा

७—३०६४५ श्रीमती श्यामादेवी, संग्रामगढ़, परताबगढ़

८—३०६४६ श्रीमती चन्द्रकलावती देवी डघिरा, भागलपुर

९—३०६४७ श्रीमती एस० के० देवी, सिलाव, पटना

१०—३०६४८ श्रीमती कर्मदेवी, कोटली लोहारा, स्यालकोट

११—३०६४९ श्रीमती अन्नपूर्णा देवी, जोधपुर

१२—३०६५० श्रीमती सीतादेवी, सीतामढ़ी

१३—३०६५१ श्रीमती श्यामकुमारी देवी, मीरजान, आगरा

१४—३०६५२ श्रीमती त्रिवेनी देवी, रुनीसयाद-पुर, मुज़फ़्फ़रपुर

१५—३०६५३ श्रीमती चन्द्रकला देवी, राजकुण्ड, मुज़फ़्फ़रपुर

१६—३०६५४ श्रीमती राजेश्वरी देवी, राजकुण्ड, मुज़फ़्फ़रपुर

१७—३०६५५ श्रीमती रामरती देवी, मनमद, नासिक

१८—३०६५६ श्रीमती कृष्णाबाई, चारुवा, होशङ्गाबाद

१९—३०६५७ जनरल सेक्रेटरी, विद्यार्थी पुस्तकालय, इलाहाबाद

२०—३०६५८ श्री० नन्दकिशोर साही, बारुराज, मुज़फ़्फ़रपुर

Regd. No. A—1154

केसर की क्यारी

[सम्पादक—कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

यदि आप एक-एक विषय पर धुरन्धर उर्दू कवियों की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन करना चाहते हों, तो इस केसर की क्यारी में अवश्य विचरिए। हम पाठकों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हिन्दी भाषा में प्रस्तुत पुस्तक बेजोड़ है। यह रचना कविवर "बिस्मिल" की २ वर्षों की कठिन तपस्या का फल है, इसी से आप पुस्तक की उत्तमता का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। 'भविष्य' में समय-समय पर जो संग्रह प्रकाशित होता रहा है, उसके अतिरिक्त कई उत्तमोत्तम नए संग्रह भी इस पुस्तक में पाठकों को मिलेंगे।

पुस्तक के अन्त में महाकवि 'दाग़', स्वर्गीय कविवर 'चकबस्त', स्वर्गीय कविवर 'अकबर' तथा हज़रत 'नूह', कविवर 'बिस्मिल', सर इक़बाल आदि-आदि कई प्रसिद्ध कवियों की सचित्र जीवनियाँ तथा उनकी चुनी हुई रचनाएँ भी मिलेंगी। कवियों के लगभग २० चित्र सुन्दर आर्ट पेपर पर दिए गए हैं; कुछ चित्र तो वास्तव में दुर्लभ हैं।

परिशिष्ट भाग में पाठकों को उर्दू कवियों की विनोदपूर्ण रचनाएँ भी मिलेंगी, ३२ पाऊण्ड के 'फ़ेदरवेट' नामक सर्वश्रेष्ठ काग़ज़ पर छपी हुई सचित्र एवं सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत मात्र केवल ३) रु०; स्थायी एवं 'चाँद' तथा 'भविष्य' के ग्राहकों से २।) रु० मात्र (यदि वे अपना ग्राहक-नम्बर लिखेंगे, अन्यथा नहीं)!

चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Shrimati Lakshmi Devi, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.